

व्यावहारिकं ज्यौतिषसर्वस्वम्

पं. देवचन्द्र झा



।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२६३

व्यावहारिकं ज्यौतिषसर्वस्वम्

'सुधा'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

लेखक एवं व्याख्याकार

पं० श्रीदेवचन्द्र झा

ज्यौतिष-साहित्याचार्य
पूर्वप्राध्यापक : राजकीय धर्मसमाज संस्कृत
महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३३३४३१

प्रथम संस्करण १९९५

मूल्य ७५-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

मुद्रक

फूल प्रिण्टर्स

वाराणसी

प्राक्कथन

परमपिता परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से आज इस 'व्यावहारिकं ज्यौतिषसर्वस्वम्' को प्रकाशित देखकर मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

आज से सात वर्ष पहले मैं महर्षि वेद-विज्ञान विद्यापीठ, गाजियाबाद में विदेशी पर्यटकों को ज्यौतिष पढ़ाने के लिए वहाँ के कुलपति द्वारा बुलाया गया था। निःसन्देह महर्षिप्रवर का विशाल वह आश्रम एक अनुपम दूसरा शान्ति-निकेतन ही है, जिसमें हजारों पर्यटकों के अतिरिक्त कई सहस्र छात्र भी अध्ययन रत थे। उन छात्रों के लिए वहाँ वेद तथा ज्यौतिष अनिवार्य विषय था। ज्यौतिष पढ़ाने के लिए कई ज्यौतिषाचार्य भी थे। मुझे उन छात्रों को पढ़ाने का भार नहीं था। मैं तो विदेशी पर्यटकों को ही पढ़ाता था। उन हजारों बालब्रह्मचारियों तथा उन पर्यटकों का व्यावहारिक ज्यौतिष ही पाठ्य विषय था। उन स्थानीय छात्रों के पाठ्य तथा पर्यटकों के जिज्ञास्य विषय व्यावहारिक ज्यौतिष को मैंने वहीं श्लोकबद्ध कर 'सुधा' टीका एवं विमर्श के साथ लिखना आरम्भ कर दिया। वहाँ से आने के बाद त्रिवर्षीय शास्त्रचूडामणि कार्यक्रम में संस्कृत शोधसंस्थान, दरभंगा में रहकर इस ग्रन्थ को पूरा करने का अवसर मुझे मिल गया।

यह ग्रन्थ सर्वथा व्यावहारिक है। इसमें चार स्कन्ध हैं। प्रथम पञ्चाङ्ग-स्कन्ध में पञ्चाङ्ग से सम्बद्ध प्रायः सभी विषयों का विस्तृत वर्णन है। द्वितीय मुहूर्त्तस्कन्ध में मुहूर्त्तों का वर्णन, तृतीय जातकस्कन्ध में जातक से सम्बद्ध विषयों का वर्णन तथा उदाहरण के द्वारा कुण्डली का निर्माण एवं फलादेश आदि करने का दिग्दर्शन कराया गया है। चतुर्थ स्कन्ध प्रकीर्णक संज्ञक है, जिसमें वर्षफल, गोचरफल विचार, रत्नधारण आदि अनेक विषयों का सन्निवेश है।

इस ग्रन्थ की रचना मुहूर्त्तचिन्तामणि, शीघ्रबोध, नाह्लिदत्तपञ्चविंशतिका, जातकपारिजात, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, नीलकण्ठी, जैमिनिसूत्र, बृहज्जातक आदि अनेक ग्रन्थों के आधार पर की गई है। यह ग्रन्थ ज्यौतिषाचार्य या इस शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों के लिए नहीं, प्रत्युत साधारण पढ़े-लिखे व्यक्तियों या ज्यौतिषानभिज्ञ जिज्ञासुओं के लिए उपयुक्त है।

इस ग्रन्थ की मूल पंक्तियाँ सरल अनुष्टुप् छन्दों में निबद्ध हैं। 'सुधा' संज्ञक हिन्दी व्याख्या तथा यत्र-तत्र विमर्श के द्वारा तत्तद् विषयों का पूर्णतः स्पष्टीकरण किया गया है। जातकपारिजात या बृहत्पाराशरहोराशास्त्र आदि जातक ग्रन्थ बहुविस्तृत हैं और इस जातकस्कन्ध में व्यवहारोपयुक्त विषयों का ही सन्निवेश किया गया है।

मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति भी व्यावहारिक ज्यौतिष के मर्मज्ञ हो सकते हैं। दुर्भाग्य से इस ग्रन्थ की समाप्ति से पहले ही भयंकर अक्षिदोष के कारण अनेक अभिलषित विषयों का मैं सन्निवेश नहीं कर सका; यहाँ तक कि इसका प्रूफ-संशोधन भी मैं स्वयं नहीं कर सका हूँ। सावधानियों के बावजूद भी पुस्तक में यत्र-तत्र त्रुटियाँ होती हैं क्योंकि 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः' तथा 'भ्रान्तिः मनुष्यधर्मः' के अनुसार त्रुटियाँ तथा भ्रान्ति सम्भव हैं। अतः सहृदय पाठक इसके लिए क्षमा करेंगें।

अन्त में इस पुस्तक के प्रकाशन में हार्दिक सहयोग देने वाले दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के ज्यौतिष विभागाध्यक्ष पं० श्री रामचन्द्र झा तथा प्रकाशक महोदय के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

विनीत
देवचन्द्र झा

विषयानुक्रम

पञ्चाङ्गस्कन्धः

मुहूर्तस्कन्धः

जातकस्कन्धः

अथायुर्दायाध्यायः

दशान्तर्दशाध्यायः

अन्तर्दशाफलाध्यायः

प्रकीर्णकस्कन्धः

प्रश्नविचाराध्यायः

बिहारप्रान्तीय-मिथिलाञ्चलस्थमधुबनीमण्डलान्तर्गतेन नगवासग्राम-वास्तव्येन मुजफ्फरपुरस्थ-धर्मसमाजापरनामधेयराजकीयसंस्कृत-महाविद्यालयस्य भूतपूर्वज्यौतिषप्राध्यापकेन ज्यौतिष-साहित्ययोराचार्येण कृतपोष्टाचार्यानुसन्धानकार्येण राजकीयसेवातो लब्धावकाशेन एम्० ए० द्वयोपाधिधारिणा श्रीदेवचन्द्रझाशर्मणा विरचितं सविमर्शसुधासंज्ञव्याख्योपेतं

व्यावहारिकं ज्यौतिषसर्वस्वम्

*

॥ श्रीः ॥

पण्डित-देवचन्द्रझाविनिर्मितं

व्यावहारिकं ज्यौतिषसर्वस्वम्

तत्कृतं 'सुधा'-व्याख्योपेतञ्च

ग्रन्थकर्त्तृकृत-मङ्गलाचरणम्

विश्वेश्वरं गुरुवरं गेनालालाभिधं परम् ।
प्रणम्य विशदं वच्मि ज्यौतिषं व्यावहारिकम् ॥ १ ॥
त्रिस्कन्धज्यौतिषं विज्ञैरतीवगहनं स्मृतम् ।
व्यावहारिकमत्रैतत्सारं तस्येति निश्चितम् ॥ २ ॥
विशिष्टविषयोपेतं नातिसङ्क्षिप्तविस्तृतम् ।
सविमर्शसुधासंज्ञव्याख्यया सरलीकृतम् ॥ ३ ॥
प्राचीनाचार्यवर्याणां वचोभिरनुमोदितम् ।
प्रसादगुणतोऽनुष्टुप् छन्द एवात्र योजितम् ॥ ४ ॥
व्यवहारविदां प्रीत्यै मयेदं विशदीकृतम् ।
विद्वद्भिर्बहुभिर्भूरि हृदयेनाभिनन्दितम् ॥ ५ ॥
व्यवहारविदोऽभिज्ञा ग्रन्थस्यास्यावलोकनात् ।
लाभान्विता भवेयुश्चेन्मन्येऽहं सफलः श्रमः ॥ ६ ॥

पञ्चाङ्गस्कन्धः

तत्र मासाः

मासाश्चतुर्विधास्तत्रार्क्षोमानाक्षत्रवासरैः ।
त्रिंशद्भिस्तिथिभिश्चान्द्रः सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते ॥ १ ॥
सावनः सावनदिनैस्त्रिंशद्भिः परिकीर्त्तितः ।
उदयादुदयं भानोः सावनो दिवसो मतः ॥ २ ॥
चान्द्रे मासि तिथेः संख्या भवेत्त्रिंशन्मिता पुनः ।
सौरेऽपि दिवसास्त्रिंशद् दिनमेकांशभोगतः ॥ ३ ॥
समस्तराशिभोगेन रवेर्मासः सौर ईरितः ।

❀ सुधा ❀

मास चार प्रकार के होते हैं। तीस नाक्षत्र दिनों का एक नाक्षत्रमास, तीस तिथियों से एक चान्द्रमास, संक्रान्तिवश सौरमास और तीस सावनदिनों से एक सावनमास होते हैं।

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय सावनदिन कहलाता है। ऐसे तीस सावनदिनों से एक सावनमास होता है। चान्द्रमास में भी तीस तिथियाँ होती हैं। सौरमास में भी सौरदिन संख्या तीस होती है। सूर्य द्वारा किसी राशि के एकांश भुक्त होने पर एक सौरदिन होता है। सूर्य के द्वारा समस्त राशि के भोग से एक सौरमास होता है।

सौरा मासाः

सौरा मासास्तु चैत्राद्या मीनाद्येषु गते रवौ ॥ ४ ॥
यथा मीनगते चैत्रो वैशाखो मेषगे स्मृतः।
ज्येष्ठो वृषगते सूर्ये आषाढो मिथुनस्थिते ॥ ५ ॥
कर्कस्थे श्रावणः सिंहगतेऽर्के भाद्र उच्यते।
कन्यागे त्वाश्विनः तद्वत्कार्त्तिकस्तौलिगे रवौ ॥ ६ ॥
मार्गो वृश्चिकगे भानौ पौषो धनुषि संस्थिते।
माघो मकरगे कुम्भस्थितेऽर्के फाल्गुनो मतः ॥ ७ ॥
मृगकर्कादिगे भानौ सोम्ययाम्यायने क्रमात्।
एवं सङ्क्रान्तिवशतः सौरा मासाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥
चान्द्रा मासास्तु तिथिभिस्त्रिंशद्भिस्ते प्रकीर्त्तिताः।

सुधा—मीनादि बारह राशियों में सूर्य के सञ्चार से चैत्रादिक बारह सौरमास होते हैं। जैसे मीनस्थ सूर्य में चैत्र, मेषस्थ सूर्य में वैशाख, वृषगत सूर्य में ज्येष्ठ, मिथुनस्थ सूर्य में आषाढ़, कर्कस्थ सूर्य में श्रावण, सिंहस्थ सूर्य में भाद्र, कन्यागत सूर्य में आश्विन, तुलास्थित सूर्य में कार्त्तिक, वृश्चिकस्थ सूर्य में अग्रहण, धनुर्गत सूर्य में पौष, मकरस्थ सूर्य में माघ तथा कुम्भस्थ सूर्य में फाल्गुन—ये सभी सौरसंज्ञक मास होते हैं।

मकरादि छः राशियों में सूर्य के रहने से उत्तरायण और कर्कादि षड्राशिगत सूर्य में दक्षिणायन होते हैं।

इस प्रकार संक्रान्तिवश सौरमास और तीस तिथियों के द्वारा चैत्रादिक मास होते हैं।

चान्द्रे पक्षद्वयं कृष्णशुक्लाख्यं यत्र चन्द्रमाः ॥ ९ ॥
दिने दिनेऽपचिनुयाद् वर्धते च क्रमेण वै।
कृष्णपक्षान्तिमतिथिरमा शुक्ले तु पूर्णिमा ॥ १० ॥
अमा निशायां चन्द्रस्य दृश्यते कापि नो कला।

पूर्णिमायाः पुना रात्रौ दृश्यन्ते सकलाः कलाः ॥ ११ ॥
पक्षद्वये समस्तास्तास्तिथयः खाग्निसम्मिताः ।

सुधा—चान्द्रमास में कृष्ण तथा शुक्ल ये दो पक्ष होते हैं। दोनो पक्षों में चन्द्रकला का क्रमशः अपचय तथा उपचय होता है।

कृष्णपक्षीय अन्तिम तिथि अमावास्या और शुक्लपक्षीय अन्तिम तिथि पूर्णिमा कहलाती है। अमावास्या की रात में चन्द्रकला का कोई भी अंश दृश्य नहीं होता और पूर्णिमा की रात में सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण चन्द्रमा दीख पड़ते हैं। इस प्रकार दोनों पक्षों की सभी तिथियाँ मिलकर तीस होती हैं।

विशेष—चान्द्रमास के तीन प्रभेद हैं; यथा—

पहला प्रभेद—पूर्णान्तद्वयवर्ती काल, जैसा कि उत्तर भारत में प्रचलित है। इसमें पहले कृष्णपक्ष, उसके बाद शुक्लपक्ष होता है। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने मूल पंक्ति में 'चान्द्रे पक्षद्वयं कृष्णशुक्लाख्यं यत्र चन्द्रमाः' दिया है।

दूसरा प्रभेद—अमान्तद्वयवर्ती काल। इसमें पहले शुक्लपक्ष, ततः पर कृष्णपक्ष होता है। शिरोमणिकार भास्कराचार्य ने भी 'मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः' कहकर इसी चान्द्रमास का प्रतिपादन किया है। यह चान्द्रमास दक्षिण भारत के राज्यों, गुजरात आदि में प्रचलित है।

तीसरा प्रभेद—त्रिंशत्तिथिघटित चान्द्रमास् अर्थात् किसी भी तिथि से तीस् तिथि प्रमित काल—जैसा कि चैत्र शुक्ल षष्ठ्यादि से वैशाख शुक्ल पञ्चम्यन्त पर्यन्त काल भी चान्द्रमास ही है।

महामहोपाध्याय गोकुलनाथ उपाध्याय ने अपने मासमीमांसा नामक ग्रन्थ में उपर्युक्त प्रभेदों का विशद विवेचन किया है।

विमर्श—लोकव्यवहार चार प्रकार के मानों से चलता है। सिद्धान्तमर्मज्ञ भास्कराचार्य ने अपने 'सिद्धान्तशिरोमणि' नामक ग्रन्थ में कहा है—

'वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरा-
न्मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात् ।
यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं
तत्सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात्' ॥

तात्पर्य यह है कि वर्ष, अयन, ऋतु तथा युगों का परिगणन सौरमान से; मास तथा तिथियों का चान्द्रमान से; व्रतोपवास, सूतक, चिकित्सा आदि सावनमान से तथा घटी, पल आदि नाक्षत्र मान से समझना चाहिए। इन चतुर्विध मानों से मनुष्यों के सभी व्यवहार प्रचलित होते हैं।

वस्तुतः रविभ्रमण मार्ग को क्रान्तिवृत्त कहते हैं। उसे समान बारह भागों में बाँटने पर तीस-तीस अंश का मेषादि बारह राशियों का मान होता है। इन बारह राशियों के सूर्य द्वारा भोग किये जाने पर एक सौरवर्ष होता है। एक राशि के भोग

से एक सौरमास तथा एकांश भोग से एक सौरदिन होता है। इस प्रकार तीस अंश वाले एक राशि में तीस सौरदिन होते हैं।

एक अमान्त से दूसरे अमान्त तक का समय या पूर्णान्तिद्वयवर्त्ती काल चान्द्रमास कहलाता है। चान्द्रमास में कृष्ण तथा शुक्ल दो पक्ष होते हैं। पन्द्रह-पन्द्रह तिथि वाले दोनों पक्षों की तिथियाँ तीस होती हैं। अतः पूरे चान्द्रमास में तीस तिथियाँ होती हैं। 'दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः' के अनुसार सूर्य-चन्द्रमा के संगम को दर्श (अमावास्या) कहते हैं।

चन्द्रमा अधिक गतिशील हैं। अतः सूर्य-चन्द्र के संयोग रूप अमान्त के बाद शुक्ल-पक्ष का आरम्भ होता है। आकाश में अपनी-अपनी कक्षा में पूर्वाभिमुख चलने वाले सूर्य तथा चन्द्रमा का अन्तर जब १२ (बारह अंश) होता अर्थात् सूर्य से चन्द्रमा जब १२° (बारह अंश) आगे बढ़ जाते तो एक तिथि प्रतिपदा, २४ अंग आगे बढ़ जाने से द्वितीया तिथि एवं १८० अंश के अन्तर होने पर अर्थात् सूर्य से १८० अंश चन्द्रमा को आगे बढ़ जाने पर १५ तिथियाँ होती हैं। उसी पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा कहते हैं। पूर्णिमा की रात में सम्पूर्ण चन्द्र दिखलाई देते हैं। अमान्त में चन्द्रमा बिलकुल अदृश्य होते हैं। पूर्णिमा के बाद कृष्णपक्ष का आरम्भ होता है। उसमें भी पन्द्रह तिथियाँ होती हैं। इस तरह दोनों पक्षों की तिथियाँ मिलकर तीस हो जाती हैं, जिसे चान्द्रमास कहते हैं।

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय सावनदिन कहलाता है। तीस सावनदिनों का एक सावनमास होता है।

नक्षत्रों में अपनी गति नहीं है। ज्यौतिष-सिद्धान्तानुसार ग्रह तथा नक्षत्रों का पश्चिमाभिमुख परिभ्रमण प्रवह वायु के द्वारा होता है। निर्गतिक नक्षत्र को प्रवह वायु २४ घंटों में अपने स्थान पर पुनः पहुँचाती है। जैसे क्षितिजस्थ नक्षत्र को प्रवह वायु पश्चिमाभिमुख घुमाती हुई जब पुनः क्षितिज में लाती है तो एक नाक्षत्र दिन (या २४ घंटे) होता है। ऐसे तीस नाक्षत्र भ्रमण का एक नाक्षत्र मास होगा। नाक्षत्र मास की व्यावहारिक उपयोगिता नगण्य-सी है, किन्तु नाक्षत्र दिन तो बड़े ही उपयोगी हैं।

पौर्णमासीयुता येन नक्षत्रेण तदाह्वया ॥ १२ ॥
मासोऽपि विबुधैर्ज्ञेयस्तन्नक्षत्राभिधानकः।
यथा पौषे पुष्ययुक्ता माघे तु मघयाऽन्विता ॥ १३ ॥
पूर्णिमा, पौषमाघादि मासा एवं परेऽपि च।
अन्त्योपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयो फाल्गुनश्च त्रिभो मतः ॥ १४ ॥
शेषा मासा द्विभा ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया।

सुधा—पूर्णिमा तिथि को जो नक्षत्र रहता है उसी नाम से उस पूर्णिमा तथा उस महीने को पुकारते हैं। जैसे पुष्य नक्षत्र युक्ता पूर्णिमा पौषी पूर्णिमा तथा पौष मास

कहलाता है। माघ शुक्ल पञ्चदशी को मघा नक्षत्र रहने के कारण ही वह माघी पूर्णिमा तथा माघ महीना कहा जाता है। इसी तरह आगे भी समझना चाहिए। अर्थात् चित्रा नक्षत्र युक्ता पूर्णिमा चैती पूर्णिमा तथा चैत्र मास आदि।

कृत्तिकादि नक्षत्रों की व्यवस्था के अनुसार अन्त्य अर्थात् कार्त्तिक मास, उपान्त्य अर्थात् आश्विन मास तथा फाल्गुन—ये तीनों मास तीन-तीन नक्षत्रों से युक्त पूर्णिमा वाले मास होते हैं। शेष सभी मास दो-दो नक्षत्र वाले होते हैं। यथा—भरणी, कृत्तिका एवं रोहिणी से कार्तिक, मृगशिरा एवं आर्द्रा से अगहन, पुनर्वसु एवं पुष्य से पौष, आश्लेषा एवं मघा से माघ, पूर्वोत्तरफाल्गुनी एवं हस्त से फाल्गुन, चित्रा एवं स्वाती से चैत्र, विशाखा एवं अनुराधा से वैशाख, ज्येष्ठा एवं मूल से ज्येष्ठ पूर्वोत्तराषाढ से आषाढ, श्रवण एवं धनिष्ठा से श्रावण, शतभिषा एवं पूर्वभाद्र से भादो तथा उत्तरभाद्र, रेवती एवं अश्विनी से आश्विन मास होते हैं।

अधिमासः क्षयमासश्च

अधिमासस्तु सङ्क्रान्त्या विहीनो मास उच्यते ॥ १५ ॥
द्विसङ्क्रान्त्या युतो मासः क्षयाख्यः कीर्तितो बुधैः।
दलाढचैर्दशनैः सौरैर्मासैः स्यादधिमासकः ॥ १६ ॥
क्षयाख्यस्तु कुवेदेन्दु(१४१)वर्षैर्वा द्विद्विभूमितैः।
क्वचिद् गोकुमितैश्चापि वर्षैर्ज्ञेयो विदांवरैः ॥ १७ ॥
एतौ शुभेऽखिले त्याज्यौ क्वचिन्नैवाभिनन्दितौ।

सुधा—संक्रान्तिविहीन मास अधिमास और दो संक्रान्ति वाला मास क्षयमास कहलाता है। अर्थात् जिस चान्द्रमास के भीतर संक्रान्ति का अभाव हो उसे अधिमास तथा जिस चान्द्रमास के भीतर दो संक्रान्ति हो उसे क्षयमास कहते हैं।

अधिमास के बाद ३२ सौरमास तथा १५ सौरदिनों के बाद ही दूसरा अधिमास पड़ता है। क्षयमास बहुधा नहीं प्रत्युत १२, १४१ या १२२ वर्षों के बाद ही होता है। ये दोनों (अधिमास तथा क्षयमास) सभी शुभकार्य में त्याज्य हैं। कहीं भी प्रशस्त नहीं है।

विमर्श—प्रत्येक चान्द्रमास (अमान्तद्वय) में रविसंक्रान्ति का होना परमावश्यक है। चान्द्रमास में संक्रान्ति होने पर ही वह शुद्ध चान्द्रमास कहलाता है। अन्यथा (चान्द्रमास में संक्रान्ति के नहीं होने पर) वह अशुद्ध चान्द्रमास अधिमास कहलाता है।

एक चान्द्रमास के भीतर यदि दो संक्रान्ति पड़ जाय अर्थात् संक्रान्तिद्वयवर्ती समय अमान्तद्वयवर्ती समय से छोटा हो, जैसा कि कार्तिकादित्रय में ही सम्भव है, तो वह क्षयमास कहलाता है। अधिमास तथा क्षयमास दोनों ही शुभकार्य में गर्हित है। यही बात सिद्धान्तशिरोमणिकार भास्कराचार्य ने इस प्रकार कही है—

(क) असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्
द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ॥
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्

(ख) चान्द्रो न सौरेण हृतात्तु चान्द्रादवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढ्यैः ।
मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः…' ।

आदि अधिमास एवं क्षयमास के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है किन्तु यहाँ मूल पंक्ति की व्याख्या मात्र अपेक्षित समझ कर अधिक विस्तृत वर्णन से विरत हो रहा हूँ ।

अयने

मृगकर्कादिराशीनां षण्णां भोगो रवेः क्रमात् ॥ १८ ॥
सौम्यायनं तथैवान्यद्याम्यायनमिहोच्यते ।
सौम्यायने समस्तानि शुभकर्माणि प्रायशः ॥ १९ ॥
क्रियन्तेऽन्यानि सामान्याद्याम्याख्ये त्वयने बुधैः ।

सुधा—सूर्य द्वारा मकरादि छः राशियों के भोग को उत्तरायण और कर्कादि छः राशियों के भोग को याम्यायन (दक्षिणायन) कहते हैं । उत्तरायण में ही प्रायः समस्त शुभकार्य किये जाते हैं । अन्य (उग्र कर्म आदि कार्य सामान्यतः दक्षिणायन में होते हैं ।

संवत्सराः

संवत्सराः कतिपये प्रथिता नृपनामतः ॥ २० ॥
विशिष्टपुरुषाणां वा, यथा विक्रमसंज्ञया ।
शालिवाहननाम्नापि ख्रीष्टाब्दाः क्रीष्टनामतः ॥ २१ ॥
बङ्गसंवत्सराश्चान्ये कलिराष्ट्रियवत्सराः ।
सालसंवत्सराश्चैवं प्रथिता मिथिलाञ्चले ॥ २२ ॥
परतो विक्रमाब्देभ्यः पञ्चाग्निक्षिति(१३५)वत्सरैः ।
शालिवाहनसद्राज्ञः शकारम्भः प्रजायते ॥ २३ ॥
एवं विक्रमवर्षेभ्यो नगवाणमिताः समाः ।
परतः खलु विज्ञेयाः ख्रीष्टाब्दा गणकोत्तमैः ॥ २४ ॥

सुधा—कई एक संवत्सर राजाओं या विशिष्ट पुरुषों के नाम पर प्रचलित हैं । जैसे विक्रम संवत्सर विक्रमादित्य के नाम पर, शालिवाहन राजा के नाम पर शकाब्द (शकसंवत्सर), क्राइष्ट के नाम पर ख्रीष्टाब्द, प्रान्त के नाम पर बंगसंवत्सर, इसी तरह कलि संवत्सर या राष्ट्रिय संवत्सर आदि हैं ।

विक्रमाब्द के १३५ वर्षों के बाद शालिवाहन शक का आरम्भ होता है । विक्रम संवत्सराम्भ के ५७ वर्षों के बाद ईसा संवत्सर का आरम्भ होता है ।

षड् ऋतवः

ऋतवो हि वसन्ताद्याश्चैत्रादारभ्य कीर्तिताः ।
वसन्तो मीनमेषस्थे ग्रीष्मोऽर्के वृषयुग्मके ॥ २५ ॥
वर्षाकर्कटसिंहस्थे, प्रमदातुलगे शरत् ।
हेमन्तो वृश्चिकद्वन्द्वे शिशिरो मृगकुम्भगे ॥ २६ ॥
कुम्भादेव वसन्ताद्याः केषाञ्चिद् विदुषां मतम् ।

सुधा—चैत्र (मीनस्थ सूर्य) से वसन्तादि छः ऋतुओं की प्रवृत्ति होती है। जैसे मीन-मेषस्थ सूर्य में वसन्त ऋतु, वृष-मिथुनस्थ सूर्य में ग्रीष्म ऋतु, कर्क तथा सिंहस्थ सूर्य में वर्षा ऋतु, कन्या तथा तुलास्थ सूर्य में शरत् ऋतु, वृश्चिक तथा धनु:स्थ सूर्य में हेमन्त ऋतु और मकर-कुम्भस्थ सूर्य में शिशिर ऋतु होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि कुम्भस्थ सूर्य से ही वसन्तादि छः ऋतु प्रवृत्त होती है, अर्थात् कुम्भ-मीनस्थ सूर्य में वसन्त, मेष-वृषस्थ सूर्य में ग्रीष्म, मिथुन-कर्कस्थ सूर्य में वर्षा, सिंह-कन्यास्थ सूर्य में शरत्, तुला तथा वृश्चिकस्थ सूर्य में हेमन्त और धनु तथा मकरस्थ सूर्य में शिशिर ऋतु होती है ॥ १७-१९ ॥

अथ तिथयः

प्रतिपत् प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च ततः परा ॥ २७ ॥
तृतीयाऽथ चतुर्थी च पञ्चमी क्रमशस्तथा ।
षष्ठी ततः सप्तमी च अष्टमी नवमी पुनः ॥ २८ ॥
दशम्येकादशी तद्वत् द्वादशी च त्रयोदशी ।
चतुर्दशी तथाऽन्या तु कृष्णेऽमा पूर्णिमा सिते ॥ २९ ॥
चतुर्थी नवमी षष्ठी अमावास्या चतुर्दशी ।
सामान्यतो न शुभदाः शेषा ज्ञेयाः शुभप्रदाः ॥ ३० ॥

सुधा—पहली तिथि प्रतिपदा, दूसरी द्वितीया, तीसरी तृतीया, चौथी चतुर्थी, पाँचवीं पञ्चमी, छठी षष्ठी, सातवीं सप्तमी, आठवीं अष्टमी, नौमी नवमी, दशवीं दशमी, ग्यारहवीं एकादशी, बारहवीं द्वादशी, तेरहवीं त्रयोदशी, चौदहवीं चतुर्दशी, पन्द्रहवीं (कृष्णपक्ष में) अमावास्या एवं शुक्लपक्ष में पूर्णिमा होती है। चतुर्थी, नवमी, षष्ठी, अमावास्या तथा चतुर्दशी सामान्यतः अशुभ और शेष तिथियाँ शुभ होती हैं।

नन्दादितिथयः

एकादशी प्रतिपदा षष्ठी नन्दाऽभिधीयते ।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी च प्रकीर्त्तिता ॥ ३१ ॥
त्रयोदशी तृतीया च जया प्रोक्ताऽष्टमी तथा ।
चतुर्थी नवमी रिक्ता ज्ञेयाऽन्याऽपि चतुर्दशी ॥ ३२ ॥
पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमाऽमा च पक्षयोः ।

सुधा—प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी नन्दा कहलाती है। द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी—भद्रा; तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी—जया; चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी—रिक्ता और पञ्चमी, दशमी, (शुक्लपक्ष में) पूर्णिमा पूर्णा कहलाती है। कृष्णपक्ष में पञ्चमी, दशमी तथा अमावास्या पूर्णा है।

अर्थात्—

१।६।११ = नन्दा
२।७।१२ = भद्रा
३।८।१३ = जया
४।९।१४ = रिक्ता
५।१०।१५ या ३० = पूर्णा

तिथिक्षयवृद्धी

सूर्योदयस्पर्शहीना तिथिः स्यात्तु क्षयात्मिका ॥ ३३ ॥
सूर्योदयद्वयस्पृग् या तिथिः सा वृद्धिसंज्ञिका।
अप्युभे गर्हिते प्रोक्ते विशेषात् शुभकर्मणि ॥ ३४ ॥

सुधा—सूर्योदय के समय जो तिथि न हो अर्थात् सूर्योदयानन्तर किसी तिथि का आरम्भ और अग्रिम सूर्योदय से पूर्व ही उसका अवसान यदि हो तो वह तिथि क्षयसंज्ञक होती है। जो तिथि दो सूर्योदयों को छूने वाली हो, अर्थात् आज के सूर्योदय से पहले ही किसी तिथि का आरम्भ हो और अग्रिम सूर्योदय के बाद तक वह तिथि रहे तो (दोनों सूर्योदयों के समय उस तिथि के रहने के कारण) तिथिवृद्धि कही जायगी। किसी भी शुभ कार्य में तिथिक्षय या तिथिवृद्धि गर्हित है।

वाराः

रविश्चन्द्रस्तथा भौमो बुधो जीवो भृगुस्ततः।
शनैश्चर इमे ज्ञेया वाराः सप्त बुधैः क्रमात् ॥ ३५ ॥

सुधा—रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि—ये सात दिन होते हैं।

नक्षत्राणि

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी मृगः।
आर्द्रापुनर्वसू तद्वत् पुष्योऽहिश्च मघा ततः ॥ ३६ ॥
पूर्वोत्तराफल्गुनीति हस्तचित्रेऽनिलस्तथा।
विशाखा चानुराधाऽपि ज्येष्ठामूले क्रमात्ततः ॥ ३७ ॥
पूर्वोत्तराषाढसंज्ञे ततः श्रवणवासवौ।
शततारा: पूर्वभाद्रोत्तराभाद्रे च रेवती ॥ ३८ ॥
सप्तविंशतिकान्येवं भानीमानि जगुर्बुधाः।
अभिजिन्मलनक्षत्रमन्यच्चापि बुधैः स्मृतम् ॥ ३९ ॥

उत्तराषाढतुर्यांशः श्रुतिपञ्चदशांशकः ।
मिलित्वा चाभिजिन्मानं ज्ञेयं तद्द्वयमध्यगम् ॥ ४० ॥

सुधा—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, रेवती—ये सत्ताईस नक्षत्र हैं। अट्ठाइसवाँ 'अभिजित्' मल नक्षत्र है। उत्तराषाढ का चतुर्थांश और श्रवण का पन्द्रहवाँ भाग मिलकर अभिजित् का मान होता है। रामाचार्य ने भी मुहूर्त्तचिन्तामणि में 'वैश्वप्रान्त्याङ्घ्रिश्रुतितिथिभागतोऽभिजित् स्यात्' कहकर उपर्युक्त कथन की पुष्टि की है ॥ २८-३२½ ॥

अथ नक्षत्रज्ञानम्

चुचेचोला अश्विनीति लिलूलेलो यमाऽभिधा ।
अइउए कृत्तिका च ओबाबिबू तु रोहिणी ॥ ४१ ॥
बेबोककि मृगशिराः आर्द्रा कुघङछ क्रमात् ।
पुनर्वसु तथा पुष्यः केकोहहि, हुहेहोढाः ॥ ४२ ॥
डिडूडेडो अहिः प्रोक्तः ममीमूमे मघा स्मृता ।
पूर्वोत्तराफल्गुनी तु मोटटिटू टेटोपपिः ॥ ४३ ॥
हस्तः पुषणठो ज्ञेयः चित्रा पेपोररिर्भवेत् ।
रुरेरोताः स्मृता स्वाती तितूतेतो विशाखिका ॥ ४४ ॥
नानीनूनेऽनुराधा स्यात् ज्येष्ठा नोययियू भवेत् ।
येयोभभि मूलसंज्ञमशुभं जन्मकालिकम् ॥ ४५ ॥
पूर्वोत्तराषाढसंज्ञे भूधफढ भेभोजजिः ।
खिखूखेखो श्रवः प्रोक्तो गगीगूगे तु वासवः ॥ ४६ ॥
गोससिसू शतभिषा पूर्वभाद्रं सेसोददिः ।
उत्तराभाद्रसंज्ञं तु दूथझञ ततोऽन्तिमम् ॥ ४७ ॥
देदोचची रेवतीति नक्षत्रज्ञानकृत् स्मृतम् ।
जुजेजोखाभिजिद् ज्ञेया नक्षत्रज्ञानदा स्मृता ॥ ४८ ॥

सुधा—चु चे चो ल=अश्विनी, ली लू ले लो=भरणी, अ इ उ ए=कृत्तिका, ओ बा बि बू=रोहिणी, बे बो क कि=मृगशिरा, कु घ ङ छ=आर्द्रा, के को ह हि =पुनर्वसु, हु हे हो ढ़=पुष्य, डी डू डे डो=आश्लेषा, म मी मु मे=मघा, मो ट टि टू=पूर्वफल्गुनी, टे टो प पि=उत्तरफल्गुनी, पू ष ण ठ=हस्त, पे पो र रि= चित्रा, रु रे रो त=स्वाती, ती तू ते तो=विशाखा, ना नी नू ने=अनुराधा, नो या यि यू=ज्येष्ठा, ये यो भ भि=मूल, भू ध फ ढ़=पूर्वाषाढ, भे भो ज जि=उत्तरा-

षाढ़, खि खू खे खो=श्रवण, ग गी गु गे=धनिष्ठा, गो सा सि सू=शतभिषा, से सो द दि=पूर्वभाद्र, दु थ झ ञ=उत्तरभाद्र, दे दो च चि=रेवती तथा जु जे जो ख=अभिजित्। इन नक्षत्रों के द्वारा राशिज्ञान होता है।

नक्षत्रेषु चरणाः

भेषु सर्वेषु चत्वारश्चरणाः कीर्त्तिता यतः।
शतमष्टोत्तरमतः समेषु चरणाः स्फुटाः॥ ४९॥
चरणैर्नवभिस्त्वेको राशिरस्मात्तु द्वादशः।
राशयः सकलैर्भैस्तु ज्ञेया अग्रे यथोदिताः॥ ५०॥

सुधा—चूँकि सभी नक्षत्रों में चार-चार चरण होते हैं, अतः उपर्युक्त २७ नक्षत्रों में १०८ चरण होंगे। नौ चरणों की एक राशि, अतः १०८ चरणों की बारह राशि होंगी। जैसा कि आगे बतलाया गया है।

विष्कम्भादियोगाः (प्राचीनोक्त पद्य)

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च॥ ५१॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।
वज्रसिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः॥ ५२॥
सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मैन्द्रो वैधृतिः क्रमात्।
विष्कम्भाद्या इमे योगा ज्ञेया नामसदृक्फलाः॥ ५३॥

सुधा—१. विष्कम्भ, २. प्रीति, ३. आयुष्मान्, ४. सौभाग्य, ५. शोभन, ६. अतिगण्ड, ७. सुकर्मा, ८. धृति, ९. शूल, १०. गण्ड, ११. वृद्धि, १२. ध्रुव, १३. व्याघात, १४. हर्षण, १५. वज्र, १६. सिद्धि, १७. व्यतीपात, १८. वरीयान्, १९. परिघ, २०. शिव, २१. सिद्ध, २२. साध्य, २३. शुभ, २४. शुक्ल, २५. ब्रह्म, २६. ऐन्द्र तथा २७. वैधृति। ये विष्कम्भादि २७ योग नामसदृश फलद होते हैं।

विष्कम्भादियोगेषु वर्ज्यघटिकाः

विष्कम्भवज्रयोस्तिस्रो व्याघाते घटिका नव।
शूले पञ्चमिता नाड्यः षट् च गण्डातिगण्डयोः॥ ५४॥
वैधृतौ व्यतिपाते च सर्वाः परिघसंज्ञके।
मानार्धप्रमिता नाड्यः शुभे कर्मणि गर्हिताः॥ ५५॥

सुधा—विष्कम्भ तथा वज्र योग में तीन दण्ड, व्याघात योग में नौ दण्ड, शूल योग में पाँच दण्ड, गण्ड तथा अतिगण्ड योग में छः दण्ड (उपर्युक्त आदिम त्र्यादि दण्ड) वैधृति तथा व्यतिपात में सभी नाड़ी (समस्त मान) और परिघसंज्ञक योग में मानार्ध (पूर्वार्द्ध) शुभ कार्य में निन्दित अर्थात् त्याज्य है।

आनन्दादियोगाः

आनन्दः कालदण्डश्च धूम्रो धाताऽथ पञ्चमः ।
सौम्यो ध्वाङ्क्षोऽपि केतुश्च श्रीवत्सो वज्रमुद्गरौ ॥ ५६ ॥
छत्रं मित्रं मानसञ्च पद्मलुम्बौ ततः क्रमात् ।
उत्पातमृत्युकालाश्च सिद्धिश्चापि शुभोऽमृतः ॥ ५७ ॥
मुसलं गदमातङ्गौ राक्षसश्च चरः स्थिरः ।
प्रवर्धमान इत्येते योगा नामसदृक्फलाः ॥ ५८ ॥

सुधा—१. आनन्द, २. कालदण्ड, ३. धूम्र, ४. धाता, ५. सौम्य, ६. ध्वांक्ष, ७. केतु, ८. श्रीवत्स, ९. वज्र, १०. मुद्गर, ११. छत्र, १२. मित्र, १३. मानस, १४. पद्म, १५. लुम्ब, १६. उत्पात, १७. मृत्यु, १८. काल, १९. सिद्धि, २०. शुभ, २१. अमृत, २२. मुसल, २३. गद, २४. मातङ्ग, २५. राक्षस, २६. चर, २७. स्थिर तथा २८. प्रवर्धमान । ये आनन्दादि योग भी नामसदृश फलदायक हैं ॥ ४७ ॥

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण रूप पञ्चाङ्ग में योग का भी स्थान है । योग द्विविध है । विष्कम्भादि योग तथा आनन्दादि योग । पञ्चाङ्गान्तर्गत विष्कम्भादि योग ग्राह्य हैं तथा आनन्दादि योग यात्रादि में विचारणीय हैं ।

आनन्दादियोगेषु वर्ज्यघटिकाः

ध्वाङ्क्षे वज्रे मुद्गरे च पञ्चनाड्यो गदे नगाः ।
धौम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे घटिकाः क्रमात् ॥ ५९ ॥
पद्मलुम्बे चतस्रस्ता वर्जनीया बुधैः सदा ।
रक्षो मृत्यूत्पातकालनाड्यः सर्वा विगर्हिताः ॥ ६० ॥

सुधा—ध्वांक्ष, वज्र और मुद्गर नामक योग में पाँच घड़ी; गदयोग में सात घड़ी; धूम्र, काण, मौसल योग में क्रमशः एक, दो, दो घड़ी; पद्म, लुम्ब में चार-चार घड़ी आदिम त्याज्य है । राक्षस, मृत्यु, उत्पात तथा काल योगों में सभी घटिकाएँ (समस्त मान) त्याज्य हैं ।

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार रामाचार्य ने भी यही बात अपने मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में 'ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदेऽश्वाः । धौम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षो मृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे' ॥ कहा है ।

अथ करणानि

बवाख्यं बालवाख्यं च कौलवं तैतिलं तथा ।
गराख्यं पञ्चमं तद्वद् वणिजं षष्ठमीरितम् ॥ ६१ ॥
भद्राख्यं सप्तमं चेति करणानि जगुर्बुधाः ।

सुधा—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज तथा भद्रा—ये सात करण होते हैं ।

चरस्थिरकरणानि भद्रास्थितिश्च

करणानि बवादीनि सप्त सन्ति चलानि वै ॥ ६२ ॥
स्थिराणि शकुनिश्चैव चतुरङ्घ्रिश्च नागकम् ।
किंस्तुघ्न इति चत्वारि कथितानि विदांवरैः ॥ ६३ ॥
कृष्णपक्षचतुर्दश्युत्तरार्धात् करणानि तु ।
स्थिराणि विन्यसेदग्रे चलान्यपि ततः क्रमात् ॥ ६४ ॥
एवं शुक्लाष्टमीपञ्चदश्योः पूर्वार्धगा पुनः ।
एकादशी चतुर्थ्योस्तु भद्रा स्यादुत्तरार्धगा ॥ ६५ ॥
कृष्णेऽन्त्यार्धे तृतीयायां दशम्यां च सुनिश्चिता ।
पूर्वार्धे सप्तमी शम्भुतिथ्योर्ज्ञेया विपश्चिता ॥ ६६ ॥
एकादशमितान्येवं करणानि विनिर्दिशेत् ।

सुधा—बव आदि सात करण चल; शकुनि, चतुराङ्घ्रि, नाग एवं किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण हैं। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी के उत्तरार्ध से स्थिर करणों का, उसके बाद चल करणों का क्रमशः विन्यास करें। इस तरह शुक्लपक्ष की अष्टमी तथा पूर्णिमा के पूर्वार्ध में और एकादशी, चतुर्थी के उत्तरार्ध में, कृष्णपक्षीय तृतीया, दशमी के उत्तरार्ध एवं सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा की स्थिति होती है। इस प्रकार उपर्युक्त चल एवं स्थिर करणों के विन्यास से भद्रास्थिति समझें। क्रमागत भद्रा किसी भी शुभ कार्य में गर्हित है।

करण-स्पष्टार्थ चक्र

	शुक्लपक्ष		कृष्णपक्ष	
१	किं	ब	बा	कौ
२	बा	कौ	तै	ग
३	तै	ग	व	भद्रा
४	व	भ	ब	बा
५	ब	बा	कौ	तै
६	कौ	तै	ग	व
७	ग	व	भद्रा	ब
८	भद्रा	ब	बा	कौ
९	बा	कौ	तै	ग
१०	तै	ग	व	भद्रा
११	व	भ	ब	बा
१२	ब	बा	कौ	तै
१३	कौ	तै	ग	व
१४	ग	व	भद्रा	श
१५	भद्रा	ब	च	वा

इस चक्र के देखने से ही मुहूर्त्तचिन्तामणि का 'शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदश्योर्भद्रै-कादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे। कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात् तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशम्भु-तिथ्योः' ॥ यह पद्य युक्तियुक्त सिद्ध हो जाता है।

शुभाऽशुभा भद्रा

भद्रा क्रमागता त्याज्या सर्वथा शुभकर्मणि ॥ ६७ ॥
अक्रमेणागता भद्रा शुभदा सर्वकर्मसु।
दिने पूर्वार्धगा भद्रा रात्रावप्युत्तरार्धगा ॥ ६८ ॥
क्रमगा खलु विज्ञेया वैपरीत्येऽक्रमागता।

सुधा—किसी भी शुभ कार्य में क्रमागत भद्रा त्याज्य और अक्रमागत भद्रा शुभप्रद होने के कारण ग्राह्य है।

दिन के पूर्वार्धगा और रात के उत्तरार्धगा भद्रा क्रमागत है। इसके विपरीत अर्थात् दिन के उत्तरार्धगा और रात के पूर्वार्धगा भद्रा अक्रमागत होती है।

पञ्चाङ्गस्कन्धनामकरणे हेतुः

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च ॥ ६९ ॥
पञ्चैतानि विशेषेण स्कन्धेऽस्मिन् गदितान्यतः।
एतत्सम्बद्धविषया अपि वाच्या इहैव वै ॥ ७० ॥

सुधा—तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण—ये ही पाँच विशेष रूप से इस स्कन्ध में कहे गये हैं। इसीलिए इन पाँचों से सम्बद्ध विषयों का भी इसी स्कन्ध में वर्णन करना चाहिए।

उपर्युक्त पाँच अंगों के कारण ही इस स्कन्ध का पञ्चाङ्गस्कन्ध नामकरण किया गया है।

अथ राशयः

मेषो वृषोऽथ मिथुनं कर्कसिंहौ च कन्यका।
तुलालिचापनक्राख्याः कुम्भमीनौ च राशयः ॥ ७१ ॥
चरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञास्ते तु यथाक्रमम्।

सुधा—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—ये बारह राशियाँ हैं। ये क्रमशः चर एवं स्थिर द्विस्वभावसंज्ञक हैं। जैसे—

मेष, कर्क, तुला, मकर = चर
वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ = स्थिर
मिथुन, कन्या, धनु, मीन = द्विस्वभाव

अथ नक्षत्रेभ्यो राशिज्ञानम्

अश्विनी भरणी चापि कृत्तिकैकपदान्विता ।। ७२ ।।
मेषस्ततः कृत्तिकायाः पादत्रयसमन्विता ।
रोहिणी मृगपादाभ्यां युता स्याद् वृषभः पुनः ।। ७३ ।।
आर्द्रा मृगपदाभ्यां च त्रिभिः पादैः पुनर्वसोः ।
युक्ता हि मिथुनं ज्ञेयं पादमेकं पुनर्वसोः ।। ७४ ।।
पुष्याहिचरणैर्युक्तं कर्कटाख्यमुदीरितम् ।
मघापूर्वापदैर्युक्तमुत्तरैकपदं हरिः ।। ७५ ।।
पादत्रयं तूत्तरायाः हस्तस्य चरणाः समे ।
चित्रायाः पादयुगलमेभिः कन्या प्रकीर्त्तिता ।। ७६ ।।
स्वातीचित्रासुपादाभ्यां द्वीशपादत्रयेण च ।
युता तुलाऽथ शेषेण विशाखाचरणेन तु ।। ७७ ।।
ज्येष्ठाऽनुराधयोः पादा युक्ता वृश्चिकभं भवेत् ।
मूलपूर्वभयोः पादा उत्तरैकपदान्विताः ।। ७८ ।।
धनुरुत्तरपादैस्तु त्रिभिः श्रुतिपदाः समे ।
धनिष्ठापादयुग्मेन युक्ता नक्र उदीरितः ।। ७९ ।।
धनिष्ठाशेषपादाभ्यां पूर्वभाद्रपदैस्त्रिभिः ।
युक्ताः शतभिषापादाः कुम्भराशिरुदीर्यते ।। ८० ।।
पूर्वभाद्रपदैकेनोत्तरान्तिमभयोः पदाः ।
युक्ताः स्यादन्तिमो राशिर्मीनाख्य इति राशयः ।। ८१ ।।

सुधा—अश्विनी, भरणी के चार-चार चरण तथा कृत्तिका का एक चरण मिलकर मेष राशि है। कृत्तिका के अवशिष्ट तीन चरण, रोहिणी के चार चरण और मृगशिरा के दो चरण से वृष राशि; मृगशिरा के शेष दो चरण, आर्द्रा के चार चरण और पुनर्वसु के तीन चरण से मिथुन राशि; पुनर्वसु का शेष एक चरण तथा पुष्य एवं आश्लेषा के सभी चरण मिलकर कर्क राशि है। मघा, पूर्वा के सभी चरण तथा उत्तरफल्गुनी का एक चरण मिलकर सिंह राशि; उत्तरफल्गुनी के शेष तीन, हस्त के चार चरण और चित्रा के दो चरण से कन्या राशि है। चित्रा के दो चरण, स्वाती के चार चरण और विशाखा के तीन चरण से तुला राशि; विशाखा के अन्तिम चरण से युक्त अनुराधा तथा ज्येष्ठा के सभी चरण से वृश्चिक राशि; मूल तथा पूर्वाषाढ़ के सभी चरण और उत्तराषाढ़ के एक चरण से धनु राशि; उत्तराषाढ़ के तीन चरण, श्रवण के चार चरण और धनिष्ठा के दो चरणों से मकर राशि; धनिष्ठा के शेष दो चरण, शतभिषा के चार चरण और पूर्वभाद्रपदा के तीन चरणों से कुम्भ राशि है। अन्तिम राशि मीन पूर्वभाद्रपदा के एक चरण और उत्तराभाद्रपदा तथा रेवती के सभी चरणों से सिद्ध है।

राशिज्ञान-स्पष्टार्थ चक्र

मेष	अश्विनी चु चे चो ल	भरणी ली लू ले लो	कृत्तिका अ
वृष	कृत्तिका इ उ ए	रोहिणी ओ ब बी बू	मृगशिरा बे बो
मिथुन	मृगशिरा क कि	आर्द्रा कु घ ङ छ	पुनर्वसु के को ह
कर्क	पुनर्वसु हि	पुष्य हु हे हो ढ	आश्लेषा डि डू डे डो
सिंह	मघा म मी मु मे	पूर्वफल्गुनी मो ट टि टू	उत्तरफल्गुनी टे
कन्या	उत्तरफल्गुनी टो प पि	हस्त पु ष ण ठ	चित्रा पे पो
तुला	चित्रा र रि	स्वाती रु रे रो त	विशाखा ती तू ते
वृश्चिक	विशाखा तो	अनुराधा ना नी नू ने	ज्येष्ठा नो य यि यू
धनु	मूल ये यो भ भि	पूर्वाषाढ भू ध फ ढ	उत्तराषाढ भे
मकर	उत्तराषाढ भो ज जि	श्रवण खी खू खे खो	धनिष्ठा गा गी
कुम्भ	धनिष्ठा गु गे	शतभिषा गो सा सी सू	पूर्वभाद्र से सो द
मीन	पूर्वभाद्र दि	उत्तरभाद्र दु थ झ ञ	रेवती दे दो च चि

लग्नराश्योः स्वरूपम्

मेषादीनि तु लग्नानि द्वादशापि दिने दिने।
व्यतियन्ति हि तन्मानं भिन्नं भिन्नं स्थले स्थले ॥ ८२ ॥
क्षितिजे क्रान्तिवृत्तीयप्रदेशलगनाद् बुधैः।
लग्नसंज्ञा कृता तद्वत् राशयश्चन्द्रचारतः ॥ ८३ ॥
नक्षत्रेषु बुधैर्ज्ञेया मेषाद्या द्वादशैव ते।

सुधा—मेष आदि के बारहों लग्न प्रतिदिन बीतते हैं। उन लग्नों का मान, जिसे उदयमान कहते हैं, भिन्न-भिन्न स्थान में भिन्न-भिन्न होता है। रविभ्रमणमार्ग-स्वरूप क्रान्तिवृत्त प्रदेश प्रवह द्वारा संचालित होने पर क्षितिज में लगने के कारण लग्न कहलाता है।

नक्षत्रों में चन्द्रमा के संचार से मेषादिक बारह राशियाँ होती हैं। एक राशि के

भोग में लगभग सवा दो दिन लग जाते हैं। अर्थात् सवा दो दिन तक एक राशि रहती है, किन्तु एक लग्न के बीतने में दो घंटों से कुछ कम या कुछ अधिक समय लगता है। अतः लग्न और राशियों में नाम की एकता रहने पर भी बहुत ही अन्तर समझना चाहिए।

दिनरात्रिमाने

सूर्योदयाद् यावदस्तं दिनमानमुदीर्यते ॥ ८४ ॥
तदूना षष्टिघटिका रात्रिमानं प्रजायते।
दिनरात्रिमितिस्तुल्या मेषादौ सायने रवौ ॥ ८५ ॥
सायनायां च कन्यायां, सायने मकरादिके।
दिनमानमतीवाल्पं, रात्रिः स्यात्परकाधिका ॥ ८६ ॥
ततोऽग्रे खलु वर्धिष्णुर्दिनं रात्रिः क्षयोन्मुखी।
अतो बृहद्दिनारम्भे पर्व खीष्टधर्मिणाम् ॥ ८७ ॥
परमाल्पा क्षपा ज्ञेया सायने मिथुने रवौ।
दिनं महत्तमं तद्वत् ज्ञेयं तत्र विदांवरैः ॥ ८८ ॥

सुधा—सूर्योदय से सूर्यास्तावधिक समय दिन कहलाता है। दिनमान को साठ घटी में घटाने पर शेष रात्रिमान होता है। क्योंकि दिन-रात्रि की परिभाषा है—क्षितिज से ऊर्ध्वस्थ सूर्य में दिन और क्षितिज से अधःस्थित सूर्य में रात्रि।

सायनमेषादि या सायनकन्यादिस्थ सूर्य में दिन-रात्रिमान बराबर, सायन-मकरादिस्थ सूर्य में दिनमान परमाल्प और रात्रिमान परमाधिक, उसके बाद दिन वर्धिष्णु और रात्रि क्षयोन्मुख होते हैं।

सायनमिथुनस्थ सूर्य में दिन परमाधिक और रात परमाल्प समझना चाहिए। बृहद्दिनारम्भ में ईसाइयों का पर्व होता है।

पञ्चकस्वरूपं तत्र निषिद्धकर्माणि

प्रसिद्धं पञ्चकं ज्ञेयं धनिष्ठातोऽन्त्यभावधि।
धनिष्ठापञ्चके त्याज्यं याम्यदिग्गमनं तथा ॥ ८९ ॥
तृणकाष्ठादिभिर्गेहच्छादनं वंशकर्त्तनम्।
अन्यच्च गृहसम्बद्धकार्यं नारभते जनः ॥ ९० ॥

सुधा—धनिष्ठा नक्षत्र से रेवती नक्षत्र तक पाँच नक्षत्र समाज में **प्रसिद्ध पञ्चक** कहलाता है। इन धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में दक्षिण दिशा में जाना, तृण-काष्ठ आदि से घरों का आच्छादन करना, बाँस काटना आदि गर्हित है। तृण-काष्ठादि मूलक गृह-सम्बद्ध अन्य कार्यों का भी आरम्भ लोग इसमें नहीं करते हैं।

नक्षत्राणामन्धादिसंज्ञा तत्प्रयोजनञ्च

अन्धाक्षो मन्दनेत्रश्च मध्याक्षोऽथ सुलोचनः ।
ज्ञेया हि रोहिणीपूर्वं सप्तवारमनुक्रमात् ।। ९१ ।।
अन्धेऽपहृतवस्तूनां शीघ्रं लाभोऽपि चान्तिके ।
मन्दे यत्नात् मध्यसंज्ञे श्रुतिर्दूरे, सुलोचने ।। ९२ ।।
न श्रुतिर्नोपलब्धिश्च कदाचिदपि सम्भवेत् ।

सुधा—रोहिणी आदि सात-सात नक्षत्र क्रमशः अन्धाक्ष, मन्दाक्ष, मध्याक्ष तथा सुलोचनाख्य होते हैं । अन्धाक्ष में खोई हुई वस्तु शीघ्र एवं समीप में ही प्राप्त हो जाती है । मन्दाक्ष में अपहृत वस्तु प्रयत्न करने पर मिलती है । मध्याक्ष में विनष्ट वस्तु प्राप्त नहीं होती, किन्तु दूर में उसके अस्तित्व का पता चलता है । सुलोचनसंज्ञक नक्षत्रों में विनष्ट वस्तु न तो प्राप्त होती है या उसके अस्तित्व का कहीं पता चलता है ।

रामाचार्य ने भी 'विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे' आदि पद्य में यही बात कही है ।

स्पष्टार्थ चक्र

नक्षत्र

रो.	पु.	उ.फ.	वि.	पू.षा.	ध.	रेव.	अन्धाक्ष
मृग.	आ.	हस्त	अनु.	उ. षा.	श.	अ.	मन्दाक्ष
आ.	म.	चि.	ज्ये.	अभि.	पू.भा.	भर.	मध्याक्ष
पुन.	पू.फ.	स्वा.	मू.	श्र.	उ.भा.	कृ.	सुलो.

इति मैथिलपण्डितश्रीदेवचन्द्रझाविरचिते सविमर्शसुधाव्याख्योपेते व्यावहारिके ज्यौतिषसर्वस्वे पञ्चाङ्गस्कन्धः समाप्तः ।

अथ मुहूर्तस्कन्धः

मुहूर्त्तेषु च योगिन्यास्ताराचन्द्रमसोरपि ।
आनुकूल्यं तथा चन्द्रदिग्बलं शस्तभानि च ।। १ ।।
योगांश्च विविधान् सिद्धिप्रदान् यामार्धजा घटीः ।
सदसत्तिथिलग्नादिशुद्धिं ज्ञात्वैव तं दिशेत् ।। २ ।।

सुधा—मुहूर्त्त का विचार करते समय योगिनी, तारा तथा चन्द्रमा की अनुकूलता, चन्द्रदिग्बल, प्रशस्त नक्षत्र, विविध सिद्धयादि योग, अर्ध प्रहर, सदसत्तिथि तथा लग्नशुद्धि देखकर ही मुहूर्त्त का आदेश करें ।

चन्द्रदिग्बलम्

मेषसिंहधनुश्चन्द्रः पूर्वस्यां दिशि संस्थितः ।
याम्ये वृषे तु मकरे कन्यायां च बली स्मृतः ।। ३ ।।
कुम्भे तुलायां मिथुने प्रतीच्यां पुनरुत्तरे ।
मीनवृश्चिककर्केषु शशिनो दिग्बलं भवेत् ।। ४ ।।

सुधा—मेष, सिंह तथा धनु का चन्द्रमा पूर्व दिशा में; वृष, मकर, कन्या का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में; कुम्भ, तुला तथा मिथुन का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में और मीन, वृश्चिक तथा कर्क का चन्द्र उत्तर दिशा में बली होते हैं ।

ग्रामीण भाषा में भी यह प्रसिद्ध है—

मेष सिंह धनु पूर्व चन्दा दक्षिण कन्या वृष मकरन्दा ।
पश्चिम कुम्भ तुला ओ मिथुना उत्तर कर्कट वृश्चिक मीना ।।

दक्षिणे सम्मुखे चापि स्थितश्चन्द्रः शुभप्रदः ।
वामपृष्ठगतोऽनिष्टकरो ज्ञेयो विपश्चिता ।। ५ ।।

सुधा—सम्मुख या दक्षिण में स्थित चन्द्र शुभप्रद और वामपृष्ठस्थ वे अनिष्टकर होते हैं ।

अथ ताराज्ञानं तदभिधानञ्च

जन्मभाद् गणयेदादौ दिनधिष्णावधिक्रमात् ।
नवभिश्च हरेच्छेषैर्निम्नतारा विनिर्दिशेत् ।। ६ ।।
जन्माख्यसम्पद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः ।
वधमैत्रातिमैत्राख्यास्तारा नामसदृक्फलाः ।। ७ ।।

द्वितीयाऽपि चतुर्थी च षष्ठी पुनरथाष्टमी ।
नवमी च शुभा ज्ञेयाऽवशिष्टा न शुभप्रदा ।। ८ ।।
तृतीयावृत्तिजनितास्ताराः सर्वाः शुभावहाः ।

सुधा—जन्मनक्षत्र से दिननक्षत्र तक गिन कर नव (९) से भाग दें, शेष से निम्न क्रमानुसार तारा समझें । एक शेष में जन्मतारा, दो शेष रहने पर सम्पत्तारा, तीन शेष में विपत्तारा, चार शेष में क्षेमतारा, पाँच शेष में प्रत्यरितारा, छः शेष में साधकतारा, सात शेष में वधतारा, आठ शेष में मैत्रसंज्ञक तारा और नव शेष में अतिमैत्र तारा समझना चाहिए । इनका फल भी नामसदृश ही होता है । उपर्युक्त ताराओं में दूसरी, चौथी, छठी, आठवीं तथा नवमी तारा शुभप्रद, शेष जन्म, विपत्, प्रत्यरि तथा वध तारा अशुभप्रद होती है ।

तृतीयावृत्तिजनित तारा सभी शुभप्रद होती है । जैसे जन्मनक्षत्र से वर्त्तमान नक्षत्र तक गिनने से अठारह से अधिक होने पर नव (९) से भाग देने पर दो लब्धि, शेष पर से आगत तारा तृतीयावृत्तिक समझी जायगी । ऐसी स्थिति में अशुभप्रद भी जन्म, विपत्, प्रत्यरि तथा वध तारा शुभप्रद ही होगी । जैसा कि किसी ने 'सर्वे तृतीये शुभाः' कहा है । अर्थात् तृतीय पर्याय (आवृत्ति) में सभी शुभप्रद हैं ।

ताराशान्तिः

प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यात् त्रिजन्मसु ।। ९ ।।
गुडं विपत्तितारायां सुवर्णं निधने स्मृतम् ।

सुधा—प्रत्यरितारा रहने पर नमक दान से उसकी शान्ति होती है । इसी तरह जन्मतारा में शाक, विपत्तितारा में गुड़ और मृत्युतारा में सुवर्ण दान से तारा-शान्ति होती है ।

चन्द्रानयनम्

जन्मराशेर्वर्त्तमानराशिं यावत्तु या मितिः ।। १० ।।
तावत्सङ्ख्यो भवेच्चन्द्रः शुभाऽशुभफलप्रदः ।
रिष्फाष्टतुर्यगोऽनिष्टस्ततोऽन्यत्र शुभप्रदः ।। ११ ।।

सुधा—जन्मराशि से वर्त्तमान राशि तक गिनने से जो संख्या आवे तत्संख्यक चन्द्रमा शुभाशुभप्रद होते हैं । १२, ८, ४ स्थ चन्द्रमा अशुभप्रद और अन्यत्र सभी स्थानस्थ चन्द्रमा शुभप्रद होते हैं ।

जन्मराशितः प्रथमादिराशिगतचन्द्रफलम्

प्रथमः स्थितिकृत् चन्द्रो द्वितीयश्चार्थलाभदः ।
तृतीयः क्षेमनैरुज्यकरस्तुर्यः कलिप्रदः ।। १२ ।।
पञ्चमो ज्ञानदश्चैव षष्ठो धान्यादिलाभकृत् ।
सप्तमो मानदः प्राणसंशयात्माऽष्टमः स्मृतः ।। १३ ।।

नवमो धनदो नित्यं दशमोऽभीष्टसिद्धिदः ।
एकादशो विजयदो द्वादशो हानिकृन्नृणाम् ॥ १४ ॥

सुधा—जन्मस्थान से प्रथमस्थानगत चन्द्र स्थितिकर, दूसरा चन्द्रमा धनलाभकर, तीसरा चन्द्र नैरुज्य एवं कल्याणकर, चतुर्थ चन्द्रमा कलहकर, पञ्चम चन्द्रमा ज्ञान-वृद्धिद, षष्ठ चन्द्रमा धन-धान्यादि लाभकारी, जन्मराशि से सातवाँ चन्द्र सम्मानप्रद, अष्टम चन्द्रमा प्राण को संकट में डालने वाला, नवम चन्द्र नित्य धनलाभकारी, दशम चन्द्रमा अभीष्ट सिद्धिप्रद, ग्यारहवाँ विजयप्रद तथा बारहवाँ चन्द्र हानिकर होते हैं । अर्थात् चौथा, आठवाँ एवं बारहवाँ चन्द्रमा अनिष्टकर, शेष सभी स्थानगत चन्द्रमा शुभप्रद होते हैं ।

अत्रापवादः (प्राचीनोक्तः)

अभिषेके निषेकेऽन्नप्राशने व्रतबन्धने ।
गृहप्रवेशे यात्रायां चन्द्रो द्वादशगः शुभः ॥ १५ ॥
जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ।
क्षौरभैषज्यवादाध्वकर्त्तनेषु विवर्जयेत् ॥ १६ ॥
कृष्णपक्षे बुधैर्ज्ञेया ताराशुद्धिर्बलीयसी ।
शुक्लपक्षे तथा चन्द्रशुद्धिर्बोध्या बलीयसी ॥ १७ ॥
सम्मुखस्थे विधौ सर्वे दोषा नश्यन्ति सर्वथा ।

सुधा—राज्याभिषेक, गर्भाधान, अन्नप्राशन, उपनयन, गृहप्रवेश तथा यात्रा में द्वादशस्थ चन्द्रमा शुभप्रद हैं । जन्मनक्षत्रस्थ चन्द्रमा सभी कार्यों में शुभप्रद हैं, किन्तु क्षौरकर्म, औषधिसेवन, वाद-विवाद, यात्रा तथा छेदनकर्म—ये जन्मनक्षत्रस्थ चन्द्रमा शुभद नहीं हैं ।

कृष्णपक्ष में तारा बलवती है, किन्तु शुकपक्ष में चन्द्रमा प्रबल होते हैं । जैसा कि नारद ने कहा है—'कृष्णे बलवती तारा शुक्लपक्षे बली शशी' । अतः कृष्णपक्ष में ताराशुद्धि और शुक्लपक्ष में चन्द्रशुद्धि होनी चाहिए ।

सम्मुख चन्द्रमा हो तो सभी दोष नष्ट हो जाते हैं । जैसा कि अन्य ग्रन्थ में भी 'हरति सकलदोषं चन्द्रमाः सम्मुखस्थः' कहा गया है ।

तिथिवारजाः सिद्धियोगाः

शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया ॥ १८ ॥
गुरौ पूर्णा च विख्याता योगाः सिद्धिप्रदा बुधैः ।
रवौ जया चन्द्रवारे नन्दाऽपि खलु सिद्धिदा ॥ १९ ॥

सुधा—शुक्रवार को नन्दा, बुधवार को भद्रा, शनिवार को रिक्ता, मंगलवार को जया, गुरुवार को पूर्णा तिथियाँ तथा रविवार को जया और सोमवार को नन्दा भी सिद्धिप्रद योग कहे गये हैं ।

रामाचार्य ने भी 'नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्यः' कहने के बाद 'सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धा' कहा है ।

तिथिवारजा अमृतयोगाः

बुधे नन्दा च मन्दे च कुजे भद्रा जया गुरौ ।
पूर्णा रवौ शशाङ्के च भृगौ रिक्ताऽमृतं भवेत् ।। २० ।।

सुधा—बुध तथा शनि वार को नन्दा, मंगल को भद्रा, गुरुवार को जया, रवि तथा सोम वार को पूर्णा और शुक्रवार को रिक्ता अमृतसंज्ञक योगकारक है ।

तिथिवारजा मृत्युयोगाः

नन्दा सूर्ये कुजे चैव भद्रा भार्गवचन्द्रयोः ।
बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा तु मृत्युदा ।। २१ ।।

सुधा—रविवार तथा मंगलवार को नन्दा तिथियाँ, शुक्र तथा चन्द्र वार को भद्रा तिथियाँ, बुधवार को जया, गुरुवार को रिक्ता तिथियाँ एवं शनिवार को पूर्णा तिथियाँ मृत्युयोगकारक हैं ।

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार रामाचार्य ने भी यही बात कही है; यथा—

'नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा पूर्णसंज्ञाऽधमाऽर्कात्' ।

तिथिवारजा अधमयोगाः

द्वादशी रविवारे तु सोमे चैकादशी तथा ।
भौमे तु दशमी ज्ञेया तृतीया बुधवासरे ।। २२ ।।
गुरौ षष्ठी द्वितीया तु शुक्रे, चाथ शनौ भवेत् ।
सप्तमी सर्वकार्याणामारम्भध्वंसकारिणी ।। २३ ।।

सुधा—रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को दशमी, बुधवार को तृतीया, गुरुवार को षष्ठी, शुक्रवार को द्वितीया तथा शनिवार को सप्तमी सर्वविध कार्य-ध्वंसकारिणी हैं ।

अन्यत्र भी कहा गया है—

'द्वादश्यर्कयुता भवेन्न शुभदा सोमेन चैकादशी
भौमेनाऽपि युता तथैव दशमी नेष्टा तृतीया बुधे ।
षष्ठी नेष्टफलप्रदा गुरुदिने शुक्रे द्वितीया तथा
सर्वारम्भविनाशनस्य जननी सूर्यात्मजे सप्तमी' ।।

विमर्श—उपर्युक्त सिद्धियोगप्रतिपादक वचनानुसार सोमवार को एकादशी तिथि सिद्धिप्रद कही गई है, किन्तु 'द्वादश्यर्कयुता' इत्यादि वचनानुसार एकादशी सोमवार को गर्हित मानी गयी है । यह विचारणीय विषय है ।

विशेषः

एकस्मिन् दिवसे चेत् स्तो योगौ सिद्धामृतौ यदा ।
तद्दिनं दूषितं ज्ञेयं मधुसर्पिर्विषं यथा ।। २४ ।।

सुधा—एक दिन में सिद्धियोग एवं अमृतयोग दोनों पड़ जाये तो वह दिन दूषित (अशुभ) हो जाता है । जैसा कि समभाग वाले मधु तथा घृत के संयोग से विष की उत्पत्ति हो जाती है ।

नक्षत्रवारजाः सर्वार्थसिद्धियोगाः

रवौ पुष्याश्विमूलार्का उत्तरात्रयसंयुताः ।
चन्द्रेऽनुराधा श्रवणा रोहिणीज्यमृगास्तथा ।। २५ ।।
भौमेऽश्विनी कृत्तिका चोत्तराभाद्रपदाऽप्यहिः ।
बुधेऽनुराधा हस्ताग्निमृगा अपि च रोहिणी ।। २६ ।।
जीवेऽनुराधा पुष्याश्विरेवत्योऽपि पुनर्वसुः ।
शुक्रे पुनर्वसुमैंत्रमश्विनी रेवती मृगः ।। २७ ।।
शनौ ब्राह्मं श्रवः स्वाती ज्ञेयाः सर्वार्थसिद्धिदाः ।

सुधा—रविवार को पुष्य, अश्विनी, मूल, हस्त तथा उत्तरात्रय; चन्द्रवार को अनुराधा, श्रवण, रोहिणी, पुष्य तथा मृगशिरा; मंगलवार को अश्विनी, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा तथा आश्लेषा; बुधवार को अनुराधा, हस्त, कृत्तिका, मृगशिरा तथा रोहिणी; गुरुवार को अनुराधा, पुष्य, अश्विनी, रेवती तथा पुनर्वसु; शुक्रवार को पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी, रेवती तथा श्रवण; शनिवार को रोहिणी, श्रवण तथा स्वाती—ये नक्षत्र सर्वार्थसिद्धिप्रद हैं ।

यह सर्वार्थसिद्धिप्रद योग 'सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रमि'त्यादि पद्य द्वारा रामाचार्य ने भी मुहूर्त्तचिन्तामणि में कहा है ।

स्पष्टार्थ सिद्ध्यादियोगबोधक चक्र

दिन	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	
सिद्धियोग	३।८।१३	१।६।११	३।८।१३	२।७।१२	५।१०।१५	१।६।११	४।१४।९	तिथियाँ
अमृतयोग	५।१०।१५	५।१०।१५	२।७।१२	१।६।११	३।८।१३	४।१४।९	१।६।११	
मृत्युयोग	१।६।११	२।७।१२	१।६।११	३।८।१३	४।१४।९	२।७।१२	५।१०।१५	
अधमयोग	१२	११	१०	३	६	२	७	
नक्षत्र-वारज सर्वार्थ-सिद्धियोग	पुष्य, अश्विनी, मूल, हस्त तथा उत्तरात्रय	अनु., श्रव. रोहि., पुष्य तथा मृगशिरा	अश्वि., कृत्ति., उत्तराभा. तथा आश्ले.	अनु., हस्त, कृत्ति., मृग., तथा रोहि०	अनु., पुष्य. अश्वि., रेवती तथा पुनर्वसु	पुन., अनु. रेव., अश्वि. तथा श्रवण	रोहि०, श्रव० तथा स्वाती	नक्षत्र

नक्षत्रवारजा अन्ये शुभयोगाः

पुष्यहस्तोत्तरामूलं रवौ, चन्द्रे तु रोहिणी ॥ २८ ॥
श्रवो मृगशिराश्चापि, कुजे पुष्योत्तरात्रयम् ।
कृत्तिकाऽपि, बुधे वह्निर्मैत्रं वरुण एव च ॥ २९ ॥
पुष्यः पुनर्वसुश्चैव गुरौ, शुक्रे भगाश्विनी ।
श्रवणः, शनिवारे तु स्वाती तद्वच्च रोहिणी ॥ ३० ॥
एते हि शुभदा योगा वारनक्षत्रजाः स्मृताः ।

सुधा—रविवार को पुष्य, हस्त, मूल तथा उत्तरात्रय; चन्द्रवार को रोहिणी, श्रवण तथा मृगशिरा; मंगलवार को पुष्य, कृत्तिका तथा उत्तरात्रय; बुधवार को कृत्तिका, अनुराधा तथा शतभिषा; गुरुवार को पुनर्वसु तथा पुष्य; शुक्रवार को पूर्वफल्गुनी, अश्विनी तथा श्रवण; शनिवार को स्वाती तथा रोहिणी नक्षत्र वारनक्षत्रज शुभद योग हैं ।

नक्षत्रवारजाः सिद्धामृतयोगाः

रवौ हस्तो गुरौ पुष्योऽनुराधा बुधवासरे ॥ ३१ ॥
रोहिणी तु शनौ, चन्द्रे मृगो, भौमेऽश्विनी तथा ।
शुक्रे पूषा यदि भवेद् विज्ञैर्नक्षत्रवारजाः ॥ ३२ ॥
योगा विशिष्टफलदा ज्ञेयाः सिद्धामृताभिधाः ।

सुधा—रविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुधवार को अनुराधा, शनिवार को रोहिणी, सोमवार को मृगशिरा, मंगलवार को अश्विनी और शुक्रवार को रेवती नक्षत्र पड़े तो विशेष फलप्रद नक्षत्रवारज सिद्धामृतसंज्ञक योग कहे गये हैं ।

इसी विषय को किसी ने इस प्रकार कहा है—

'हस्ते रवौ शशधरे च मृगोत्तमाङ्गं
भौमेऽश्विनी बुधदिने च तथाऽनुराधा ।
तिष्यो गुरौ भृगुसुतेऽपि च पौष्णधिष्णं
रोहिण्यथार्कतनयेऽमृतसिद्धमाहुः' ॥

नक्षत्रवारजा मृत्युयोगाः

मैत्रं रवौ, वैश्वदेवं चन्द्रे शतभिषा कुजे ॥ ३३ ॥
बुधेऽश्विनी गुराविन्दुः शुक्रेऽहिः शनिवासरे ।
हस्त एते सप्तयोगा मृत्युदाः शुभगर्हिताः ॥ ३४ ॥

सुधा—रविवार को अनुराधा, सोमवार को उत्तराषाढ़ा, मंगल को शतभिषा, बुधवार को अश्विनी, गुरुवार को मृगशिरा, शुक्रवार को आश्लेषा और शनिवार को हस्त—ये सात योग नक्षत्रवारज मृत्युयोग हैं ।

इसे शिशुबोधकार ने इस प्रकार कहा है—

'त्यज रविमनुराधे वैश्वदेवं च सोमे
शतभिषजि च भौमं चन्द्रजं चापि दस्रे ।
मृगशिरसि सुरेज्यं सर्पदेवे च शुक्रं
रविसुतमपि हस्ते मृत्युयोगाभिधानम्' ।।

वारदिक्शूलम्

शनौ चन्द्रे तु पूर्वस्यां दक्षिणस्यां गुरौ तथा ।
सूर्ये शुक्रे प्रतीच्यां वै उदीच्यां बुधभौमयोः ।। ३५ ।।
दिशाशूलं विशेषेण प्राच्यां मन्देऽग्निकोणके ।
चन्द्रे, गुरौ दक्षिणस्यां, बुधे नैर्ऋतिकोणके ।। ३६ ।।
रवौ प्रतीच्यां, शुक्रे तु वायुकोणे, ज्ञभौमयोः ।
उदीच्यां तत्तु विज्ञेयं न गच्छेत्तत्र कोविदः ।। ३७ ।।

सुधा—शनि तथा सोम वार को पूर्व दिशा में, गुरुवार को दक्षिण दिशा में, सूर्य तथा शुक्र वार को पश्चिम दशा में और बुध तथा मंगल वार को उत्तर दिशा में दिक्-शूल होता है । विशेष रूप से वह शनिवार को पूर्व दिशा में, सोमवार को अग्नि कोण में, गुरुवार को दक्षिण दिशा में, बुधवार को नैर्ऋति कोण में, रविवार को पश्चिम दिशा में, शुक्रवार को वायव्य कोण में और मंगल तथा बुध वार को उत्तर दिशा में दिक्शूल प्रयुक्त नहीं जाना चाहिए ।

नक्षत्रदिक्शूलम्

ज्येष्ठामूलभयोरैन्द्रीमश्विनीपूर्वभाद्रयोः ।
याम्यां, तथोत्तरां हस्तभगयोः पश्चिमां पुनः ।। ३८ ।।
रोहिणीपुष्ययोर्नैव गच्छेन्नक्षत्रशूलतः ।

सुधा—ज्येष्ठा तथा मूल में पूर्व दिशा, अश्विनी तथा पूर्वभाद्र में दक्षिण दिशा, हस्त तथा पूर्वफल्गुनी में उत्तर दिशा, रोहिणी एवं पुष्य में पश्चिम दिशा की ओर नहीं जाना चाहिए । क्योंकि तत्तद्दिशा में उपर्युक्त नक्षत्रों में दिशाशूल होता है ।

योगिनीविचारः

प्रतिपत्सु नवम्यां च पूर्वस्यां दिशि योगिनी ।। ३९ ।।
अग्निकोणे तृतीयायामेकादश्यां च सा भवेत् ।
पञ्चम्यां च त्रयोदश्यां दक्षिणस्यां दिशि स्मृता ।। ४० ।।
द्वादश्यां च चतुर्थ्यां तु नैर्ऋत्यां दिशि विश्रुता ।
षष्ठ्यां चैव चतुर्दश्यां प्रतीच्यां सा त्ववस्थिता ।। ४१ ।।

पूर्णिमायां च सप्तम्यां वायुकोणे सुनिश्चिता ।
दशम्यां च द्वितीयायामुदीच्यां सा शिवा भवेत् ।। ४२ ।।
अमावास्याऽष्टमीतिथ्योरैशान्यां योगिनी स्थिता ।
योगिनी पार्वती प्रोक्ता शुभदा वामपृष्ठगा ।। ४३ ।।
दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मरणप्रदा ।
क्वचित्सम्मुखवामस्था योगिनी त्वशुभेरिता ।। ४४ ।।

सुधा—प्रतिपदा तथा नवमी में योगिनी का पूर्वदिशा में निवास होता है। तृतीया तथा एकादशी में अग्निकोण में, पञ्चमी तथा त्रयोदशी में दक्षिण दिशा में, द्वादशी तथा चतुर्थी में नैर्ऋति कोण में, षष्ठी तथा चतुर्दशी में पश्चिम दिशा में, पूर्णिमा तथा सप्तमी में वायव्य कोण में, दशमी तथा द्वितीया में उत्तर दिशा में, अमावास्या तथा अष्टमी तिथियों में ईशान कोण में योगिनी का निवास होता है।

योगिनी पार्वती ही हैं, जो कि वामपृष्ठस्थ रहने पर शुभप्रद होती है। दक्षिणस्थ योगिनी धननाशक तथा सम्मुखस्थ वह प्राणघातक होती है। कहीं-कहीं सम्मुख तथा वामस्थ योगिनी अशुभप्रद कही गई है।

रव्यादिवारे कालवेलाऽर्धयामप्रतिपादनम्

रवौ तुर्यः पञ्चमश्च चन्द्रे द्वितयसप्तमौ ।
कुजे षष्ठो द्वितीयश्च तृतीयः पञ्चमो बुधे ।। ४५ ।।
सप्तमश्चाष्टमो जीवे भृगौ तुर्यतृतीयकौ ।
शनौ षष्ठादिमान्त्यास्तु दिने वर्ज्यार्धयामकाः ।। ४६ ।।

सुधा—रविवार को चतुर्थ तथा पञ्चम, सोमवार को द्वितीय तथा सप्तम, मंगल को द्वितीय एवं षष्ठ, बुधवार को तृतीय तथा पञ्चम, गुरुवार को सप्तम तथा अष्टम, शुक्रवार को तृतीय एवं चतुर्थ और शनिवार को षष्ठ आदिम तथा अन्तिम (अर्ध-प्रहर) दिन में त्याज्य हैं। (अर्धयाम = दिन का अष्टमांश)

रात्र्यर्धयामप्रतिपादनम्

रवौ षष्ठस्तुरीयश्च चन्द्रे तुर्योऽपि सप्तमः ।
द्वितीयो ननु माहेये बुधे पञ्चमसप्तमौ ।। ४७ ।।
जीवेऽष्टमः पञ्चमश्च तृतीयो भृगुजे शनौ ।
षष्ठश्चाद्यान्तिमावर्धप्रहरा अशुभा निशि ।। ४८ ।।

सुधा—रविवार की रात में छठा और चौथा, सोमवार को चौथा और सातवाँ, मंगल का दूसरा मात्र, बुधवार को पाँचवाँ और सातवाँ, गुरुवार को पाँचवाँ और आठवाँ, शुक्रवार को तीसरा मात्र तथा शनिवार को छठा, पहला एवं अन्तिम अर्ध-प्रहर रात में अशुभ अर्थात् त्याज्य है।

इसी बात को किसी ने इस प्रकार कहा है—

'रवौ रसाब्धी हिमगौ हयाब्धी द्वयं महीजे विधुजे शरागौ ।
गुरौ शराष्टौ भृगुजे तृतीयं शनौ रसाद्यन्तमिति क्षपायाम्' ।।

विमर्श—उपर्युक्त दिन रात्रिगत अर्धप्रहरों में अर्धयाम तथा कालवेला दोनों का सम्मिश्रण है । जैसे रविवार को चौथा अर्धयाम और पाँचवाँ कालवेला है । अर्धयाम जानने का तरीका इस प्रकार है—'वामस्त्रिघ्नोऽष्टभिस्तष्ट: सैक: स्यादर्धयामक:' के अनुसार रविवार को वारसंख्या = १ । इसे तीन से गुणा कर आठ से भाग देने पर शेष = ३ । इसमें एक जोड़ने पर ३ + १ = ४ = अर्धयाम । इसी तरह सोमवार को उपर्युक्त नियमानुसार $\frac{२ \times ३}{८} = \frac{६}{८} =$ ल $+ \frac{\text{शे}}{८}$ यहाँ लब्धि = ० शेष = ६ । इसमें एक जोड़ने पर ६ + १ = ७ = अर्धयाम । इसी तरह—मंगलवार को अर्धयाम = २, बुधवार को = ५, गुरुवार को अर्धयाम = ८, शुक्रवार को अर्धयाम = ३, शनिवार को अर्धयाम = ६ । इस प्रकार रव्यादि दिनों में अर्धयाम क्रमश: = ४।७।२।५।८।३।६ ।

दिनगत रव्यादि वारों में क्रमश: ५।२।६।३।७।४।१, ८—ये अर्धप्रहर कालवेला है, जिसका आनयन इस प्रकार है—

'आद्योऽष्टभागो दिवसाधिपस्य तत: परं षट् परिवर्त्तनेन ।
यस्मिन् विभागे रविजस्य वेला सर्वेषु कार्येष्वधमा भवेत् सा' ।।

इसके अनुसार आदिम अष्टमांश दिनेश का, उसके बाद द्वितीय अष्टमांश का अधिप दिनेश से षष्ठ, पुन: उससे षष्ठ का तृतीय अष्टमांश; इस तरह शनि का जो अष्टमांश हो वही कालवेला कहलाता है, जो सभी शुभकार्यों में निन्द्य है । जैसे रविवार को प्रथम अष्टमांशेश रवि स्वयम्, तत: पर रवि से षष्ठ शुक्र द्वितीय अष्टमांशेश, पुन: शुक्र से षष्ठ बुध तृतीयाष्टमांशेश, बुध से षष्ठ सोम चतुर्थ अष्टमांशेश तथा सोम से षष्ठ शनि पञ्चम अष्टमांशेश (अर्धप्रहरेश) हुए । अत: रविवार को पञ्चम अर्धप्रहर, जिसका अधिप शनि है, वही कालवेला सिद्ध हुआ । इसी तरह सोमवार को प्रथम अर्धप्रहरेश दिनाधिप सोम द्वितीय अर्धप्रहरेश सोम से षष्ठ शनि, अत: दूसरा अर्धप्रहर सोमवार को कालवेला सिद्ध हुआ, जो सभी शुभकार्यों में निन्द्य है । मंगलवार को प्रथम अर्धप्रहरेश मंगल स्वयम्, द्वितीय अर्धप्रहरेश मंगल से षष्ठ रवि, तृतीय अर्धप्रहरेश रवि से षष्ठ शुक्र, चतुर्थ अर्धप्रहरेश शुक्र से षष्ठ बुध, पञ्चम अर्धप्रहरेश बुध से सोम, षष्ठ अर्धप्रहरेश सोम मे षष्ठ शनि । अत: यही मंगलवार को कालवेला, जो शुभकार्य में निन्द्य है, सिद्ध हुआ । इस तरह आगे भी जानना चाहिए । अत: रव्यादि वारों में कालवेला = ५।२।६।३।७।४ तथा १, ८ ।

रात्रिगतकालवेलानयनम्

तथा निशायां वसुभाग आद्यस्तत: परं वै शरवर्त्तनेन ।
यस्मिन् विभागे रविजस्य वेला शुभेषु कार्येष्वखिलेषु निन्द्या: ।। ४९ ।।

सुधा—इसके अनुसार प्रथम अर्धप्रहरेश दिवाधिप, ततः पर द्वितीयादि अर्धप्रहरेश पाँच-पाँच दिनों के बाद का समझना चाहिए। इस प्रकार शनि की वेला कालवेला जो सभी शुभकार्यों में निन्द्य होता है। जैसे रविवार को प्रथम अर्धप्रहरेश रवि स्वयम्, द्वितीय अर्धप्रहरेश रवि से पञ्चम गुरु, तृतीय अर्धप्रहरेश गुरु से पञ्चम सोम और चतुर्थ अर्धप्रहरेश सोम से पञ्चम शुक्र हुए। पञ्चम अर्धप्रहरेश शुक्र से पञ्चम मंगल और षष्ठ अर्धप्रहरेश मंगल से पञ्चम शनि हुए। अतः शनि की कालवेला छठा अर्धप्रहर रविवार की रात में हुई, जो सर्वथा शुभकार्य में त्याज्य है। इसी तरह रात्रिगत रव्यादिवारों में कालवेला क्रमशः ६।४।२।७।५।३।१।८।

यात्रामुहूर्त्ताः

सर्वदिग्गमने शस्ताः मृगाश्विश्रवणाः स्मृताः।
सर्वसिद्धिकरः पुष्यो विद्यायां च गुरुर्यथा॥ ५०॥
आर्द्राऽऽश्लेषोत्तराद्वीशमघायमकृशानवः।
पुनर्वसुकरज्येष्ठा मूलेन्दुश्रुतिरेवती॥ ५१॥
पुष्याऽनुराधाः क्रमशस्त्याज्याः शस्तास्तथेतर-
क्षाणि सन्ति मध्यमानि षष्ठीयुग् द्वादशीं तथा॥ ५२॥
रिक्तां पर्वाणि च सदा वर्जयेन्मीनकन्यके।
तुला मन्मथलग्नानि शुभानि गमने पुनः॥ ५३॥
दिग्द्वारलग्नं शुद्धश्चाष्टमद्वादशमुत्तमम्।
स्त्रीणां तु गमने राहोर्वामपृष्ठत्वमीहितम्॥ ५४॥
गमनागमनं नैव कार्यं स्त्रीणां विशेषतः।
पौषे भाद्रे तथा चैत्रे आपाते स्वैरमाचरेत्॥ ५५॥
जन्मताराऽष्टमस्थेन्दौ सङ्क्रान्तौ सूर्यगे विधौ।
भद्रागण्डान्तरिक्तासु षष्ठ्यां नैव व्रजेद् बुधः॥ ५६॥
ताराचन्द्रमसोः शुद्धाविन्दौ सम्मुखदक्षिणे।
सिद्धाऽमृताभिधे योगे गमनं निर्दिशेत् सदा॥ ५७॥
सर्वदिग्गमनार्हेषु भेषु वामोऽपि पृष्ठगः।
चन्द्रस्तु शुभदो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा॥ ५८॥
मासादावपि मासान्ते यात्रा नैव शुभप्रदा।
सम्मुखस्थः शशी सर्वान् दोषानपि विनाशयेत्॥ ५९॥

सुधा—अश्विनी, श्रवण, मृगशिरा तथा पुष्य—ये नक्षत्र सर्वदिग्गमनार्ह हैं।

आर्द्रा, आश्लेषा, उत्तरात्रय, विशाखा, मघा, भरणी तथा कृत्तिका—ये नक्षत्र यात्रा में त्याज्य हैं।

पुनर्वसु, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, अश्विनी, पुष्य तथा अनुराधा—ये नक्षत्र यात्रा में प्रशस्त हैं। शेष नक्षत्र मध्यम हैं।

षष्ठी, द्वादशी, रिक्ता (४।१४।७) तिथियाँ तथा पर्व यात्रा में वर्जित हैं। मीन, कन्या, तुला तथा मिथुन लग्न शुभप्रद हैं। दिग्द्वारलग्न तथा यात्राकालिक लग्न से अष्टम तथा द्वादश का विशुद्ध (ग्रहरहित) रहना उत्तम है।

स्त्रियों के गमनागमन में राहु का वाम या पृष्ठस्थ होना आवश्यक है। पौष भाद्र तथा चैत में अर्थात् धनु, मीन, सिंह के सूर्य में स्त्रियों का आना-जाना विशेषतः त्याज्य है। किन्तु आपात स्थिति में स्वेच्छानुसार यातायात किया जा सकता है।

जन्मतारा, अष्टम चन्द्रमा, संक्रान्ति, अमावास्या, भद्रा, गण्डान्त, रिक्ता (४।१४।९) तथा षष्ठी तिथियाँ यात्रा में त्याज्य हैं। तारा चन्द्रमा की शुद्धि, चन्द्रमा के दक्षिण या सम्मुखस्थ रहना सिद्धियोग या अमृतयोग यात्रा में प्रशस्त हैं।

सर्वदिग्गमनार्ह नक्षत्रों में वाम या पृष्ठस्थ भी चन्द्रमा शुभप्रद हैं। मासादि तथा मासान्त में यात्रा निषिद्ध है। सम्मुखस्थ चन्द्रमा रहने पर सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि किसी ने कहा है—

'हरति सकलदोषं चन्द्रमाः सम्मुखस्थः'।

विमर्श—सर्वदिग्गमनार्ह नक्षत्रों में रेवती का भी समावेश कहीं-कहीं दीखता है, किन्तु रेवती का पञ्चक (भदवा) में समाविष्ट होने के कारण दक्षिण दिशा की ओर जाना निषिद्ध है; फिर उसकी सर्वदिग्गमनार्हता कैसे सम्भव है?

राहोर्दिग्ज्ञानम्

वृश्चिकादि त्रयेऽर्केऽगोः पूर्वस्यां दिशि संस्थितिः।
कुम्भादित्रितयेऽर्के तु दक्षिणस्यां दिशि स्फुटा॥ ६०॥
वृषादित्रितयेऽर्के सा पश्चिमस्यां दिशि स्मृता।
सिंहादित्रितये शेषे राहोरुत्तरगा स्थितिः॥ ६१॥

सुधा—वृश्चिक-धनु-मकरस्थ सूर्य में राहु (काल) का पूर्व दिशा में, कुम्भ, मीन, मेषगत सूर्य में दक्षिण दिशा में, वृष-मिथुन-कर्कस्थ सूर्य में पश्चिम दिशा में, शेष सिंहादित्रितयस्थ सूर्य में उत्तर दिशा में राहु का निवास होता है।

विवाहमुहूर्त्तं विवक्षुस्तत्र मेलापकविचारः

जन्मनक्षत्रतः कन्यावरयोर्विमृशेद् गुणान्।
गुणाधिक्ये तयोः पारस्परिकं जीवनं सदा॥ ६२॥
स्नेहसौहार्दसम्पन्नमन्यथा कटुतामयम्।

सुधा—कन्या तथा वर के जन्मनक्षत्रों से गुणों का विचार किया जाता है। दोनों में गुणाधिक्य होने पर पारस्परिक जीवन सदैव स्नेह-सौहार्दपूर्ण रहता है। गुणाल्पता में जीवन कटुतापूर्ण होता है।

अष्टविधगुणाः

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ॥ ६३ ॥
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ।

सुधा—वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्र, गणमैत्र, भकूट तथा नाडी—इन आठों में क्रमशः एकाधिक गुण होते हैं। जैसे वर्ण का = १, वश्य का = २, तारा का = ३, योनि का = ४, ग्रहमैत्र का = ५, गणमैत्र का = ६, भकूट का = ७, नाड़ी का = ८। उपर्युक्त 'वर्णो वश्यं तथा तारा' आदि पद्य मुहूर्तचिन्तामणि का है।

तत्र वर्णास्तद्गुणाश्च

मीनवृश्चिकनक्राख्या विप्रा एभ्योऽग्रिमा नृपाः ॥ ६४ ॥
नृपाग्रे तु त्रयो वैश्यास्तदग्रे शूद्रराशयः ।
वरवर्णाद् वधूवर्णो विशिष्टो न प्रशस्यते ॥ ६५ ॥
समे हीने वधूवर्णे गुण एक उदीरितः ।
वरवर्णे वधूवर्णाद्धीने शून्यं गुणो भवेत् ॥ ६६ ॥

सुधा—मीन, वृश्चिक तथा कर्क राशियाँ ब्राह्मण वर्ण; इन तीनों की अग्रिमस्थ राशियाँ अर्थात् मेष, धनु, सिंह क्षत्रिय वर्ण; वृष, मकर, कन्या राशियाँ वैश्यवर्ण और मिथुन, कुम्भ, तुला राशियाँ शूद्रवर्ण हैं। वरवर्ण से कन्यावर्ण विशिष्ट हो तो शुभप्रद नहीं है। दोनों का वर्ण समान या वधूवर्ण वरवर्ण से हीन हो तो एक गुण, अन्यथा वधूवर्ण से वरवर्ण के हीन होने पर शून्य गुण होता है।

स्पष्टार्थ चक्र

वरस्य

	वर्ण	वि०	क्ष०	वै०	शु०
कन्यायाः	वि०	१	०	०	०
	क्ष०	१	१	०	०
	वै०	१	१	१	०
	शू०	१	१	१	१

वश्यगुणाः

हित्वा सिंहं नृराशीनां सर्वे वश्या भवन्ति हि ।
अलिं हित्वा सिंहवश्या नराश्चापि भवन्ति वै ॥ ६७ ॥

वश्यावश्यपरिज्ञानं ज्ञेयं तु व्यवहारतः ।
वनेचरा जलचरा द्विपदाश्च चतुष्पदाः ॥ ६८ ॥
कीटाश्च, राशयो ज्ञेया गुणांस्तद्वशतो वदेत् ।
सिंहो वनेचरः कीटो वृश्चिकोऽन्ये चतुष्पदाः ॥ ६९ ॥
द्विपदा वा जलचरा राशयः कीर्त्तिता बुधैः ।
स्ववर्गे द्वौ गुणा एक औदासीन्ये खमन्यदा ॥ ७० ॥
सिंहस्य द्विचतुष्पादैरलिना वा यथोच्यते ।
द्विचतुष्पदयोर्वारिचरैरर्धं गुणाः स्मृताः ॥ ७१ ॥

सुधा—सिंहातिरिक्त सभी जन्तु नरराशि के वश्य हैं । बिच्छू के अतिरिक्त सभी (मनुष्य भी) सिंह के वश्य हैं । वश्यावश्य का परिज्ञान व्यवहार से ही समझना चाहिए । सभी राशियाँ वनचर, जलचर, द्विपद, चतुष्पद तथा कीट —इन पाँच वर्गों में विभक्त हैं । जैसे सिंह = वनचर, वृश्चिक = कीट और अन्य राशियाँ द्विपद, चतुष्पद तथा जलचर कही गईं हैं ।

स्ववर्ग में दो गुण, औदासिन्य में एक गुण, अन्यथा (शात्रव) में शून्य गुण समझना चाहिए । जैसे सिंह राशि वाले का द्विपद, चतुष्पद या वृश्चिक राशियों के साथ शून्य गुण कहना चाहिए । द्विपद या चतुष्पदों के साथ जलचर राशियों का आधा गुण होता है ।

स्पष्टार्थ चक्र

वरस्य

कन्यायाः

वश्य	चतु०	मान०	जल०	वन०	कीट
चतु०	२	१	१	०	१
मान०	१	२	॥	०	१
जल०	१	॥	२	१	१
वन०	०	०	१	२	०
कीट०	१	१	१	०	२

तारागुणाः

कन्यर्क्षाद् वरभं यावत् कन्याभं वरभादपि ।
गणयेन्नवहृच्छेषे त्रिपञ्चनगसम्मिते ॥ ७२ ॥

एकतस्तत्र सार्धैकमिता उभयतः पुनः ।
शून्यं त्रयो गुणाः शेषे पूर्वोक्तेभ्यः परे स्मृताः ।। ७३ ।।

सुधा—कन्या-जन्मनक्षत्र से वर-जन्मनक्षत्र तक तथा वर-नक्षत्र से कन्या-नक्षत्र तक गिन कर नौ से भाग देने पर तीन, पाँच, सात शेष में डेढ़ गुण कहना चाहिए । शेष में वे ही उपर्युक्त तीन, पाँच, सात शेष हों तो शून्य गुण, अन्य शेष में तीन गुण होते हैं ।

स्पष्टार्थ चक्र

वरस्य

कन्यायाः

तारा०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
२	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
३	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
४	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
५	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
६	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
७	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
८	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
९	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३

नक्षत्राणां योनयो योनिगुणाश्च

अश्विन्यादिकभानां तु योनयोऽश्वादयो मताः ।
शतताराऽश्विनीयोनिरश्वोऽन्त्ययभयोर्गजः ।। ७४ ।।
कृत्तिकापुष्ययोर्मेषे रोहिणीमृगयोरहिः ।
आर्द्रामूलभयोः श्वा च मार्जारोऽदितिसार्पयोः ।। ७५ ।।
गौर्यर्म्णबुध्न्यभयोर्महिषोऽनिलहस्तयोः ।
सिंहोऽजपाद्वासवयोः वानरः श्रवणाम्बुनोः ।। ७६ ।।

नकुलो वैश्वाभिजितोर्मृगो ज्येष्ठाऽनुराधयोः ।
मूषकः पूर्वमघयोर्व्याघ्रश्चित्राविशाखयोः ॥ ७७ ॥
महावैरे गुणाः शून्यं वैरे त्वेकः समे द्वयम् ।
मैत्रे त्रयोऽतिमैत्रे तु चत्वारः समुदीरिताः ॥ ७८ ॥
वैरमैत्रसमत्वादि विज्ञेयं व्यवहारतः ।

सुधा—अश्विन्यादिक नक्षत्रों की योनि अश्व आदि कही गई है। अश्विनी तथा शतभिषा की योनि अश्व है । रेवती तथा भरणी की योनि हाथी, कृत्तिका तथा पुष्य की भेड़ा, रोहिणी तथा मृगशिरा की सर्प, आर्द्रा तथा मूल की कुत्ता, पुनर्वसु तथा आश्लेषा की मार्जार, उत्तराफल्गुनी तथा उत्तराभाद्रपदा की गाय, स्वाती तथा हस्त की महिष, पूर्वाभाद्रपदा तथा धनिष्ठा की सिंह, श्रवण तथा पूर्वाषाढ़ा की वानर, उत्तराषाढ़ा तथा अभिजित् की नकुल, ज्येष्ठा तथा अनुराधा की हरिण, मघा तथा पूर्वाफल्गुनी की मूषक और चित्रा तथा विशाखा की व्याघ्र योनि होती है ।

उपर्युक्त योनियों में महावैर रहने पर शून्य गुण, वैर रहने पर एक गुण, समस्थिति में दो गुण, मैत्र्य में तीन गुण तथा अतिमैत्र्य में चार गुण होते हैं ।

वैर, मित्रत्व, समत्व आदि व्यवहार से समझना चाहिए ।

स्पष्टार्थ चक्र

योनयः	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गाय	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	३	१	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	२	२	२	२	०
मेष	३	३	४	३	२	३	१	३	३	१	३	०	३	१
सर्प	२	२	३	४	२	२	१	१	२	२	२	२	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	१	२	२	१	०	२	२	१
मार्जार	२	२	३	२	१	४	०	२	२	१	२	२	२	२
मूषक	२	२	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गाय	३	२	३	२	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
महिष	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	२	१	२	२
मृग	३	२	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वानर	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
नकुल	२	२	३	०	२	२	२	३	२	२	२	४	४	२
सिंह	१	०	१	२	१	२	१	१	३	२	२	२	२	४

ग्रहमैत्र्यादि तद्गुणाश्च

रवेर्भौमेन्दुगुरवः सुहृदः शशिजः समः ।। ७९ ।।
शत्रू भृगुशनी ज्ञेयौ, शशी शत्रुविवर्जितः ।
सूर्येन्दुजौ हि तन्मित्रे सर्वेऽन्ये समतामिताः ।। ८० ।।
भौमस्यार्केन्दुगुरवः सुहृदोऽरिर्बुधः, समौ ।
सितार्की, ज्ञस्य सन्मित्रे सूर्यशुक्रौ, शशी त्वरिः ।। ८१ ।।
शेषाः समा हि विज्ञेया गुरोः शत्रू सितेन्दुजौ ।
समः शनिः शेषखेटाः सुहृदस्तस्य कीर्त्तिताः ।। ८२ ।।
भृगोः सौम्यार्कजौ मित्रे, समौ कुजगुरू त्वरी ।
शेषौ, शनेर्बुधसितौ मित्रे, मध्यो गुरुः परे ।। ८३ ।।
शत्रवो गदिताः खेटमित्रामित्रत्वमीरितम् ।

सुधा—सूर्य के मंगल, चन्द्रमा तथा गुरु मित्र, बुध सम और शुक्र-शनि शत्रु होते हैं। चन्द्रमा के शत्रु कोई नहीं हैं। सूर्य-बुध मित्र हैं, शेष ग्रह सम हैं। मंगल के सूर्य, चन्द्र तथा गुरु मित्र, बुध शत्रु और शुक्र-शनि सम हैं। बुध के सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु तथा शेष ग्रह सम हैं। गुरु के बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम तथा शेष ग्रह मित्र हैं। शुक्र के बुध तथा शनि मित्र, मंगल तथा गुरु सम और शेष सूर्य-चन्द्र शत्रु होते हैं।

शनि के बुध, शुक्र मित्र, गुरु सम और शेष ग्रह शत्रु हैं।

ऐक्ये मैत्र्ये च विज्ञेया जन्मर्क्षस्वामिनोर्द्वयोः ।। ८४ ।।
गुणाः पञ्च च चत्वारः सममैत्र्यपरिस्थितौ ।
त्रयो गुणाः द्वयोः साम्ये, गुणैको मैत्र्यशात्रवे ।। ८५ ।।
समवैरे त्वर्धमात्रमन्योन्यं शात्रवे तु खम् ।

सुधा—कन्या-वर के जन्मनक्षत्रस्वामी यदि एक हो या दोनों में मित्रता हो तो पाँच गुण, एक का दूसरे से समत्व और दूसरे का प्रथम से मैत्र्य हो या दूसरे से प्रथम का समत्व और प्रथम से दूसरे का मैत्र्य हो; दोनों स्थिति में चार गुण, दोनों में समत्व हो तो तीन गुण, दोनों में मित्रत्व तथा शत्रुत्व रहने पर एक गुण, दोनों में समत्व तथा शत्रुत्व होने पर आधा गुण तथा दोनों में परस्पर शत्रुता रहने पर शून्य गुण होता है।

रक्षोऽमरनरगणा गणगुणाश्च

मघाऽऽश्लेषा धनिष्ठापि ज्येष्ठा मूलं च वारुणः ।। ८६ ।।
चित्रावह्निविशाखाश्च रक्षोगणगताः स्मृताः ।
पूर्वोत्तरात्रयब्राह्मभरणीशा नृगामिनः ।। ८७ ।।
मैत्रादितिमृगस्वातीहस्तपुष्याश्विनोऽभिजित् ।
रेवतीश्रवणाश्चापि देवतागणगा मताः ।। ८८ ।।

स्पष्टार्थ चक्र

वरस्य

कन्यायाः

महा०	सू०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
सू०	५	५	५	४	५	०	०
चं०	५	५	४	१	४	॥	॥
मं०	५	४	५	॥	५	३	॥
बु०	४	१	॥	५	॥	५	४
गु०	५	४	५	॥	५	॥	३
शु०	०	॥	३	५	॥	५	५
श०	०	॥	॥	४	३	५	५

स्वगणे षड्गुणाः पञ्च देवमानवयोरपि।
देवराक्षसयोरेको रक्षोमनुजयोस्तु खम् ॥ ८९ ॥

सुधा—मघा, आश्लेषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, चित्रा, कृत्तिका और विशाखा—ये नक्षत्र राक्षसगण हैं। तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी तथा आर्द्रा मनुष्यगण हैं। अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, स्वाती, हस्त, पुष्य, अश्विनी, अभिजित्, रेवती तथा श्रवण—ये नक्षत्र देवगण हैं।

स्वगण में छः गुण, देवता तथा मनुष्य में पाँच, देवता एवं राक्षस में एक गुण, राक्षस और मनुष्य में शून्य गुण होते हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

वरस्य

कन्यायाः

गण	दे०	म०	रा०
दे०	६	५	१
म०	५	६	०
रा०	१	०	६

भकूटं तद्गुणाश्च

षडष्टके मृतिर्ज्ञेयाऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।
द्विद्वादशे तु दारिद्र्यमन्यत्तु शुभकृत्तयोः ॥ ९० ॥
शुभे भकूटे स्युः सप्त गुणा असति खं स्मृतम् ।

सुधा—वर की जन्मराशि से कन्या की जन्मराशि तक और कन्या की जन्मराशि से वर की जन्मराशि तक गिनने पर छः, आठ की स्थिति में मृत्यु, नौ, पाँच की स्थिति में सन्तानक्षय और दो तथा बारह की स्थिति में दरिद्रता होती है। अन्यथा अर्थात् एक की जन्मराशि दूसरे की जन्मराशि से तीन और दूसरे की जन्मराशि पहले की जन्मराशि से ग्यारह रहे या दोनों में चार, दश की स्थिति में और सात-सात की स्थिति में सौख्य समझना चाहिए। जैसे मेष-कन्या में या मेष, वृश्चिक में षडष्टक, सिंह-धनु में नवात्मज और मेष-वृष में द्वि-द्वादश स्थिति होगी। शुभ भकूट में सात गुण, अन्यथा शून्य गुण होते हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

वरस्य

राशि	मे०	वृ०	मि.	क०	सिं.	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी.
मेष	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृष	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मिथुन	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
कर्क	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिंह	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
कन्या	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तुला	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृश्चिक	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
धनु	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
मकर	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुम्भ	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मीन	०	०	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

कन्यायाः

नाड्यस्तद्गुणाश्च

नाड्यस्तिस्रस्तु विज्ञेया आदिमध्यान्त्यसंज्ञिकाः ॥ ९१ ॥
नाड्यैक्ये खं गुणा, भिन्ननाड्यामष्टौ सुनिश्चिताः ।
ज्येष्ठार्द्रामूलहस्ताश्विशततारापुनर्वसु ॥ ९२ ॥

उत्तराफल्गुनिकाः पूर्वभाद्रयुक्तास्तु चादिमा ।
मध्या पुष्यमृगत्वाष्ट्रवसुमैत्रभगान्त्यकाः ॥ ९३ ॥
पूर्वाषाढोत्तराभाद्रपदा, अन्त्याऽवशिष्टकैः ।
एवमष्टविधानां तु गुणानां योगमानयेत् ॥ ९४ ॥
गुणा अष्टादशभ्योऽल्पा निन्द्या मध्या तु विंशतिः ।
उत्तरोत्तरतो ज्ञेयाः शस्ता विंशतितोऽधिकाः ॥ ९५ ॥
उत्तमोत्तमकोटिस्था सप्तविंशतितोऽधिकाः ।

सुधा—आदि, मध्य तथा अन्त्य संज्ञक तीन नाड़ियाँ होती हैं। कन्या एवं वर दोनों का जन्मनक्षत्र यदि एक ही नाड़ीगत हों तो शून्य गुण और दोनों के नक्षत्र भिन्न-भिन्न नाडीस्थ हों तो आठ गुण होते हैं।

ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल, हस्त, अश्विनी, शतभिषा, पुनर्वसु, उत्तराफल्गुनी तथा पूर्वभाद्र—ये नक्षत्र आदिनाडी हैं।

पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा, अनुराधा, पूर्वफल्गुनी, भरणी, पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराभाद्रपदा—ये नक्षत्र मध्यनाडी हैं। अवशिष्ट नक्षत्र अन्त्यनाडी हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

ना०	आ०	म०	अन्त्य
आ०	०	८	८
म०	८	०	८
अन्त्य	८	८	०

इस प्रकार उपर्युक्त वर्ण, वश्य आदि अष्टविधों का योग करें। योग यदि अठारह से कम हो तो निन्द्य गुण समझें। बीस गुण मध्यम और बीस से अधिक गुण प्रशस्त माना गया है। उत्तमोत्तम कोटि का गुण सत्ताईस से अधिक समझा जाता है।

विमर्श—वर-वधू के परिणय में मुख्यतः दो बातों पर विशेष विचार किया जाता है। पहली बात यह कि दोनों का परिणय सौहार्दपूर्ण तथा सुखमय होगा कि नहीं? इसीलिए अष्टविध गुणों का आनयन कर अठारह से अल्प में अनभिवाञ्छित, बीस तक में मध्यम और बीस से अधिक में पूर्ण सौहार्दपूर्ण एवं सौख्यकर कहा गया है। अल्पगुण में पारस्परिक सौहार्द की कमी और अधिक गुण में दोनों का जीवन सुखमय, उसमें भी सत्ताईस से अधिक गुण में दोनों में पूर्ण सौहार्द तथा सौख्य समझना चाहिए। अतः गुण-विचार से वर-वधू का पारस्परिक स्नेह-सौहार्द का बोध किया जाता है।

दूसरा तथा आवश्यक विचारणीय विषय है—दोनों की जन्मकुण्डलीस्थ ग्रहों से

यह जानने का प्रयास कि वर-वधूस्थ ग्रह एक-दूसरे के घातक तो नहीं हैं ? वस्तुतः यही विचार विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए जन्मकुण्डली के कुछ स्थानों में पापग्रहों का रहना, विशेषतः शनि-मंगल का होना अधिक अनिष्टकर होता है। मंगल के रहने से मंगला वर और कन्या की कुण्डली में तत्तत्स्थानों में मंगल के रहने से मंगली कन्या कही जाती है। इसका विवेचन पूर्णरूप से आगे किया जायेगा।

अन्य विचारणीय विषय सन्तान, भाग्य तथा आयु भी होते हैं। साधारणतः विवाह के समय दोनों की कुण्डली के अनुसार सन्तानादि का भी विचार कर लिया जाता है।

वर्णपरत्वेन दोषविशेषास्तत्परिहारश्च

नाडीदोषो ब्राह्मणानां वर्णदोषो हि भूभुजाम् ॥ ९६ ॥
विशां तु गणदोषः स्याद्योनिदोषोऽङ्घ्रिजन्मनाम् ।
विशेषान्ननु विज्ञेयाः परिहारांश्च चिन्तयेत् ॥ ९७ ॥
नक्षत्रैक्ये राशियुग्मे राश्यैक्ये भिन्नभेऽथवा ।
नाडीदोषो गणानां च दोषो नैव प्रजायते ॥ ९८ ॥
नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं सर्वमुदीरितम् ।

सुधा—ब्राह्मणों के लिए नाडीदोष, क्षत्रियों के लिए वर्णदोष, वैश्यों के लिए गुणदोष और शूद्रों के लिए योनिदोष विशेषरूप से होते हैं। इन दोषों का परिहार निम्न स्थिति में हो जाता है।

दोनों (कन्या-वर) का नक्षत्र एक हो और राशियाँ भिन्न-भिन्न हों या दोनों की राशि एक किन्तु नक्षत्र भिन्न-भिन्न हों तो नाडीदोष या गणदोष नहीं होते हैं। नक्षत्रों की एकता किन्तु चरणों की भिन्नता में सब कुछ शुभप्रद माना गया है।

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार ने भी 'नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं स्यात्' कहकर उपर्युक्त बात की पुष्टि की है।

विवाहे द्वयोर्जन्माङ्गचक्रे ग्रहस्थित्या शुभाऽशुभविचारः

अथ जन्माङ्गचक्रस्थग्रहैश्चिन्त्या विशेषतः ॥ ९९ ॥
मारकाः साधका योगाश्चिरायुष्यसुतप्रदाः ।
द्वयोरेवं विचिन्त्यैव विवाहमनुमोदयेत् ॥ १०० ॥

सुधा—दोनों (कन्या-वर) के जन्माङ्गचक्रस्थ ग्रहों के द्वारा मारक, साधक, चिरायुष्यकारक तथा पुत्रकारक ग्रहों को देखकर ही दोनों के परिणय का अनुमोदन करना चाहिए।

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजः ।
कन्याजन्माङ्गचक्रस्थो भर्त्तारं नाशयेत्तथा ॥ १०१ ॥

भर्त्तृजन्माङ्गचक्रस्थः स हि कन्याविनाशकः।
उभयोर्जन्मकुण्डल्यामुक्तेषु भवनेषु चेत् ॥ १०२ ॥
कुजोऽथवा शनिस्तर्हि भौमदोषो न जायते।
उभयोरेककुण्डल्यामुक्तेषु भवनेषु वै ॥ १०३ ॥
कश्चित् पापो भवेत्सोऽपि जायते परदोषहृत्।

सुधा—लग्न द्वादश, चतुर्थ, सप्तम तथा अष्टम भवन में स्थित मंगल एक-दूसरे का घातक होता है अर्थात् कन्या की कुण्डली में उपर्युक्त स्थानस्थ मंगल पति के लिए घातक और वर की कुण्डली में उपर्युक्त स्थानस्थ मंगल कन्या के लिए घातक होता है। ऐसा वर मंगला और कन्या मंगली कहे जाते हैं।

दोनों की कुण्डली के उपर्युक्त स्थानों में शनि या मंगल रहे अर्थात् वर की कुण्डली के उपर्युक्त स्थानों में मंगल या शनि में से कोई भी रहे, तो कन्या-कुण्डलीगत ग्रहजन्य दोष वर को नहीं होता। इसी तरह कन्या की कुण्डली के उपर्युक्त स्थानों में मंगल या शनि रहे तो वर-कुण्डलीस्थ ग्रहप्रयुक्त दोष कन्या को नहीं होता है। शनि-मंगल ही नहीं प्रत्युत अन्य पापग्रह भी उपर्युक्त स्थानस्थ हों तो वह दोष नहीं होता, किन्तु शनि-मंगल के रहने पर अधिक श्रेयस्कर है।

चन्द्रादपि चिन्तनीयं द्वयोर्जन्माङ्गचक्रगात् ॥ १०४ ॥
लग्नेन्दुभ्यां समान् पापग्रहानुक्तगृहस्थितान्।
बलाबलयुतांश्चापि ज्ञात्वा तान् गणयेत् सुधीः ॥ १०५ ॥
खलान्तरगतः शुक्रः सखलो वा सितादपि।
पापा व्ययास्तमृतिगा रमणीहारकाः स्मृताः ॥ १०६ ॥
अतो वरस्य कुण्डल्यां लग्नाच्चन्द्राद् भृगोरपि।
कन्याया लग्नतश्चन्द्रादपि पापग्रहान् समान् ॥ १०७ ॥
प्रागुक्तस्थानगान् ज्ञात्वा विवाहमनुमोदयेत्।
तत्र कन्याकुण्डलीस्थपापेभ्यो बलिनोऽधिकाः ॥ १०८ ॥
पापा वरस्थकुण्डल्यां सदैवाभिमताः स्मृताः।
कन्यायाः पापखेटेभ्यश्चेदल्पा अपि दुर्बलाः ॥ १०९ ॥
वरस्य तद्गताः पापा विवाहं नानुमोदयेत्।
भामिनीजन्मनक्षत्रात् द्वितीयं पतिभं न सत् ॥ ११० ॥

सुधा—कन्या तथा वर दोनों की कुण्डलीस्थ चन्द्रमा पर से भी ऐसा ही विचार करना चाहिए। लग्न तथा चन्द्रमा दोनों से उपर्युक्त स्थानों (१।१२।४।७।८) में स्थित सभी बलाबलयुक्त पापग्रहों को जानकर उनकी गणना करें।

पापद्वयान्तर्वर्ती या सपाप शुक्र तथा शुक्र से १२।७।८ में स्थित पापग्रह भी कन्या-विघातक होते हैं। अतः वर की कुण्डली में लग्न, चन्द्रमा तथा शुक्र से विचार

करें। कन्या की कुण्डली में लग्न तथा चन्द्रमा पर से विचार करें। दोनों की कुण्डली के उपर्युक्त स्थानस्थ पापग्रहों को जानकर ही दोनों का परिणय शुभद या अनिष्टकर बतलावें।

कन्या-कुण्डलीस्थ उक्त स्थानस्थ पापग्रहों की अपेक्षा वर-कुण्डलीस्थ उक्त स्थानस्थ पापग्रह प्रबल एवं संख्यया अधिक हो तभी विवाह उपयुक्त समझना चाहिए, अन्यथा अर्थात् कन्या-कुण्डलीस्थ उक्त स्थानस्थ पापग्रहों की अपेक्षया वर-कुण्डलीस्थ उक्त स्थानस्थ पापग्रह दुर्बल तथा संख्यया अल्प हों तो विवाह का अनुमोदन न करे। कन्या के जन्मनक्षत्र से वर का जन्मनक्षत्र शुभप्रद नहीं है।

लग्नाच्चन्द्राद् वापि जन्मकाले द्यूनस्थितः शुभः।
सप्तमेशोऽथवा हन्ति दोषं वैधव्यजं सदा ॥ १११ ॥
केन्द्रे कोणे शुभाः सर्वे त्रिषडायेऽप्यसद्ग्रहाः।
मदने सप्तमेशश्च भौमदोषविनाशकाः ॥ ११२ ॥

सुधा—जन्म के समय लग्न या चन्द्रमा से सप्तम में शुभग्रह या सप्तमेश हों तो वैधव्य दोष नष्ट हो जाते हैं।

केन्द्र या त्रिकोण में सभी शुभग्रह और त्रिषडायस्थ पापग्रह हों या सप्तम में सप्तमेश हों तो भी भौमदोष नष्ट होते हैं।

विवाहोपयुक्तसमयः

गुरुशुद्ध्या कन्यकानां वराणां रविशुद्धितः।
उभयोः शशिनः शुद्ध्या विवाहः शस्यते बुधैः ॥ ११३ ॥

सुधा—कन्या के विवाहोपयुक्त समय गुरुशुद्धि से, वरों का रविशुद्धि से और दोनों की चन्द्रशुद्धि से प्रशस्त माना गया है। अर्थात् विवाह के समय कन्या की गुरुशुद्धि, वर की रविशुद्धि तथा दोनों की चन्द्रशुद्धि आवश्यक होती है। इन तीनों की शुद्धि रहने पर विवाह प्रशस्त होता है।

रामाचार्य ने भी अपने ग्रन्थ मुहूर्त्तचिन्तामणि में 'गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडष्टकोपरिष्टात्। रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धिता विवाहः' ॥ कहा है।

गुरुशुद्धिविचारः

कन्याया वा वरस्यापि जन्मभात् संस्थितो गुरुः।
तृतीयाद्यखषड्भेषु पूज्यो निन्द्यस्त्रिकस्थितः ॥ ११४ ॥
त्रिकोणायद्विसप्तस्थः श्रेष्ठः प्रोक्तो बुधैः सदा।
स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ॥ ११५ ॥
निन्द्योऽपि शुभदो ज्ञेयो नीचारिस्थो वरोऽप्यसत्।

सुधा—कन्या या वर की जन्मराशि से तीसरे, पहले, दशमे या छठे स्थानस्थ

तात्कालिक गुरु पूज्य, त्रिकस्थ (६।८।१२) गुरु सर्वथा निन्द्य, शेष (९।५।११।२।७) स्थानस्थ गुरु श्रेष्ठ कहे गये हैं।

अपने उच्च (कर्क), स्वभवन (धनु-मीन), अपने मित्रक्षेत्र, स्वनवांश या अपने वर्गोत्तमस्थ गुरु यदि निन्द्य भी हो तो भी वे शुभप्रद हैं और अपने नीच (मकर) शत्रुक्षेत्र (शुक्र, बुध के क्षेत्र में) स्थित श्रेष्ठ भी गुरु अशुभकारक होते हैं।

रामाचार्य ने भी कहा है—

'वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः॥
स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः।
रिष्फाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन्'॥

रविचन्द्रशुद्धिविचारः

जन्मभादायषष्ठत्रिदशमेषु वरो रविः॥ ११६॥
पूज्यो द्विपञ्चनवमप्रथमस्थोऽपि सप्तमः।
तुर्याष्टमद्वादशेषु विवाहे प्राणनाशकः॥ ११७॥
चन्द्रस्त्रिषष्ठदशमाद्यसप्तमत्रिकोणगः।
द्वितीयैकादशस्थोऽपि शुभदः, शेषगेहगः॥ ११८॥
अनिष्टः कार्यजातेषु शान्त्या सर्वः शुभप्रदः।

सुधा—जन्मराशि से ११।६।३।१० स्थानस्थ वर्तमान सूर्य श्रेष्ठ, २।५।९।१।७ स्थानस्थ वे पूज्य तथा ४।८।१२ स्थानस्थ सूर्य प्राणघातक होते हैं।

राजमार्त्तण्डकार ने यही बात इस प्रकार कही है—

'तृतीयः षष्ठगश्चैव दशमैकादशस्थितः।
रविः शुद्धो निगदितो वरस्यैव करग्रहे॥
जन्मस्थेऽपि द्वितीयस्थे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
नवमे भास्करे पूजां कुर्यात् पाणिग्रहोत्सवे॥
चतुर्थे वाष्टमे वापि द्वादशे भास्करे स्थिते।
वरः पञ्चत्वमाप्नोति कृते पाणिग्रहोत्सवे'॥

जन्मराशि से १।२।३।५।६।७।९।१०।११ स्थानस्थ चन्द्रमा शुभप्रद, शेष ४।८।१२ स्थानस्थ चन्द्रमा प्रायः सभी कार्यों में अशुभप्रद होते हैं। शान्ति से सर्वत्र उन्हें शुभद समझना चाहिए।

विवाहमुहूर्त्तः

रेवत्युत्तररोहिण्यो मघामूलकरेन्दवः॥ ११९॥
स्वाती मैत्रं च सद्भानि रिक्ताभा वर्जिता तिथिः।
शोभनो दिवसो मासा माघफाल्गुनमाधवाः॥ १२०॥

ज्येष्ठाषाढौ च मार्गोऽपि, लग्नानि प्रमदा तुला ।
मिथुनं चेति सर्वत्रातिप्रशस्ताः करग्रहे ।। १२१ ।।
क्वचित् पारस्करोक्तानि धनिष्ठा श्रवणाश्विनी ।
चित्रेति भानि लग्नेषु पूर्वार्धं धनुषो वृषः ।। १२२ ।।
अशोभनं दिनं चापि पूर्वोक्तेभ्योऽतिशेरते ।
वाराणस्यञ्चले रेखाधिक्यं पञ्चेष्टलग्नकम् ।। १२३ ।।
अशोभनोऽपि दिवसः सद्भं केवलमीहितम् ।

सुधा—विवाह में रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मघा, मूल, हस्त, मृगशिरा, स्वाती तथा अनुराधा नक्षत्र; रिक्ता (४।१४।९) तथा अमावास्यातिरिक्त तिथियाँ; शुभ दिन; अग्रहण, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ मास; कन्या, तुला तथा मिथुन लग्न सर्वत्र प्रशस्त हैं ।

कहीं-कहीं पारस्करोक्त—धनिष्ठा, श्रवण, अश्विनी तथा चित्रा नक्षत्र (जैसे मिथिलाञ्चल में) लग्नों में धनु का पूर्वार्ध तथा वृष, अशुभ ग्रह का दिन (शनि-मंगल) भी जैसे (वाराणस्यञ्चल में) प्रशस्त माना गया है । वाराणसी अंचल में शनि-मंगल में विवाह धड़ल्ले से होते हैं । वहाँ रेखाधिक्य तथा पञ्चेष्ट लग्न एवं सन्नक्षत्र मात्र आवश्यक होता है ।

विमर्श—मिथिलाञ्चल तथा अन्यत्र भी विवाहोक्त नक्षत्र एक ही हैं । किन्तु मिथिलाञ्चल में पारस्करोक्त धनिष्ठा, श्रवण, अश्विनी एवं चित्रा नक्षत्र भी विवाह में ग्राह्य माना गया है । सर्वत्र मान्य वैवाहिक नक्षत्र उपर्युक्त रेवत्यादि ही हैं, न कि पारस्करोक्त । पारस्करोक्त नक्षत्र एकदेशिक प्रतीत होते हैं ।

वैवाहिक नक्षत्र सर्वत्र निर्वेध रहना चाहिए । निर्वेध नक्षत्र ही विवाह में प्रशस्त हैं । मुहूर्त्तचिन्तामणिकार ने भी—

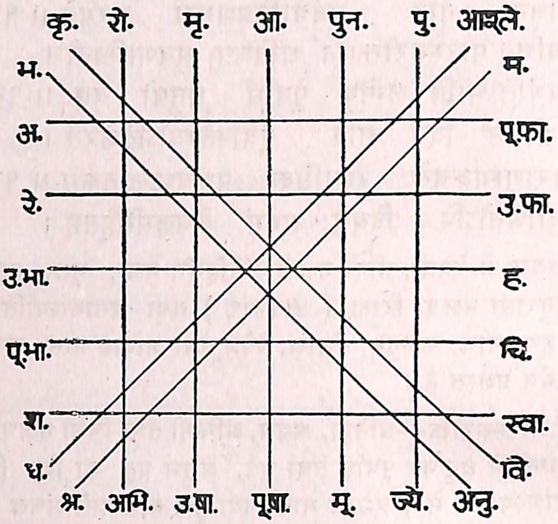
'निर्वेधैः शशिकरमूलमैत्रपित्र्य-
ब्रह्मान्त्योत्तरपवनैः शुभो विवाहः' ।

कहकर निर्वेधता के साथ-साथ पूर्वोक्त नक्षत्र को ही वैवाहिक नक्षत्र माना है, न कि पारस्करोक्त नक्षत्रों को स्वीकारा है । किन्तु मिथिलाञ्चल में प्रचलित पारस्करोक्त नक्षत्र भी अप्रामाणिक नहीं है ।

वेध का विचार पञ्चशलाका चक्र के द्वारा किया जाता है । पञ्चशलाका चक्र बनाकर रोहिण्यादि नक्षत्रों को अग्रलिखित रूप में स्थापित करें ।

पूरे चक्र में देखें कि विवाहोक्त नक्षत्र किसी ग्रह से विद्ध तो नहीं है ? जैसे रेवती नक्षत्र निर्वेध तभी होगा, जब कि उत्तराफल्गुनी में कोई ग्रह न हो । शुभग्रह एवं उपग्रह (राहु-केतु) से विद्ध नक्षत्र विवाह के लिए मध्यम तथा पापग्रह से विद्ध नक्षत्र सर्वथा अधम समझा जाता है ।

पञ्चशलाका चक्र



वधूप्रवेशमुहूर्त्तः

विवाहात्समपञ्चाद्रिनवप्रमितवासरे ॥ १२४ ॥
वधूप्रवेशः शस्तः स्यादष्टिवारान्तरालके ।
पुरस्ताद् विषमेऽब्देऽह्नि मासि पञ्चाब्ददः परम् ॥ १२५ ॥
यथेष्टदिवसे कार्यो हित्वा रिक्तार्कभूमिजान् ।
ध्रुवाक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघाऽनिले ॥ १२६ ॥
वधूप्रवेशः शस्तः सन्नेष्टो रिक्तार्कभूमिजे ।
बहुभिर्बुधवारोऽपि वधूवेशे न गृह्यते ॥ १२७ ॥

सुधा—विवाह-दिन से सोलह दिनों के भीतर सम दिन, विषम दिनों में पञ्चम, सप्तम, नवम दिनों में वधू-प्रवेश प्रशस्त है। इसके बाद विषम वर्ष, विषम मास तथा विषम (१७, १९ आदि) दिनों में, पाँच वर्षों के बाद यथेष्ट दिनों में रिक्ता (४।१४।९) तिथि तथा रवि एवं मंगल वार को छोड़कर ध्रुवसंज्ञक (रोहिणी, उत्तरात्रय), क्षिप्रसंज्ञक (अश्विनी, पुष्य, अभिजित् तथा हस्त), मृदुसंज्ञक (चित्रा, अनुराधा, रेवती तथा मृगशिरा) तथा श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, स्वाती इन नक्षत्रों में वधू-प्रवेश प्रशस्त है। रवि, मंगल तथा रिक्ता के अतिरिक्त बहुतों ने बुध को भी वधू-प्रवेश में अग्राह्य माना है।

रामाचार्य ने भी कहा है—

'समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद् वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले ।
शुभः परस्ताद् विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात् परतो यथेष्टम्' ॥

द्विरागमनमुहूर्त्तः

पूषापुष्योत्तरामैत्रहस्तत्रयपुनर्वसु- ।
ब्राह्मश्रुतिमूलचान्द्रधनिष्ठाशततारके ॥ १२८ ॥
कुम्भमेषालिगेऽर्के तु विषमाब्दे शुभे दिने ।
यात्रोदिततिथौ लग्ने प्रमदामीनमन्मथे ॥ १२९ ॥
तुलामकरयोश्चापि प्रशस्तः स्याद्द्विरागमः ।

सुधा—रेवती, पुष्य, उत्तरात्रय, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, रोहिणी, श्रवण, मूल, मृगशिरा, धनिष्ठा एवं शतभिषा—इन नक्षत्रों में कुम्भ, मेष, वृश्चिक के सूर्य में अर्थात् सौरमास क्रम से फाल्गुन, वैशाख तथा अग्रहण महीनों में, विषम वर्षों में, शुभ दिनों में (शनि-भौमातिरिक्त दिनों में) यात्रोक्त तिथि तथा कन्या, मीन, मिथुन, तुला और मकर लग्नों में द्विरागमन प्रशस्त माना गया है ।

विमर्श—रामाचार्य ने लग्नों में वृष को भी सम्मिलित किया है । उन्होंने 'शुभ-ग्रहस्य वासरे' कहकर शनि एवं मंगल के अतिरिक्त रविवार को भी द्विरागमन में त्याज्य माना है । इनके अनुसार भी शतभिषा नक्षत्र ग्राह्य है ।

शीघ्रबोधकार ने लग्नों में तुला, कन्या, मिथुन, मीन एवं मकर के अतिरिक्त धनु को भी सम्मिलित किया है । उपर्युक्त नक्षत्रादि के अतिरिक्त तृतीयादि विषम वर्षों में शुक्र तथा गुरु का उदित रहना आवश्यक माना गया है । शुक्र के दक्षिण या सम्मुखस्थ रहने पर द्विरागमन निषिद्ध कहा गया है । यथा—

'अस्तङ्गते भृगोः पुत्रे तथा सम्मुखदक्षिणे ।
नष्टे जीवे निरंशे वा नैव सञ्चालयेद् वधूम्' ॥

× ×

'दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्
गच्छेयुर्नहि शिशुर्गभिणीनवोढाः ।
बालश्चेद् व्रजति विपद्यते नवोढा
चेद् वन्ध्या भवति च गर्भिणी त्वगर्भा' ॥

अतः शुक्र के सम्मुख दक्षिणस्थ रहने पर द्विरागमन उपयुक्त नहीं है । ऐसी स्थिति में शुक्रान्ध में (रेवती से मृगशिरा पर्यन्त) द्विरागमन शुभप्रद है; यथा—'रेवत्यादि मृगान्तं च यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः । तावच्छुक्रो भवत्यन्धः' । यह प्रशस्त प्राचीन वचन है ।

एक वर्ष के भीतर शुक्रास्तादि दोष नहीं होता है । जैसा कि निम्न प्राचीन वचन में कहा गया है—

'अस्तं प्राप्ते किल सुरगुरौ भार्गवे चेत् कृशे वा
मासे चैत्रे च पौषे तदनु भृगुसुते सम्मुखे दक्षिणे वा ।
सिंहस्थे वा सुरपतिगुरौ निद्रया युक्तविष्णौ
गच्छेत् कन्या स्वपतिसहिता वर्षमेकं हि यावत्' ॥

अर्थात् एक वर्ष के भीतर गुरु-शुक्र के अस्तंगत या क्षीण रहने, शुक्र के सम्मुख या दक्षिणस्थ होने या हरिशयनावस्था में भी अपने पति के साथ कन्या पतिगृह जाय। अर्थात् एक वर्ष के भीतर शुक्रास्तारि विचार नहीं होता है। वर्ष के भीतर द्विरागमन में काल (राहु) का नहीं होता है। किसी ने कहा है—

'ग्रस्तेऽथवा शिशुत्वे वा बालत्वे गुरुशुक्रयोः।
शुभो द्विरागमो यावत् वर्षमेकं विवाहतः'॥

आजकल व्यवहार में द्विरागमन में मात्र शुक्रशुद्धि देखी जाती है।

पुंसवनसीमन्तोन्नयनमुहूर्तः

पुमान् प्रसूयते येन तत्पुंसवनमुच्यते॥ १३०॥
कचार्धोन्नयनं यत्र सीमन्तोन्नयनं हि तत्।
मूलादित्रितये हस्ते श्रुतिभाद्रद्वये, त्रये॥ १३१॥
आर्द्रातो, रेवतीचन्द्रभयोश्चापि गुरौ रवौ।
भौमेऽपि दिवसे तद्वत् रिक्तारहितसत्तिथौ॥ १३२॥
द्वितीयेऽथ तृतीये वा मासि सुस्थिरलग्नके।
शुभं पुंसवनं ज्ञेयं कचोन्नयनमष्टमे॥ १३३॥

सुधा—मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, हस्त, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्र, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, मृगशिरा—इन नक्षत्रों में गुरु, रवि तथा मंगल दिनों में; रिक्तारिक्त शुभद तिथियों में; गर्भाधान से दूसरे या तीसरे महीने में; स्थिर लग्नों में; पुंसवन कर्म तथा उपर्युक्त तिथि, नक्षत्र, वार एवं अष्टम महीने में सीमन्तोन्नयन कर्म प्रशस्त है।

मुहूर्त्तदीपककार ने पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया है—

'पुमान् प्रसूयते येन तद् वै पुंसवनं स्मृतम्।
कचार्धोन्नयनं यस्मिन् सीमन्तोन्नयनं हि तत्'॥

अर्थात् जिस संस्कार-विशेष द्वारा बालक का जन्म हो उसे पुंसवन और जिसमें बालों के अर्धभाग का उन्नयन किया जाय उसे सीमन्तोन्नयन कहते हैं। इन्होंने भी 'द्वितीये वा तृतीये तु मासे पुंसवनं स्मृतम्' कहा है। शीघ्रबोधकार ने 'आद्ये द्वये त्रये मासे' कहकर गर्भाधान से प्रथम मास को भी पुंसवनोपयुक्त माना है।

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार रामाचार्य ने तीसरे मास में पुंसवन और अष्टम मास में सीमन्तोन्नयन कर्म में शुभ लग्न तथा अष्टम शुद्धि को आवश्यक माना है।

आजकल ये संस्कार प्रायः लुप्तप्राय हैं। पुरानी संस्कृति के परमपोषक के यहाँ ही ये दोनों संस्कार सम्भव हैं।

नामकरणमुहूर्त्तः

पूष्यार्कत्रितये मूलमैत्रज्येष्ठोत्तरात्रये।
वसौ पुनर्वसौ वापि मृगे सत्तिथियोगयोः॥ १३४॥

एकादशे द्वादशे वाऽन्यस्मिन् शुभदिने रवौ।
बुधे जीवे शशाङ्के वा गोसिंहालिघटे तनौ ।। १३५ ।।
नामकर्म शुभं प्रोक्तं नारदेन कुलोचितम्।

सुधा—पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तरात्रय, धनिष्ठा, पुनर्वसु या मृगशिरा नक्षत्रों में; प्रशस्त तिथि तथा शुभद योग में; जन्म से ग्यारह या बारह या अन्य प्रशस्त दिनों में; वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ (स्थिर) लग्नों में; सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु वारों में नामकरण शुभप्रद कहा गया है। महर्षि नारद ने कुलोचित (परम्परागत) विधि से नामकरण करने का निर्देश किया है।

विमर्श—मनु ने नामकरण के सम्बन्ध में कहा है—

'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽथ कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते' ।।

सारसंग्रहकार ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों का नामकरण क्रमशः जन्म से ११।१३।१६ और ३०वें दिन में करने का निर्देश किया है; यथा—

'एकादशेऽह्नि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे।
वैश्यानां षोडशे नाम मासान्ते शूद्रजन्मनाम्' ।।

नारद ने 'सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्' कहकर सूतकान्त में अपने वंशपरम्परानुसार नामकरण करने का निर्देश किया है।

निष्क्रमणमुहूर्त्तः

हस्तो हरियुगं मैत्रत्रयं पुष्यपुनर्वसू ।। १३६ ।।
उत्तराषाढफल्गुन्यौ स्वातीब्राह्माश्विनीमृगाः।
भानि, शोभनलग्नानि सिंहादित्रितयं घटः ।। १३७ ।।
मासौ तृतीयतुर्यौ च तिथिर्यात्रोदिता शिशोः।
निष्कासने प्रशस्ताः स्युर्भौमार्कीतरवासराः ।। १३८ ।।

सुधा—हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तराषाढ, उत्तराफलगुनी, स्वाती, रोहिणी, अश्विनी तथा मृगशिरा इन नक्षत्रों में; सिंह, कन्या, तुला तथा कुम्भ लग्नों में; तृतीय या चतुर्थ मास में; यात्रोक्त तिथि तथा शनि-मंगलातिरिक्त दिनों में शिशु का निष्क्रमण (घर से बाहर ले जाना) प्रशस्त है।

इन्हीं तिथि-वार-नक्षत्रों को मुहूर्त्तदीपककार तथा शीघ्रबोधकार ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में दिया है।

शीघ्रबोधकार का वचन इस प्रकार है—

'मैत्रत्रये हरिद्वन्द्वे विधिद्वन्द्वेऽदितिद्वये।
स्वाती हस्तोत्तराषाढा पूषार्यमाश्विनीषु च ।।
सिंहत्रये घटे लग्ने मासयोस्त्रिचतुर्थयोः।
यात्रातिथौ च निष्कास्यः शिशुर्नैर्वार्किभौमयोः' ।।

अथान्नप्राशनमुहूर्त्तः

पूर्वार्द्राभरणीसार्पवरुणानार्किभूमिजौ ।
सप्तमीं द्वादशीं रिक्तां त्यक्त्वा नन्दां सुपर्व च ।। १३९ ।।
षष्ठेऽष्टमे वापि मासे कन्यायाः पञ्चमे, शुभे ।
योगे पक्षे सिते कन्यावृषमन्मथमीनभे ।। १४० ।।
लग्ने, शुभप्रदं विज्ञैरन्नप्राशनमिष्यते ।

सुधा—पूर्वात्रय, आर्द्रा, भरणी, आश्लेषा, शतभिषा, शनि, मंगल, सप्तमी, द्वादशी, रिक्ता (४।१४।९), नन्दा (१।६।११) तथा पर्वो (चतुर्दश्यष्टमी षष्ठी अमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसङ्क्रान्तिरेव च' ।। अर्थात् चतुर्दशी, अष्टमी, षष्ठी, अमावास्या, पूर्णिमा और सूर्यसंक्रान्ति पर्व हैं) को छोड़कर अन्य तिथि-वार-नक्षत्रों में; छठे या आठवें महीनों में; कन्या के लिए पाँचवें महीने में; शुभ योग, शुक्ल-पक्ष, कन्या, वृष, मिथुन तथा मीन लग्नों में नवजात शिशु का अन्नप्राशन शुभद कहा गया है ।

मुण्डनमुहूर्त्तः

पुनर्वसुमृगज्येष्ठरेवत्यश्विकरत्रये ।। १४१ ।।
पुष्ये विष्णुत्रये वापि रवौ चोत्तरगे सिते ।
बुधे शुक्रे गुराविन्दौ वृषकन्याधनुर्घटे ।। १४२ ।।
मकरे मिथुने लग्ने हित्वा रिक्तां च जन्मभम् ।
षष्ठीं च पक्षतिं जन्ममासं, मुण्डनमादिशेत् ।। १४३ ।।

सुधा—पुनर्वसु, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा इन नक्षत्रों में; उत्तरायण सूर्य तथा शुक्लपक्ष में; बुध, गुरु, शुक्र तथा चन्द्र वारों में; वृष, कन्या, धनु, मकर तथा मिथुन लग्नों में; रिक्ता (४।१४।९), षष्ठी, प्रतिपदा, जन्मनक्षत्र तथा जन्ममास को छोड़कर दूसरे तिथ्यादिकों में मुण्डन (चौलकर्म) प्रशस्त माना गया है ।

विमर्श—मुण्डन शुद्ध एवं अशुद्ध दोनों समय में होता है । किन्तु अशुद्ध समयापेक्षया शुद्ध समय अधिक श्रेयस्कर है । मुण्डन के लिए सभी मुहूर्त्त-ग्रन्थों में शुक्लपक्ष ही निर्दिष्ट हैं । किन्तु 'आपञ्चम्यास्तिथेः कृष्णः शुक्लवत् परिकीर्त्तितः' इस नारदोक्त वचन से कृष्णपक्षीय पञ्चमी तक मुण्डन वैध माना गया है ।

चैत्रातिरिक्त उत्तरायणस्थ सूर्य का होना, ज्येष्ठ पुत्र के लिए ज्येष्ठमास (वृषार्क) न होना भी परमावश्यक है । क्योंकि प्राचीन विद्वानों के द्वारा कहा गया है—

'मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं तथा ।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्' ।।

रामाचार्य ने भी अपने मुहूर्त्त ग्रन्थ में 'चूडावर्षात् तृतीयात्प्रभवति विषमे' इत्यादि

पद्य में 'विचैत्रोदगयनसमये' कहकर चैत्र को त्याज्य तथा उपर्युक्त तिथि-वार-नक्षत्रों को ग्राह्य माना है।

वात्स्य ने भी कहा है—

'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे विवाहं चौलमेव च।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च न कुर्वीत व्रतं तथा'॥

भारद्वाज का भी कथन है—

'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम्।
आद्यपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्'॥

नाह्निदत्त ने—

'रेवत्यश्विकरत्रयेऽदितिमृगज्येष्ठासु विष्णुत्रये
पुष्ये चोत्तरगे रवौ गुरुकवीन्दुज्ञेषु पक्षे सिते'॥

कहकर उपर्युक्त तिथि, नक्षत्र, वार, मास एवं पक्ष सभी का समर्थन किया है।

वशिष्ठादि के वचन से भी मुण्डन विषम वर्ष में ही प्रशस्त है। याज्ञवल्क्य ने कुलाचारानुसार, मनु ने प्रथम या द्वितीय वर्ष में भी चौलकर्म (मुण्डन) करने का निर्देश किया है। किसी ने कहा है—

'न जन्ममासे न च जन्मभे तथा विधोर्विरुद्धे शततारकासु।
युग्माब्दमासे न च कृष्णपक्षे चूडा न कार्या खलु चैत्रमासे'॥

कर्णवेधमुहूर्त्तः

रोहिण्युत्तरमूलाश्विमैत्रान्त्यमृगभे भगे।
श्रुत्यर्कत्रितये पुष्ये पुनर्वसुसमन्विते॥ १४४॥
शुभे दिने चापमीनप्रमदाघटमन्मथे।
विषमेऽब्दे जन्ममासचैत्रपौषविवर्जिते॥ १४५॥
प्रबुद्धे भगवद्विष्णौ, कर्णवेधः प्रशस्यते।

सुधा—रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, पूर्वाफल्गुनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु इन नक्षत्रों में; शुभ दिन तथा धनु, मीन, कन्या, कुम्भ, मिथुन लग्नों में; विषम वर्ष में; जन्ममास, चैत्र, पौष के अतिरिक्त मास में तथा भगवान् विष्णु के जागरणावस्था में कर्णवेध प्रशस्त है।

अक्षरारम्भमुहूर्त्तः

चतुर्थे पञ्चमे वापि वत्सरे जन्मनः सिते॥ १४६॥
शुभे दिने स्थिरे लग्ने द्विस्वभावगतेऽथवा।
उत्तरायणगे सूर्ये ईशार्कद्विकपञ्चषट्॥ १४७॥
दशाग्निसंख्यकतिथौ मित्रेशश्रुतितक्षभे।

रेवत्यां लघुभे स्वात्यां गीर्गणेशौ प्रपूज्य च ।। १४८ ।।
अक्षराणां शुभारम्भं कारयेद्द्विजसत्तमः ।

सुधा—जन्म से चौथे या पाँचवें वर्ष में शुक्लपक्ष, शुभ दिन, स्थिर लग्न, उत्तरायणस्थ सूर्य, एकादशी, द्वादशी, द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, तृतीया तिथि; अनुराधा, आर्द्रा, श्रवण, चित्रा, रेवती, लघुसंज्ञक (अश्विनी, हस्त, पुष्य तथा अभिजित्) तथा चित्रा इन नक्षत्रों में सरस्वती एवं गणेश का पूजन करके ब्राह्मण द्वारा अक्षरारम्भ करावें ।

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार रामाचार्य ने भी 'गणेशविष्णुवाग्रमा' आदि पद्य द्वारा यही बात कही है ।

उपनयनमुहूर्त्तः

पूर्वाषाढाश्विमृगभे हस्तश्रवणतस्त्रये ।। १४९ ।।
ज्येष्ठापुष्यभगान्त्येषु भानावुत्तरगे सिते ।
गोमीनप्रमदासिंहलग्ने शुक्रे गुरौ रवौ ।। १५० ।।
दशमीत्रितये तद्वत्पञ्चम्यां व्रतबन्धनम् ।
द्वितीयायां तृतीयायां तिथौ च गदितं बुधैः ।। १५१ ।।
वृषार्के (ज्येष्ठे) ज्येष्ठपुत्रस्य निषिद्धं व्रतबन्धनम् ।

सुधा—पूर्वाषाढा, अश्विनी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तथा हस्त, चित्रा एवं स्वाती, ज्येष्ठा, पुष्य, पूर्वफल्गुनी तथा रेवती इन नक्षत्रों में; उत्तरायण सूर्य तथा शुक्लपक्ष में; वृष, मीन, कन्या, सिंह लग्न में; शुक्र, गुरु तथा रवि दिन में; दशमी, एकादशी, द्वादशी, पञ्चमी, द्वितीया तथा तृतीया तिथियों में व्रतबन्धन (उपनयन) प्रशस्त माना गया है । ज्येष्ठ (मास) में ज्येष्ठ पुत्र का उपनयन निषिद्ध है ।

विमर्श—उत्तरायणस्थ सूर्य से मकरादि षड्राशिस्थ सूर्य समझना चाहिए । मुहूर्त्तचिन्तामणिकार ने—'क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वारौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत्' । तथा 'कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्ने' कहकर चन्द्र एवं बुध वार को तथा कृष्णपक्षीय आदिम पाँच तिथियाँ एवं रोहिणी, आर्द्रा, आश्लेषा, उत्तराफल्गुनी, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढा, पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र नक्षत्र को भी व्रतबन्धोपयुक्त माना है । उनके विचार से कृष्णपक्षीय आदिम पाँच तिथियाँ 'आपञ्चम्यास्तिथेः कृष्णः शुक्लवत्परिकीर्त्तितः' इस नारदीय वचनानुसार शुक्लपक्षवत् हैं । अतः कृष्णपक्ष में भी पञ्चमी तक उपनयन विहित है ।

शीघ्रबोध तथा 'पञ्चविंशतिका'कारोक्त तिथि-वार-नक्षत्र भी उपर्युक्त तिथि-वार-नक्षत्र हैं ।

जैसा कि शीघ्रबोधकार ने कहा है—

'पूर्वाषाढाऽश्विनी हस्तत्रये च श्रवणत्रये ।
ज्येष्ठा पूर्वे मृगे पुष्ये रेवत्यां चोत्तरायणे ।।

द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चम्यां दशमीत्रये ।
सूर्यशुक्रसुराचार्यवारे पक्षे तथा सिते ।।
लग्ने वृषे धनुःसिंहे कन्यामिथुनयोरपि' ।

पञ्चविंशतिकाकार ने भी 'पूर्वाषाढहरित्रयेऽश्विमृगभे' आदि एक ही पद्य में उपर्युक्त तिथि-वार-नक्षत्रों का ही प्रतिपादन किया है ।

उपनयन संस्कार ब्राह्मणों के लिए गर्भ से या जन्म से पञ्चम या अष्टम वर्ष में, क्षत्रियों के लिए षष्ठ या एकादश वर्ष में, वैश्यों के लिए अष्टम या द्वादश वर्ष में विहित है ।

उपनयन संस्कार में गुरुशुद्धि आवश्यक होती है। गुरुशुद्धि नहीं रहने पर विवेकशील व्यक्ति उस वर्ष उपनयन स्थगित कर देते हैं । पूज्य (मध्यम) गुरु की स्थिति में गुरु-पूजनपूर्वक उपनयन किया जा सकता है, किन्तु गुरु की निन्दितावस्था में उपनयन प्रायः नहीं ही किया जाता है । अनेक बालकों का यदि सहैव उपनयन सम्पाद्य रहे तो एक की गुरुशुद्धि से सभी का उपनयन कर लिया जाता है । यद्यपि ऐसा कोई शास्त्रोक्त विधान नहीं है ।

गुरुशुद्धि जानने के लिए रामाचार्योक्त निम्न वचन उल्लेखनीय हैं—

'वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः ।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः ।।
स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ।
रिष्फाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसत्' ।।

अर्थात् जन्मराशि से नवम, पञ्चम, एकादश, द्वितीय तथा सप्तमस्थ श्रेष्ठ; दशम, षष्ठ, तृतीय तथा प्रथमस्थ गुरु पूज्य (मध्यम) तथा शेष चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादशस्थ गुरु निन्द्य (अधम) होते हैं । किन्तु अपने उच्च (कर्क), स्वभवन (मीन-धनु), स्वमित्रभवन (मेष-वृश्चिक), अपने नवांश तथा अपने वर्गोत्तमस्थ गुरु निन्द्य होने पर भी शुभद और नीच (मकर) या शत्रुक्षेत्र(मिथुन, कन्या, तुला, वृष)स्थ गुरु श्रेष्ठ रहने पर भी अनिष्टकर होते हैं ।

मिथिलाञ्चल में जन्मराशि से ५।७।२।९।११ स्थानस्थ अर्थात् श्रेष्ठ ही गुरु प्रशस्त माने जाते हैं । १।८।६।३ स्थानस्थ गुरु को मृत्युकारक तथा १२।१०।४ स्थानस्थ गुरु को द्रव्यनाशक कहा गया है । इस सम्बन्ध में मिथिलाञ्चलमान्य पौरोहित्यकर्मसार का निम्नाङ्कित वचन द्रष्टव्य है—

'जन्माष्टमारिसहजोपगतः सुरेज्यो
मृत्युं व्रतोपनयने विदधाति नूनम् ।
अन्त्योपगश्च नियतं दशमे चतुर्थे
द्रव्यक्षतिं प्रकुरुते खलु मानवानाम्' ।।

उपर्युक्त गुरु के मित्रभवन मेष एवं वृश्चिक ही क्यों ? जब कि गुरु के मित्र सूर्य, चन्द्र, मंगल तीनों हैं । सूर्यभवन सिंह का गुरु स्वतः गर्हित, चन्द्रभवन कर्क का गुरु

सर्वथा इष्टकर (उच्चगत) अतः अवशिष्ट मंगल का ही भवन (मेष-वृश्चिक) गुरु का मित्रभवन बचेगा ।

प्रस्तुत उपनयन-बोधक मुहूर्त्त में उत्तरायणस्थ सूर्य का उपादान है । उत्तरायण में चैत्र भी आता है । किन्तु चैत्र में ब्राह्मणों के लिए ही उपनयन विहित है । जैसा कि वशिष्ठ ने कहा है—

'विप्राणामुपनयनं वसन्तसमये धराधिनाथानाम् । ग्रीष्मर्त्तौ, शरदि विशाम्' आदि ।

उपनयन के वार के सम्बन्ध में रामाचार्य ने 'अर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत्' कहा है ।

नारद ने कहा है—

'आचार्यकाव्यसौम्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः ।
वारौ हि मध्यफलदौ निन्दितावितरौ व्रते' ।।

तदनुसार बुध, शुक्र, गुरु वार उपनयन में श्रेष्ठ; चन्द्र, सूर्य वार मध्यम तथा शेष शनि, मंगल वार अधम हैं ।

मिथिलाञ्चल में उपनयन के लिए शुद्ध समय सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र वार; सामवेदियों के लिए मंगल का पूर्वाह्ण समय तथा उपर्युक्त तिथि-वार-नक्षत्रादि प्रशस्त माना गया है ।

नक्षत्रों में पुनर्वसु ब्राह्मणों के लिए ही नहीं प्रत्युत क्षत्रियों तथा वैश्यों के लिए भी उपादेय है । जैसा कि राजमार्त्तण्डकार ने कहा है—

'चन्द्रवारानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि ।
पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति' ।।

ज्येष्ठ (वृषार्क) में ज्येष्ठ पुत्र के उपनयनादि मंगलकार्य निषिद्ध हैं । इस सम्बन्ध में निम्न कथन द्रष्टव्य हैं—

'आद्यकर्म दुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि च जातु मङ्गलम्' । (रत्नमालाकार)

'मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे विवाहं चौलमेव च ।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च न कुर्वीत व्रतं तथा' ।। (वात्स्य)

'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् ।
आद्यपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्' ।। (भारद्वाज)

'ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते' । (रामाचार्य)

दीक्षाग्रहणमुहूर्त्तः

मृगात्कर्काच्चतूराशिस्थितेऽर्के सिंहवर्जिते ।। १५२ ।।
रविचन्द्रग्रहेऽप्येवं नवरात्रे शुभे दिने ।
भौमार्करहिते चित्रामृगपुष्यकराश्विनी ।। १५३ ।।
पूर्वोत्तरात्रयपुनर्वसुद्वीशान्त्यरोहिणी- ।
शततारासु रिक्ताऽमा षष्ठी प्रतिपदाऽष्टमी ।। १५४ ।।

रहिते सुतनौ मीनवृषसिंहधनुर्गते ।
पूर्वाह्ले सद्गुरोर्दीक्षाग्रहणं शुभदं स्मृतम् ॥ १५५ ॥

सुधा—मकर तथा कर्क संक्रान्ति से सिंहातिरिक्त चार महीने अर्थात् माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख तथा श्रावण, आश्विन, कार्त्तिक एवं अग्रहण सभी सौरमास, सूर्य-चन्द्रग्रहण के समय, शारदीय नवरात्र, शनि-भौमातिरिक्त शुभ दिन, चित्रा, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अश्विनी, तीनों पूर्वा तथा तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, विशाखा, रेवती, रोहिणी तथा शतभिषा नक्षत्र, रिक्ता (४।१४।९), अमावास्या, षष्ठी, प्रतिपदा तथा अष्टमी रहित तिथियाँ, पूर्वाह्ल समय किसी सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण के लिए शुभद हैं ।

विद्यारम्भमुहूर्त्तः

हस्तत्रयेऽपि पूर्वासु हरियुग्मेऽश्वमूलभे ।
रेवत्यामिन्दुशरभे हरेर्बोधेऽब्दपञ्चके ॥ १५६ ॥
कविजीवार्कविद्वारे सल्लग्ने मीनचापयोः ।
अनध्याययुतां षष्ठीं रिक्तां हित्वाऽन्यसत्तिथौ ॥ १५७ ॥
शुद्धो जीवार्कयोः केन्द्र-त्रिकोणगशुभैस्तथा ।
त्रिषडायगतैः पापैर्विद्यारम्भं समाचरेत् ॥ १५८ ॥

सुधा—हस्त, चित्रा, स्वाती, तीनों पूर्वा, श्रवण, धनिष्ठा, अश्विनी, मूल, रेवती तथा मृगशिरा से पाँच नक्षत्र अर्थात् मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा—इन नक्षत्रों में; विष्णु भगवान् के प्रबुद्धाऽवस्था में; धनु-मीन लग्नों में; अनध्याय, षष्ठी, रिक्ता (४।१४।९) के अतिरिक्त तिथियों में; गुरु एवं सूर्य की शुद्धि में शुभग्रह केन्द्र तथा त्रिकोणस्थ हों और पापग्रह त्रिषडायस्थ हों तो विद्यारम्भ कराना चाहिए ।

समावर्त्तनधनुर्विद्यारम्भमुहूर्त्तौ

व्रतबन्धोक्तनक्षत्रे भौमार्किरहिते दिने ।
समावर्त्तनसंस्कारः क्रियते विबुधैः सदा ॥ १५९ ॥
पूर्वोक्तवारनक्षत्रातिरिक्ते उत्तरात्रये ।
आरभ्यो हि धनुर्वेदः कृत्तिकाभौमयोरपि ॥ १६० ॥

सुधा—व्रतबन्धोक्त नक्षत्र शनि-मंगलातिरिक्त दिन समावर्त्तन संस्कार के लिए और पूर्वोक्त वार-नक्षत्रों के अलावा तीनों उत्तरा तथा कृत्तिका नक्षत्र और मंगलवार भी धनुर्वेदारम्भ के लिए प्रशस्त माना गया है ।

गृहारम्भमुहूर्त्तः

श्रवणत्रितये हस्तत्रयेऽदितियुगे मृगे ।
उत्तराषाढफल्गुन्यौ मैत्राश्विब्राह्ममूलभे ॥ १६१ ॥
रेवत्यां च सिते पक्षे पञ्चम्यवधिकृष्णके ।
भौमार्किरहिते वारे वृषकुम्भहरिद्वये ॥ १६२ ॥

मीनमन्मथसल्लग्ने मार्गकार्त्तिकफाल्गुने ।
वैशाखे श्रावणे सौरमासि शुद्धे त्वनेहसि ॥ १६३ ॥
चक्रशुद्धावगौ वामपृष्ठदक्षिणगे सदा ।
गृहारम्भं प्रकुर्वीत तार्णे नैवं विचारयेत् ॥ १६४ ॥

सुधा—श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, उत्तराषाढ, उत्तरफल्गुनी, अनुराधा, अश्विनी, रोहिणी, मूल तथा रेवती नक्षत्र; शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष में भी पञ्चमी तिथि तक; मंगल-शनिरहित वार; वृष, कुम्भ, सिंह, कन्या, मीन, मिथुन, लग्न; सौर(मार्ग, कार्त्तिक, फाल्गुन, वैशाख तथा श्रावण)मास, शुभ समय, चक्रशुद्धि, वामपृष्ठ-दक्षिणस्थ राहु गृहारम्भ में आवश्यक हैं । तार्ण (तृणों द्वारा रचित) गृह में शुद्धादि समय आवश्यक नहीं है ।

विमर्श—शीघ्रबोधकार के अनुसार आषाढ गृहारम्भ में प्रशस्त नहीं हैं; यथा—

'श्रावणश्चैव वैशाखः कार्त्तिकः फाल्गुनस्तथा ।
मासेषु मार्गशीर्षश्च वास्तुकर्मणि शस्यते' ॥

नारद के अनुसार मिथुन, कन्या, धनु, मीन के सूर्य अर्थात् सौर-आषाढ सौर-आश्विन, सौर-पौष तथा सौर-चैत्र में गृहारम्भ गर्हित है । यथा—

'गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम् ।
कन्यायां रुक् तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥
कार्मुके तु महाहानिः मकरे स्याद्धनागमः ।
कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्मभयावहम्' ॥

पञ्चविंशतिकाकार नाह्लिदत्त ने आषाढ को भी गृहारम्भोपयुक्त कहा है, किन्तु यह बहुसम्मत नहीं है ।

श्रीपति ने भी—'मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे' कहकर नारदोक्त वचन को ही प्रामाणिक माना है । बहुसम्मत विचार आषाढ (मिथुनस्थ सूर्य) के विरुद्ध ही है । अतः—

'वैशाखे श्रावणे मार्गे माघे फाल्गुनके तथा ।
कन्यायुग्मधनुर्मीनभिन्ने सूर्ये गृहं शुभम्' ॥

यही मत प्रशस्त है ।

'तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ।
पाषाणेष्टयादिगेहानि निन्द्यमासे न कारयेत्' ॥

गृहारम्भ में—

'रिक्ताष्टमीदर्शरवीन्दुभौमा विवर्जनीया विदुषा प्रयत्नतः' ।

यह भृगु महाराज की उक्ति है ।

गृहारम्भ तथा गृहप्रवेश दोनों में सम्मुखस्थ राहु सर्वथा वर्जित है। इस सम्बन्ध में व्यवहारसमुच्चयकार ने इस प्रकार कहा है—

'सम्मुखे दक्षिणे राहौ स्त्रीयात्रां परिवर्जयेत्।
गृहारम्भप्रवेशौ तु सम्मुखे नैव कारयेत्'॥

अतः गृहारम्भ में रिक्ता, अष्टमी, अमावास्या तिथियाँ; सूर्य, चन्द्र, मंगल वार; कन्या, मिथुन, धनु तथा मीनगत सूर्य; सम्मुख राहु तथा अशुद्ध समय पक्के घर के लिए सर्वथा त्याज्य हैं।

फूस के घर या अग्न्यादि से उपद्रुत घर में उपर्युक्त विचार आवश्यक नहीं है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त गृहारम्भ में वृष-वास्तुचक्र की शुद्धि भी आवश्यक होती है। वृष-वास्तुचक्र के लिए सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से सात नक्षत्र अशुभफलद, उसके बाद ग्यारह नक्षत्र शुभफलद, शेष दश नक्षत्र भी असत्फलद होते हैं।

गृहप्रवेशमुहूर्त्तः

मघाऽश्लेषे विशाखां च पूर्वात्रितययाम्यभम्।
रिक्तां कुहूं सूर्यभौमौ विहायान्यशुभे दिने॥ १६५॥
सत्तिथौ शुक्लपक्षे च सल्लग्ने सुस्थिरेऽथवा।
द्विस्वभावे गृहारम्भः प्रशस्ते मास्यसम्मुखे॥ १६६॥
राहौ शुद्धे तु समये चक्रशुद्धौ च शस्यते।
सौम्यायने प्रवेशो हि क्वचिद् वृश्चिकगे रवौ॥ १६७॥

सुधा—मघा, आश्लेषा, विशाखा, पूर्वात्रय एवं भरणी नक्षत्रों में; रिक्ता (४।१४।९), अमावास्या तिथियों में; रवि, मंगल, दिनों को छोड़कर अन्य तिथि-वार-नक्षत्रों में, शुक्लपक्ष, स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्नों में, गृहारम्भ में, प्रशस्त मासों में अर्थात् सौर (कार्त्तिक, अग्रहण, फाल्गुन, वैशाख, आषाढ़, श्रावण) मासों में, असम्मुख राहु में, शुद्ध समय तथा चक्र शुद्धि में, उत्तरायणस्थ सूर्य में तथा कहीं-कहीं दक्षिणायन के वृश्चिकस्थ सूर्य में भी गृहप्रवेश प्रशस्त है।

विमर्श—उपर्युक्त मूल पंक्ति के अनुसार गृहप्रवेश में वैशाख, माघ, फाल्गुन, श्रावण तथा अग्रहण मास; रिक्ता, अमावास्या के अतिरिक्त तिथियाँ शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष में पञ्चमी तक; आश्लेषा, मघा, तीनों पूर्वा एवं भरणी के अतिरिक्त नक्षत्र; चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि वार; मेष, कर्क, तुला, मकर (चरलग्नों) को छोड़कर शेष लग्न गृहप्रवेश में प्रशस्त माने गये हैं। इसके अतिरिक्त पाषाणेष्टिका-निर्मित (पक्का) घर में प्रवेश के समय असम्मुख राहु तथा कुम्भचक्र की शुद्धि भी आवश्यक है।

कुम्भचक्रशुद्धि इस प्रकार समझना चाहिए—सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से पाँच नक्षत्र तक अशुभ, उसके बाद आठ नक्षत्र शुभप्रद, पुनः आठ नक्षत्र असत्फलद, पुनः अन्तिम छः नक्षत्र स्थैर्यप्रद (शुभद) होते हैं।

गृहारम्भ तथा गृहप्रवेश दोनों में सम्मुखस्थ राहु सर्वथा त्याज्य है। इस सम्बन्ध में व्यवहारसमुच्चयकार का निम्न वचन गृहारम्भ-प्रकरण में भी दिया जा चुका है; यथा—

'सम्मुखे दक्षिणे राहौ स्त्रीयात्रां परिवर्जयेत्।
गृहारम्भप्रवेशौ तु सम्मुखे नैव कारयेत्'॥

रामाचार्य ने नूतन गृहप्रवेश में 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा' आदि पद्य द्वारा याम्यायन को निषिद्ध माना है। 'सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे' पद्य द्वारा उत्तरायण को प्रशस्त कहा है, किन्तु मिथिलाञ्चल में याम्यायन (अग्रहण) में भी गृहप्रवेश बहुतायत रूप से होता है। क्योंकि पञ्चविंशतिकाकार नाह्लिदत्त ने 'मासास्तु वास्तूदिताः' कहा है।

वस्तुतः मुहूर्त्त-ग्रन्थों को देखने से गृहप्रवेश में उत्तरायण ही अधिक प्रशस्त जान पड़ता है। बृहद्वास्तुमाला में कहा गया है—

'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयो मार्गकार्त्तिकमासयोः'॥

इसके अनुसार भी अग्रहण का गृहप्रवेश मध्यम है।

शीघ्रबोधकार ने कहा है—

'गृहप्रवेशो वैशाखे श्रावणे फाल्गुने तथा।
आश्विने च स्थिरतनुर्ग्राह्यः पक्षो बुधैः सितः'॥

इस उपर्युक्त कथन के अनुसार आश्विन को भी गृहप्रवेशार्ह माना गया है। आश्विन मिथिलाञ्चल में प्रशस्त नहीं है। अग्रहण याम्यायन होते हुए भी मिथिला में गृहप्रवेशार्ह माना जाता है। इसीलिए मैंने मूल पद्य में 'क्वचिद् वृश्चिकगे रवौ' कर दिया है।

देवमूर्त्तिजलाशयारामादिप्रतिष्ठामुहूर्त्तः

उत्तरायणजे सूर्ये शुभेऽह्नि स्थिरसत्तनौ।
भौमार्किरहिते शुक्लपक्षे, रिक्ताष्टमी कुहू॥ १६८॥
द्वादशी पक्षतियुता षष्ठीरहितसत्तिथौ।
आश्लेषाऽऽर्द्रा शतभिषा भरणी द्वीशकृत्तिका॥ १६९॥
वर्जिते भे समुदिते शुक्रेज्ये शुभवासरे।
देवमूर्त्तितडागादि प्रतिष्ठा शस्यते बुधैः॥ १७०॥

सुधा—उत्तरायणस्थ सूर्य-शनि-भौमातिरिक्त शुभ दिन, स्थिर लग्न, शुक्लपक्ष, रिक्ता, अष्टमी, अमावास्या, द्वादशी, प्रतिपदा, षष्ठी के अतिरिक्त तिथियाँ, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका के अतिरिक्त नक्षत्र, गुरु तथा शुक्र का उदित रहना और शुद्ध समय देवमूर्त्ति एवं जलाशयादि की प्रतिष्ठा के लिए प्रशस्त हैं।

क्रयविक्रयभैषज्यपानमुहूर्ताः

उत्तरात्रयमूलाश्विमैत्रहस्तसमीरभम् ।
पूषा पुष्ययुतं भाद्रद्वयश्रुतिसमन्वितम् ॥ १७१ ॥
शस्तं क्रयं विक्रयं च भैषज्येऽदितिवासवौ ।
मैत्राश्विमूलपुष्यान्त्यस्वातीश्रुतिपुरन्दराः ॥ १७२ ॥
शस्ताः शशाङ्कः शुक्रोऽपि वाक्पतिश्च विशेषतः ।

सुधा—उत्तरात्रय, मूल, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, स्वाती, रेवती, पुष्य, पूर्वभाद्र, उत्तराभाद्र तथा श्रवण नक्षत्र क्रय-विक्रय के लिए प्रशस्त हैं।

पुनर्वसु, धनिष्ठा, अनुराधा, अश्विनी, मूल, पुष्य, रेवती, स्वाती, श्रवण तथा ज्येष्ठा नक्षत्र; चन्द्र, गुरु तथा शुक्र वार भैषज्यपान के लिए प्रशस्त हैं।

भैषज्यपान के लिए किसी ने कहा है—

'गुरुर्भार्गवचन्द्रार्का वारा भैषज्यकर्मणि ।
प्रशस्ता गदिता विज्ञैर्नक्षत्राणि तथा पुनः ॥
हस्तादितिश्रवणसोमसमीरणेषु मूलाऽनलेन्दुवसुतिष्ययुतेषु भेषु ।
भैषज्यपानमचिरादपहृत्य रोगं कन्दर्पतुल्यवपुषं पुरुषं करोति' ॥

इसका भी तात्पर्य उपर्युक्त पद्यों के समान ही है। इसमें वारों में रविवार को भी ले लिया गया है।

सूतीस्नाननवजातशिशुदुग्धपानमुहूर्तौ

रेवत्युत्तरहस्ताश्विस्वातीमैत्रेन्दुरोहिणी ॥ १७३ ॥
भे, रवौ गीष्पतौ भौमे सूतीस्नानं शुभं स्मृतम् ।
मूलोत्तरादित्यपुष्यमघाराधासु शुक्रवित् ॥ १७४ ॥
चन्द्रार्कगीष्पतिदिने दुग्धपानं शिशोः शुभम् ।

सुधा—सूतीस्नान के लिए रवि, मंगल, गुरु, वार; रेवती, उत्तरात्रय, हस्त, अश्विनी, स्वाती, अनुराधा, मृगशिरा तथा रोहिणी नक्षत्र प्रशस्त हैं।

नवजात शिशु के दुग्धपान के लिए मूल, उत्तरात्रय, पुनर्वसु, पुष्प, मघा, विशाखा नक्षत्र और शनि-भौमातिरिक्त रवि, चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र वार प्रशस्त माने गये हैं।

शिशुविलोकनमुहूर्त्तः

यात्रोदिततिथौ तद्वन्नक्षत्रे विमलेऽपि च ॥ १७५ ॥
योगे प्रशस्ते संल्लग्ने स्थिरे सौभाग्यवृद्धिदम् ।
कुलप्रचलिते मासे तृतीये वेन्दुसूर्ययोः ॥ १७६ ॥
वारे द्रव्यादिना विज्ञैः कार्यं शिशुविलोकनम् ।

सुधा—यात्रोदित तिथि, उत्तम नक्षत्र, प्रशस्त योग, स्थिर लग्न, तीसरा अथवा परम्परागत वंशप्रचलित मास शिशुविलोकन के लिए प्रशस्त हैं। शिशुविलोकन आभूषणादि के द्वारा करना चाहिए।

बीजवपनमुहूर्त्तः

हस्ताश्विशशिमैत्रान्त्यपुष्यवायुकृशानवः ॥ १७७ ॥
भानि, चन्द्रज्ञशुक्रेज्या वामाः पक्षद्वये शुभाः।
तिथयो विषमास्त्यक्त्वा प्रतिपन्नवमीकुहूः ॥ १७८ ॥
बीजानां वपने सस्यरोपणेऽपि शुभा मताः।

सुधा—हस्त, अश्विनी, अनुराधा, रेवती, पुष्य, स्वाती, कृत्तिका एवं रोहिणी नक्षत्र; सोम, बुध, शुक्र, गुरु वार; प्रतिपदा, नवमी, अमावास्या के अतिरिक्त विषम तिथियाँ बीजवपन तथा सस्यरोपण के लिए प्रशस्त हैं।

मेधिस्थापनमुहूर्त्तः

कदम्बशाल्मलिवटोदुम्बरैस्तु विनिर्मितः ॥ १७९ ॥
मेधिः सौख्यकरः प्रोक्तः सौख्यकृद्वंशबिल्वयोः।
रिक्तापौषार्किमाहेयाऽतिरिक्ते दिवसे शुभे ॥ १८० ॥
मृदुध्रुवचराख्येषु भेषु सम्पूज्य स्थापयेत्।

सुधा—कदम्ब, सेमर, बरगद या गूलर की मेह (मेधि) सुखप्रद और बाँस तथा बेल की वह शुभकारक है।

रिक्ता तिथि, पौष माह, मंगल तथा शनि वार के अतिरिक्त दिनों में मेधि का पूजन करके उसकी स्थापना करनी चाहिए।

नवान्नभक्षणमुहूर्त्तः

माघेऽपि फाल्गुने मासि, मार्गे च प्रथमार्धके ॥ १८१ ॥
नन्दारार्किकवीन् हित्वा गुरुविच्चन्द्रवासरे।
रवावपि सिते पक्षे मृदुक्षिप्रचरर्क्षके ॥ १८२ ॥
सत्तनौ वह्निमावेद्य नवान्नं ननु भक्षयेत्।

सुधा—माघ, फाल्गुन तथा अग्रहण के पूर्वार्ध में; नन्दा (१।६।११) तिथि; शनि, मंगल, शुक्र वारों को छोड़कर रवि, चन्द्र, गुरु, बुध वार; शुक्लपक्ष, मृदु, क्षिप्र तथा चर संज्ञक नक्षत्र और सल्लग्न में प्रथमतः अग्निदेव को समर्पित करके नवान्न का भक्षण शुभद है।

इन्धनगोमयपिण्डादिस्थापनमुहूर्त्तः

सूर्यर्क्षतो रसमितैः पाको भै रससंयुतः ॥ १८३ ॥
ततो रसैर्मरणभीर्वेदैर्मित्रसुखं ततः।

वेदैः पुना रोगभीतीरसत्फलमथाग्रिमैः ॥ १८४ ॥
वेदैः पुनः सौख्यमेतज्ज्ञात्वा काष्ठेन्धनं न्यसेत् ।

सुधा—सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से छः नक्षत्रों में गोमय-पिण्डादि काष्ठेन्धन के न्यास करने से सरस पाक बनता है। सप्तम नक्षत्र से द्वादश नक्षत्र तक काष्ठादि स्थापन से मृत्युभय, तदग्रिम चार नक्षत्रों में स्थापन से मित्रसुख (शुभ) होता है। उसके बाद चार नक्षत्रों में स्थापन से रोगभय, ततः पर चार नक्षत्रों में अशुभ फल और अन्तिम चार नक्षत्रो में स्थापन से सौख्य होता है। इन सभी बातों को जानकर ही काष्ठादि (गोरहा, लकड़ी या अन्य इन्धन) की स्थापना करें।

इति मैथिलपण्डित-श्रीदेवचन्द्रझाविरचिते सविमर्श-'सुधा'व्याख्योपेते व्यावहारिक-ज्यौतिषसर्वस्वे मुहूर्त्तस्कन्धः समाप्तः ।

अथ जातकस्कन्धः

रव्यादयो ग्रहाः सप्त तेजःपुञ्जाः खचारिणः ।
भ्रमन्तः स्वस्वकक्षासु दृश्यन्ते गगने सदा ॥ १ ॥
पूर्वामाशां व्रजन्तोऽपि प्रवहप्रेरिताः किल ।
पश्चिमस्यां दिशि सदा भ्रमन्त इव भान्ति ते ॥ २ ॥
अश्विन्यादीनि भान्येवं राशीन् मेषादिकानपि ।
स्वस्वगत्यानुगृह्यन्तीत्यतस्ते प्रथिता ग्रहाः ॥ ३ ॥
राहुकेतू अपि ग्रहौ तेजोहीनौ हि पापिनौ ।
विलोमगतिकौ षड्भान्तरितौ सूक्ष्मचारिणौ ॥ ४ ॥
इत्थं नवग्रहाः सर्वे महीतलगताः शुभाः ।
पदार्थान् विदधत्यात्मदृक्तेजोभिः प्रभावितान् ॥ ५ ॥

सुधा—रव्यादिक सातों ग्रह, जो तेजोमय तथा आकाशचारी हैं, अपनी-अपनी कक्षा में घूमते हुए आकाश में दीखते हैं । वे ग्रह अपनी-अपनी गति से पूर्व दिशा की ओर जाते हुए भी प्रवह वायु की प्रेरणा से पश्चिम दिशा में घूमते दिखलाई देते हैं ।

चूँकि अश्विन्यादि सत्ताइसों नक्षत्रों तथा मेषादि बारहों राशियों को वे ग्रह अपनी-अपनी गति से ग्रहण (पकड़ लेते) कर लेते हैं, अतः वे ग्रह कहलाते हैं ।

राहु-केतु भी तेजोहीन, पापी, विलोमगतिक (उलटा चलने वाले), सूक्ष्मचारी, एक-दूसरे से सदैव छः राशि की दूरी पर स्थित ग्रह हैं ।

इस प्रकार ये नव ग्रह पृथ्वी स्थित समस्त पदार्थों को अपनी-अपनी दृष्टि तथा तेज से प्रभावित करते हैं ।

विमर्श—भारतीय ज्यौतिष का सिद्धान्त है कि पृथ्वी स्थिर है, जिसके चारों ओर सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा (आकाशीय मार्ग में) भ्रमण करते हैं । यह मत पाश्चात्य मत से बिलकुल विपरीत है, क्योंकि पाश्चात्य विद्वानों की राय में सर्वाधिक महत्तम बिम्ब वाले सूर्य ही स्थिर हैं, जिसकी ही चारों ओर पृथ्वी आदि घूमते हैं । पाश्चात्यों का तर्क है कि बड़े बिम्बों का परिभ्रमण छोटे बिम्ब के चतुर्दिक् कथमपि सम्भव नहीं है । भारतीय ज्यौतिष के प्रकाण्ड विद्वान् भास्कराचार्य ने इसका समाधान इस प्रकार किया है—

'मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा वत वस्तुशक्तयः ।'

अर्थात् वायु स्वभावतः चल तथा पृथ्वी अचल है, क्योंकि सांसारिक वस्तुओं की शक्ति विचित्र होती है ।

भारतीय ज्यौतिषसिद्धान्तानुसार रविभ्रमण मार्ग को क्रान्तिवृत्त कहते हैं। इसमें तीस-तीस अंश वाले बारह टुकड़े मेषादि बारह राशियाँ हैं। सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में पूर्व दिशा की ओर भ्रमण करते हैं। किन्तु प्रवह वायु सभी को अपनी प्रवल शक्ति से पश्चिम की ओर अनुक्षण भ्रमण कराती है। इसीलिए ग्रहों का अस्त पश्चिम दिशा में ही दीखता है। यही कारण है कि अमावास्या को सूर्येन्दु के सङ्गम के बाद पूर्वाभिमुख चलने वाले दोनों में अधिकगतिक चन्द्रमा आगे बढ़ जाते हैं तो सूर्य पीछे रह जाते हैं। प्रवह वायु के प्रभाव से पीछे रहने वाले सूर्य का पहले पश्चिम में अस्त हो जाता है और आगे चलने वाले चन्द्रमा का बाद में अस्त होता है। इसीलिए द्वितीया को चन्द्रमा सूर्यास्त के बाद पश्चिम दिशा में दीखते हैं।

क्रान्तिवृत्त में जैसे बारह राशियों का स्थान है, उसी तरह वृत्त की दाहिनी और बाँई ओर अश्विन्यादि नक्षत्रों का भी स्थान उसी वृत्त में निहित हैं। कुछ नक्षत्र तो जैसे मघा, पुष्य, रेवती तथा शतभिषा क्रान्तिवृत्त में ही स्थित हैं। जो नक्षत्र क्रान्तिवृत्त के दक्षिण या उत्तर में स्थित हैं उनका भी स्थान क्रान्तिवृत्त में निश्चित है। अतः अपनी-अपनी गति से तत्तद् ग्रह उन-उन स्थानों में पहुँचने से तत्तद् राशिस्थ या तत्तत् नक्षत्रस्थ कहे जाते हैं। इसीलिए तत्तद् राशियों या नक्षत्रों को पकड़ने के कारण ही वे ग्रह कहलाते हैं। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर मूल पंक्तियाँ लिखी गई हैं।

शशीनामुदयो लग्नं जन्मकाले भवेच्च यत्।
तद्गतास्तत्र दृष्ट्या वा सदसत्फलदा ग्रहाः॥ ६॥
नवग्रहेषु भौमार्कशनयोऽगुः शिखी तथा।
क्षीणेन्दुश्च सदा पापाः पापः पापयुतो बुधः॥ ७॥
शेषाः शुभग्रहाः सन्ति सौम्याऽसौम्याः शुभाऽशुभाः।
त्रिकोणेशाः सदा सौम्या असौम्यास्त्रिषडायपाः॥ ८॥

सुधा—राशियों का उदय ही लग्न कहलाता है। जन्म समय में लग्नस्थ सदसद् ग्रह अथवा लग्न को देखने वाले वे शुभाऽशुभ फल देते हैं।

ग्रहों में मंगल, शनि, सूर्य, राहु, केतु एवं क्षीणचन्द्र—ये पापग्रह हैं। पापयुक्त बुध भी पापग्रह होता है। शेष गुरु, शुक्र, पुष्टचन्द्र तथा पापरहित बुध शुभग्रह हैं। त्रिकोणेश लग्नपञ्चम नवम के अधिप सदैव शुभफलद होते हैं। त्रिषडायेश (तीसरे, छठे तथा एकादश के स्वामी) सदैव अशुभफलद होते हैं। इस प्रकार साधारणतः सौम्या-ऽसौम्यग्रह शुभाऽशुभ फलद होते हैं, किन्तु त्रिकोणेश असद् ग्रह भी शुभफलद और त्रिषडायेश शुभग्रह भी असत्फलदायक होते हैं।

राशिस्वामिनः

रविचन्द्रौ तु राजानावेकैकभवनाधिपौ।
अन्ये पञ्चग्रहाः सर्वे द्विद्विराशीश्वराः स्मृताः॥ ९॥

सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कर्कटस्य तु चन्द्रमाः ।
मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः ।। १० ।।
धनुर्मीनाधिपो जीवः शुक्रो वृषतुलाधिपः ।
नक्रकुम्भाधिपो मन्दो राशीनामधिपा इमे ।। ११ ।।
कन्या राहुगृहं प्रोक्तं केतोर्वेश्म तु मीनभम् ।

सुधा—सूर्य और चन्द्रमा ग्रहों के राजा हैं। जिन्होंने एक-एक ही राशि का स्वामित्व स्वीकारा है। तदनुसार सिंह सूर्य के अधिप और चन्द्रमा कर्क के अधिप हैं। शेष पाँचों ग्रह दो-दो राशियों के अधिप हैं। जैसे मेष-वृश्चिक का स्वामी मंगल, कन्या-मिथुन का बुध, धनु-मीन का गुरु, वृष-तुला का शुक्र तथा मकर-कुम्भ का स्वामी शनि हैं। राहु का घर कन्या और केतु का मीन है।

ग्रहाणामुच्चनीचराशयः

रव्यादीनां क्रमान्मेषो वृषो नक्रश्च कन्यका ।। १२ ।।
कर्को झषस्तुला ज्ञेया ग्रहाणामुच्चराशयः ।
अंशैर्दशाग्निमनुयुक्तिथ्यक्षर्क्षनखैः क्रमात् ।। १३ ।।
परोच्चं तेषु तैरेव नीचं तत्सप्तमेषु वै ।
राहूच्चं मिथुनं ज्ञेयं नीचं तत्सप्तमं धनुः ।। १४ ।।
केतोर्धनुर्भवेदुच्चं नीचं मिथुनमुत्क्रमात् ।

सुधा—रव्यादिक सातों ग्रहों की उच्च राशियाँ क्रमशः मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन एवं तुला हैं। इन्हीं राशियों में क्रमशः १०, ३, २८, १५, ५, २७, २० अंशों पर उन उपर्युक्त सातों ग्रहों का परमोच्च स्थान हैं। राहु का मिथुन उच्च और धनु नीच एवं केतु का धनु उच्च और मिथुन नीच हैं अर्थात् राहु का उच्च-नीच केतु का उत्क्रम से नीचोच्च होते हैं।

अथ ग्रहाणां मूलत्रिकोणसंज्ञा

विंशत्यंशाः सूर्यत्रिकोणमपरे गृहं हरौ ।। १५ ।।
वृषेऽग्निभागाश्चन्द्रस्य तुङ्गमन्ये त्रिकोणकम् ।
द्वादशांशा अजे भौमत्रिकोणमपरे गृहम् ।। १६ ।।
कन्या तिथ्यं शकास्तुङ्गमन्त्या दश गृहं विदुः ।
मध्यगाः पञ्चभागास्तु त्रिकोणाख्याः स्मृता बुधैः ।। १७ ।।
गुरोर्धनुषि दिग्भागास्त्रिकोणमपरे गृहम् ।
तुलार्धं तु मृगोर्मूलत्रिकोणमपरं गृहम् ।। १८ ।।
विंशत्यंशा घटे सौरित्रिकोणमपरे गृहम् ।
राहोर्मूलत्रिकोणं तु मीनभं कस्यचिन्मतम् ।। १९ ।।
कुम्भं केचिद् वदन्त्यन्ये केतोस्तत्सप्तमं स्मृतम् ।

सुधा—सिंह राशि में २० अंश तक सूर्य का मूलत्रिकोण शेष दश उनका स्वगृह है। वृष राशि में तीन अंश तक चन्द्रमा का उच्च शेषांश मूलत्रिकोण है। मेष राशि में बारह अंश तक मंगल का मूलत्रिकोण शेषांश उनका घर है। कन्या राशि में पन्द्रह अंश तक बुध का उच्च अन्तिम दश अंश उनका घर और मध्यवर्त्ती पाँच अंश मूलत्रिकोण है। धनु राशि में गुरु का दश अंश तक मूलत्रिकोण शेष बीस अंश उनका घर है। तुला राशि में शुक्र का पन्द्रह अंश तक मूलत्रिकोण शेष पन्द्रह अंश उनका घर है। कुम्भ राशि में बीस अंश तक शनि का मूलत्रिकोण शेष दश अंश उनका घर है। राहु का मूलत्रिकोण किसी के मत से मीन राशि और किसी के मत से कुम्भ राशि है। राहु के मूलत्रिकोण से सप्तम केतु का मूलत्रिकोण समझना चाहिए।

ग्रहाणां नैसर्गिकमित्राऽमित्राणि

रवेर्बुधः समः प्रोक्तो रिपू शुक्रशनैश्चरौ ।। २० ।।
अन्ये मित्राणि, चन्द्रस्य शुक्रज्ञौ सुहृदौ परे।
समाः, कुजस्य शत्रुर्ज्ञः समौ शुक्रशनैश्चरौ ।। २१ ।।
अन्ये तु सुहृदो ज्ञेया, बुधमित्रेऽर्कभार्गवौ।
चन्द्रोऽरिरन्यखेटास्तु समा निगदिता बुधैः ।। २२ ।।
गुरोर्बुधसितौ शत्रू सुहृदोऽन्ये समः शनिः।
सूर्यचन्द्रौ भृगोः शत्रू मित्रे बुधशनैश्चरौ ।। २३ ।।
समौ कुजगुरू ज्ञेयौ, शनेर्वाचस्पतिः समः।
सितज्ञौ सुहृदौ शेषाः शत्रवः परिकीर्त्तिताः ।। २४ ।।
राहोः शुक्रशनी मित्रे रिपवोऽर्केन्दुभूमिजाः।
केतोः शुक्रशनी शत्रू सुहृदोऽर्केन्दुभूमिजाः ।। २५ ।।
मित्राऽमित्रसमाश्चैते निसर्गजनिताः स्मृताः।

सुधा—सूर्य का बुध सम, शुक्र-शनि शत्रु, अन्य चन्द्र, कुज एवं गुरु मित्र हैं। चन्द्रमा के सूर्य तथा बुध मित्र, शेष सभी सम हैं। मंगल के बुध शत्रु, शुक्र-शनि सम, शेष सूर्य, चन्द्र तथा गुरु मित्र हैं। बुध के सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु एवं अन्य मंगल, गुरु तथा शनि सम हैं। गुरु के बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम एवं शेष चन्द्रमा, मंगल तथा सूर्य मित्र हैं। शुक्र के सूर्य-चन्द्र शत्रु, बुध-शनि मित्र एवं शेष मंगल-गुरु सम हैं। शनि के गुरु सम, शुक्र-बुध मित्र, शेष सूर्य, चन्द्र तथा मंगल शत्रु हैं। राहु के शुक्र-शनि मित्र एवं सूर्य, चन्द्र तथा मंगल शत्रु हैं। केतु के शुक्र-शनि शत्रु और सूर्य, चन्द्र तथा मंगल मित्र हैं।

ग्रहों के उपर्युक्त मित्रामित्रसमत्व नैसर्गिक हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
मित्र	चं. मं. गु.	सू. बु.	सू. चं. गु.	सू. शु.	सू. चं. मं.	बु. श.	बु. शु.	शु. श.	सू. चं. मं.
शत्रु	श. शु.	×	बुध	चन्द्र	बु. शु.	च. सू.	सू. चं. मं.	सू. चं. मं.	शु. श.
सम	बु०	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.	—	—

अथ ग्रहाणां तात्कालिकमित्राऽमित्रे

तत्काले सहजस्वान्त्यदशमायसुखस्थिताः ॥ २६ ॥
ग्रहाः स्युः सुहृदोऽन्यत्र संस्थिताः शत्रवः स्मृताः ।

सुधा—किसी ग्रह के अपने स्थान (जिस राशि में ग्रह स्थित हो) से २।३।४। १०।११।१२ स्थानों में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र, शेष १।५।६।७।८।९ स्थानस्थ ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं ।

वराहमिहिर ने भी कहा है—

'तत्कालं च दशायबन्धुसहजस्वान्त्येषु मित्रं स्थिताः' ।

पञ्चधा मैत्री

मित्रसत्त्वे तूभयत्राऽधिमित्रत्वमुदीरितम् ॥ २७ ॥
शत्रुत्वे चाधिशत्रुत्वं समे शत्रौ च शत्रुता ।
समे मित्रे च मित्रत्वं मित्रे शत्रौ समः स्मृतः ॥ २८ ॥
विचिन्त्य सकलं चैतद् गणकः फलमादिशेत् ।

सुधा—नैसर्गिक तथा तात्कालिक दोनों में मित्रता रहने पर अधिमित्रत्व, दोनों में शत्रुता रहने पर अधिशत्रुत्व, एकत्र सम और अपरत्र मित्रत्व रहने पर मित्रत्व, एकत्र सम और अन्यत्र शत्रु होने पर शत्रुत्व, एकत्र मित्रत्व एवं अन्यत्र शत्रुत्व रहने पर समत्व समझना चाहिए । इस प्रकार ग्रहों का मित्रामित्रत्व समत्व, अधिमित्रत्व, अधिशत्रुत्व विवेचन करके ही फलादेश करना चाहिए ।

ग्रहाणां स्वरूपम्

रविरल्पकचः पित्तप्रकृतिश्चन्द्रमाः किल ॥ २९ ॥
बहुवातकफो भौमः पित्तप्रकृतिकः स्मृतः ।
कफवातपित्तयुक्तो बुधो हास्यरुचिस्तथा ॥ ३० ॥
गुरुः कफात्मको धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ।
शुक्रः कफानिलयुतः काव्यकृद् वक्रमूर्धजः ॥ ३१ ॥

क्रुशदीर्घतनुः शौरिर्वातप्रकृतिकस्तथा ।
वातप्रकृतिकौ ज्ञेयौ राहुकेतू भयङ्करौ ।। ३२ ।।

सुधा— सूर्य पित्तप्रकृतिक तथा अल्प केशधारी हैं। चन्द्रमा बहुत कफ-वात-प्रकृतिक, मंगल पित्तप्रकृतिक, बुध त्रिदोषयुक्त तथा हास्यरसप्रेमी, गुरु कफात्मक, बुद्धिमान् तथा सर्वशास्त्रज्ञ होते हैं। शुक्र कफ-वातप्रकृतिक, काव्यकर्त्ता एवं घुँघराले केश वाले होते हैं। शनि दुर्बल, लम्बा शरीर वाला तथा वातप्रकृतिक होते हैं। राहु-केतु दोनों भयङ्कर वातप्रकृति वाले होते हैं।

ग्रहाणां पुंस्त्वादिनिरूपणम्

पुंग्रहा भौमगुर्वर्काः स्त्रीग्रहाविन्दुभार्गवौ ।
क्लीबौ बुधशनी प्रोक्तौ जातकेषु विशेषतः ।। ३३ ।।

सुधा—मंगल, गुरु तथा सूर्य पुंग्रह, चन्द्रमा तथा शुक्र स्त्रीग्रह और बुध एवं शनि नपुंसक ग्रह कहे जाते हैं।

ग्रहाणां वर्णज्ञानम्

गुरुशुक्रौ सूर्यभौमौ शशिसौम्यौ शनिस्तथा ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशः शूद्रश्चेति यथाक्रमम् ।। ३४ ।।

सुधा—गुरु-शुक्र ब्राह्मण, सूर्य-मंगल क्षत्रिय, चन्द्र-बुध वैश्य तथा शनि शूद्र वर्ण के होते हैं।

ग्रहाणामुच्चादिस्थानबलम्

स्वोच्चे पूर्णं बलं प्रोक्तं त्रिकोणे पादवर्जितम् ।
स्वर्क्षेऽर्धं मित्रभवने पादमात्रं बलं स्मृतम् ।। ३५ ।।
पादार्धं समभे प्रोक्तं वियन्नीचास्तशत्रुभे ।
तद्वदेवाऽशुभं ब्रूयाद् व्यत्ययेन विचक्षणः ।। ३६ ।।

सुधा—ग्रह अपने उच्च में पूर्ण बल, मूलत्रिकोण में पूर्णबल का त्रिगुण चतुर्थांश, अपने घर में आधा, मित्रभवन में चतुर्थांश बल, सम राशि में अष्टमांश बल वाले होते हैं। नीचभवन, अस्त या शत्रु भवन में शून्य बल समझना चाहिए।

इसी तरह उच्चादि उपर्युक्त स्थानों में वैपरीत्य से अशुभप्रद बल भी समझना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्र

शुभबल

उच्च	मूलत्रिकोण	स्वगृह	मित्रगृह	समगृह	नीच. अस्त तथा शत्रु.
१	७५	५०	२५	१२५०	०

अशुभबलं

उच्च	मूलत्रिकोण	स्वगृह	मित्रगृह	समगृह	नी. श. अस्त
०	१२५०	२५	५०	७५	१·००

ग्रहाणां दृष्टिस्थानानि

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे पूर्णदृष्टचा तथा क्रमात् ।
शनिजीवकुजाः त्र्यंशत्रिकोणचतुरष्टमान् ।। ३७ ।।
एकद्वित्रिपाददृष्टचा त्र्यंशादीनखिला ग्रहाः ।
स्वस्वस्थानानि पश्यन्ति प्रयच्छन्ति तथा फलम् ।। ३८ ।।

सुधा—सभी ग्रह अपने-अपने स्थान से सप्तम स्थान पर पूर्ण दृष्टि रखते हैं। शनि, गुरु तथा मंगल क्रमशः त्र्यंश (३।१०), त्रिकोण (९।५), चतुरस्र (४।८) पर भी पूर्ण दृष्टि रखते हैं। साथ ही सभी ग्रह अपने-अपने स्थान से ३।१० को एकपाद दृष्टि से, ९।५ को द्विपाद दृष्टि से, ४।८ को त्रिपाद दृष्टि से भी देखते हैं और तदनुसार ही फल भी देते हैं।

मुहूर्तचिन्तामणिकार ने भी कहा है—

'त्र्याशं त्रिकोणं चतुरस्रमस्तं पश्यन्ति खेटाश्चरणाभिवृद्धचा ।
मन्दो गुरुर्भूमिसुतः परे च क्रमेण सम्पूर्णदशश्च वेद्याः' ।।

स्पष्टार्थ चक्र

ग्रह	सू०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
पूर्णदृष्टि	७	७	७ ४।८	७	७ ९।५	७	७ ३।१०
एकपाददृष्टि	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	×
द्विपाददृष्टि	९।५	९।५	९।५	९।५	×	९।५	९।५
त्रिपाददृष्टि	४।८	४।८	×	४।८	४।८	४।८	४।८

राहोर्दृष्टिस्थानानि

सुते नवान्त्यमदने पूर्णदृष्टिरगोः स्मृता ।
द्वितीये दशमे गेहे चार्धदृष्टिः सुनिश्चिता ।। ३९ ।।
षष्ठे तृतीये भवने पाददृष्टिः प्रकीर्तिता ।
स्वकीये भवने तस्य पूर्णान्धत्वमुदीरितम् ।। ४० ।।

सुधा—अपने से पञ्चम, नवम, द्वादश एवं सप्तम पर राहु की पूर्णदृष्टि, दूसरे और दशवें पर अर्धदृष्टि, छठे तथा तीसरे पर पाददृष्टि और स्वस्थान में पूर्णान्धता होती है।

अथ ग्रहाणां तात्कालिकीकरणम्

दिनाद्यमन्तरं यच्च मिश्रमानेष्टकालयोः।
ऋणं धनं च विज्ञेयमिष्टकाले गतैष्यके॥ ४१॥
तदन्तरं तु गुणितं ग्रहभुक्त्या हृतं च तत्।
खरसैर्लब्धमंशाद्यं चालनं फलमुच्यते॥ ४२॥
शोध्यं योज्यं मिश्रमान-कालिकेषु ग्रहेषु तत्।
तात्कालिकग्रहा वामं पाते वक्रखगेऽपि च॥ ४३॥
नक्षत्रयातभोगाभ्यामिन्दुं संसाधयेद् बुधः।

सुधा—मिश्रमानकाल तथा इष्टकाल में जो दिनादिक अन्तर हो उसे मिश्रमानकाल से इष्टकाल को पहले रहने की स्थिति में ऋण और मिश्रमानकाल से इष्टकाल को बाद में रहने की स्थिति में धन समझना चाहिए। उस दिनादिक अन्तर को ग्रहगति से गुणा कर साठ (६०) से भाग देने पर जो अंशादिक लब्धि आवे उसे चालन फल समझें। उस चालन फल को मिश्रमानकालिक ग्रहों में ऋण-धन करें। मिश्रमानकाल से पहले यदि इष्टकाल हो तो ऋण, अन्यथा धन करें। राहु तथा वक्री ग्रह में धन को ऋण तथा ऋण को धन करें तो तात्कालिक ग्रह हो जायेंगे।

चूंकि अधिकतर पञ्चाङ्गों में मिश्रमानकालिक ग्रह बने रहते हैं, अतः मिश्रमानकाल और इष्टकाल का अन्तर करना चाहिए। ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग में जहाँ प्रातःकालिक ग्रह बने रहते हैं, वहाँ इष्टकाल तथा उस प्रातःकाल का ही अन्तर लेना चाहिए। इस प्रकार चन्द्रातिरिक्त सभी ग्रहों को जन्मकालिक ग्रह बनाये जाते हैं। चूंकि चन्द्रमा अधिकगतिक ग्रह है, अतः उपर्युक्त रीति से चन्द्रानयन में अधिक स्थूलता की सम्भावना से भयात भभोग द्वारा ही उनका आनयन आपेक्षिक सूक्ष्म होता है।

चन्द्रानयन की विधि इस प्रकार है—

'भयातं भोगविहृतं गतर्क्षाङ्कसमन्वितम्।
खवेदगुणितं भक्तं त्रिभिरंशादिकः शशी'॥

अर्थात् भयात को भभोग से भाग देने पर जो लब्धि आवे उसमें गत नक्षत्र संख्या को जोड़कर योगफल को ४० से गुणा करें और गुणन फल में तीन से भाग देने पर अंशादिक चन्द्रमा होते हैं। वस्तुतः यह रीति 'खषड्घ्नं भयातं भभोगोद्धृतमि'त्यादि का ही रूपान्तर है। इस प्रकार जन्मकालिक स्पष्ट चन्द्रमा का भी आनयन करना चाहिए।

उपर्युक्त सभी बातों का स्पष्टीकरण उदाहरण के द्वारा ही सम्भव है, अतः एक उदाहरण के द्वारा इसे स्पष्ट करना चाहूँगा।

उदाहरण—विक्रम संवत् २०३७ शालिवाहन शकाब्द १९०२, सन् १३८८ साल ख्रीष्टाब्द १९८० दिनाङ्क ६ अक्टूबर की रात में स्टैण्डर्ड टाइम ११ घ० ३२ मि० पर किसी शिशु का मधुबनी बिहार में जन्म हुआ है।

प्रथमतः स्थानीय समय जानने के जिए स्टैण्डर्ड टाइम में देशान्तर तथा वेलान्तर संस्कार करना आवश्यक होता है। तदनुसार मधुबनी का देशान्तर धनात्मक १४ मि० २८ से० है और ६ अक्टूबर को धनात्मक वेलान्तर १२ मि० और ० से० है, जिन्हें स्टैण्डर्ड टाइम में जोड़ने से ११ घ० ३२ मि+१४ मि० २८ से०+१२ मि० ० से० =११ घ० ३२ मि०+२६ मि० २८ से०=११ घ० ५८ मि० २८ से० आता है। अर्थात् १९८० के ६ अक्टूबर की रात में स्थानीय समय ११ घ० ५८ मि० २८ से० पर शिशु का जन्म हुआ। इसे घटी-पल-विपल के रूप में परिपात करने के लिए उस दिन के सूर्यास्त समय ५।५० मि० को जन्मसमय में घटाने से ११।५८।२८—५।५०।० =६ घ० ८ मि० २८ से०=सूर्यास्त से जन्मसमय तक।

चूँकि ढाई घड़ी का एक घंटा, ढाई पल का एक मिनट तथा ढाई विपल का एक सेकेण्ड होता है, अतः सूर्यास्त से जन्मसमय तक ६ घ० ८ मि० तथा २८ से० को ढाई से गुणा करने पर घटी-पल-विपल होना स्वाभाविक है। अतः (६ घ० ८ मि० २८ से०) $\times \frac{५}{२}$ =१५।२१ घटी-पल। इसमे दिनमान २९ घड़ी १२ पल जोड़ने पर १५।२१+२९।१२=४४ घटी और २३ पल=घटचादि इष्टकाल।

किसी भी जन्मकुण्डली के निर्माण में भयात तथा भभोग का बड़ा महत्त्व होता है, क्योंकि महादशा, अन्तर्दशा आदि इन्हीं दोनों के सहारे बनते हैं। भयात का तात्पर्य होता है—जन्मकालिक नक्षत्र का जन्मसमय में व्यतीत घटी-पलादि। भभोग का तात्पर्य होता है—जन्मकालिक नक्षत्र का समस्त मान।

प्रस्तुत उदाहरण में शिशु का जन्मनक्षत्र पूर्वफल्गुनी है। नक्षत्र का मान पञ्चाङ्ग में ५८।० है। पूर्वफल्गुनी के पूर्व नक्षत्र मघा को अन्त से जन्मसमय तक पूर्वफल्गुनी का व्यतीत भाग ही भयात कहलायेगा। पूर्वफल्गुनी के पूरे मान को भभोग कहेंगे। भयात एवं भभोग साधन के लिए निम्न प्राचीन पथ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन पंक्तियों को पूर्णतः अभ्यस्त कर लेना चाहिए। यथा—

'गतर्क्षनाडीखरसेषु शुद्धा सूर्योदयादिष्टघटी सुयुक्ता।
भयातसंज्ञा भवतीह तस्य निजर्क्षनाडीसहितो भभोगः॥
नक्षत्रमानादधिकं यदीष्टं तच्चेष्टमानात् पतितं भयातम्।'

इनका आशय है कि जिस नक्षत्र में जातक का जन्म हो उससे पूर्व नक्षत्र के घटचादि को ६० में घटाकर शेष में सूर्योदय से जन्मसमय तक काल (इष्टघटी) को जोड़ दें तो भयात और उसी शेष में वर्त्तमान नक्षत्र के घटी-पल को जोड़ने से भभोग

बन जाता है। यदि नक्षत्रमान से इष्टकाल अधिक हो तो इष्टकाल में नक्षत्रमान को घटाने से ही भयात बन जायेगा।

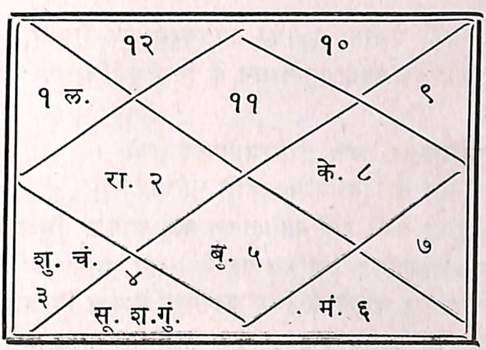
प्रस्तुत उदाहरण में जन्मनक्षत्र पूर्वफल्गुनी है, अतः विगत नक्षत्र के पञ्चाङ्गस्थ मान ५३।१७ को ६० में घटाने पर शेष = ६।४३। इसमें इष्टकाल जोड़ने से ६।४३ + ४४।३३ = ५१।१६ = भयात घटी-पल। एवं उसी शेष ६।४३ में वर्त्तमान पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमान ५८।० जोड़ने पर ६।४३ + ५८।० = ६४।४३ = भभोग।

इसके बाद जन्म के समय का तर्कित लग्न या पञ्चाङ्गस्थ दैनिक लग्न के सहारे लग्न तथा पञ्चाङ्गस्थ दैनिक या साप्ताहिक स्पष्ट ग्रहों के सहारे जन्मकालिक स्पष्ट ग्रहों को जन्माङ्गचक्र में रखना चाहिए। मिथिलाञ्चल में जन्माङ्गचक्र के ऊर्ध्वस्थ राशि को मेष तथा लग्नराशि में 'ल' लिख दिया जाता है। मिथिलेतराञ्चल में चक्र के ऊर्ध्वस्थ राशि में लग्नराशि का अङ्क और आगे के कोष्ठों में अग्रिम अङ्कों को लिखा जाता है। इसके बाद पञ्चाङ्ग के सहारे सभी ग्रहों का विन्यास चक्र के कोष्ठों में किया जाता है।

प्रस्तुत उदाहरण में दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालयीय पञ्चाङ्गस्थ दैनिक लग्न के सहारे जन्म के समय मिथुन लग्न तथा पञ्चाङ्गस्थ दैनिक स्पष्ट ग्रहों के सहारे जन्माङ्गचक्र में सभी ग्रहों को विन्यस्त कर दिया गया तो निम्नाङ्कित जन्माङ्गचक्र बनेंगें।

मिथिलाञ्चलप्रचलित

पद्धत्यनुसार जन्माङ्गचक्र



उपर्युक्त सग्रह जन्माङ्गचक्र लिखने के बाद निम्नलिखित विवरण देना चाहिए—

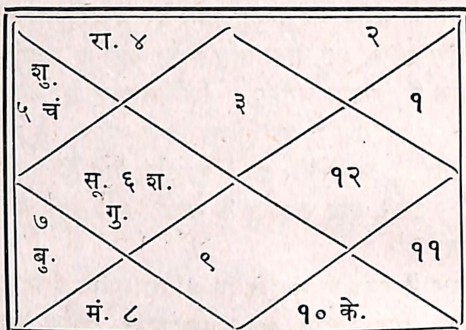
'आदित्यादिग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
आयुः कुर्वन्तु ते नित्यं यस्यैषा जन्मपत्रिका'॥

शुभ संवत् २०३७ शालिवाहनशकाब्दाः १९०२, सन् १३८८ साल दि० ६।१०।१९८० ई० आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि दण्डादि ५३।१२॥ पूर्वफल्गुनी नक्षत्र दण्डादि ५८।०॥ शुभयोग दण्डादि १३।५५ तदुपरि शुक्लयोगः॥ गरकरणदण्डादि २१।३५ तदुपरि वणिजकरणम्। दिनमानम् २९।१२ चन्द्रवासरे श्रीसूर्ययुक्तकन्यां

शकाद्याः १९।३३।११।। श्रीमन्मार्त्तण्डमण्डलार्धोदयादिष्टघटचः ४४।३३।। एतस्मिन् समये तर्कितमिथुनलग्नोदये अमुकवंशोद्भव श्रीमदमुकशर्मात्मज श्रीमदमुकशर्मणो गृहे तद्धर्मपत्न्यां स्वेष्टदेवद्विजगुरुप्रसादादुभयकुलानन्दकरः प्रथमः (द्वितीयो वा) पुत्रो जातः ।

मिथिलेतराञ्चलप्रचलित

पद्धत्यनुसार जन्माङ्गचक्र



तदेतस्य शतपदचक्रानुसारेण पूर्वफल्गुनीनक्षत्रस्य चतुर्थचरणे जनुष्ट्वात् ऊकारस्वरयुक्तं टकाराद्यक्षरं 'टूकन' इति राशिनाम । उल्लापने तु पित्रोर्यथारुचि ।

बालोऽसौ सिंहराशिः, क्षत्रियवर्णः, मूषकयोनिः, मनुष्यगणः, मध्यनाडीति विवाहादिशुभे विचिन्त्यम् ।

भयातम् = ५१।१६, भभोगः ६४।४३ जातकस्य शुभं भूयात् ।

तदनन्तर जन्मकालिक स्पष्टग्रह-साधन के लिए पूर्वलिखित 'ग्रहाणां तात्कालिकीकरणम्' शीर्षक—

दिनाद्यमन्तरं यच्च मिश्रमानेष्टकालयोः ।
ऋणं धनं च विज्ञेयमिष्टकाले गतैष्यके' ।।

आदि पद्यों के द्वारा सभी ग्रहों का चालन फल लाकर मिश्रमानकालिक ग्रहों में ऋण-धन करने पर जन्मकालिक सगतिक ग्रह ले आना चाहिए ।

तात्कालिक स्पष्ट ग्रह जानने के लिए दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालयीय पञ्चाङ्ग, वाराणसेय हिन्दूविश्वविद्यालयीय पञ्चाङ्ग तथा काशीविश्वनाथ पञ्चाङ्ग अधिक उपयुक्त हैं । इन पञ्चाङ्गों में दैनिक स्पष्ट ग्रह मिश्रमानकालिक अथवा उदयकालिक स्पष्ट ग्रह बने रहते हैं । जिन पञ्चाङ्गों में साप्ताहिक मिश्रमानकालिक स्पष्ट ग्रह बने रहते हैं उनमें मिश्रमान तथा इष्टकाल का अन्तर दिन-घड़ी-पल में होगा, किन्तु इन विश्वविद्यालयीय पञ्चागों में दैनिक स्पष्ट ग्रह बने रहने के कारण वह अन्तर दण्डपलात्मक मात्र होगा । सभी ग्रहों की दैनिक स्पष्टगति भी ज्ञात रहती है, क्योंकि अद्यतनश्वस्तन ग्रहों का अन्तर ही स्पष्टगति होगी । इस प्रकार स्पष्टगति तथा मिश्रमान इष्टकाल के अन्तर ज्ञान से ६० घटी (अहोरात्रि) में यदि आनीत कलात्मक स्पष्ट-

गति हो तो मिश्रमानेष्टकालान्तर क्या होगा ? इस अनुपात से कला-विकलात्मक चालन फल आयेगा, जिसे मिश्रमानकालिक ग्रहों में ऋण-धन—मिश्रमानकाल से इष्टकाल के पहले रहने पर ऋण और बाद में रहने पर धन—करने पर तात्कालिक स्पष्टग्रह हो जायेंगे। यहाँ सूर्य की स्पष्टगति ५९।२७ है।

ग्रह की वक्रता या राहु-केतु में विपरीत अर्थात् ऋण-धन के स्थान में धन-ऋण करना चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में इष्टकाल=४४।३३, मिश्रमानकाल ४४।३६ है। दोनों का अन्तर ० दण्ड तथा ३ पल होगा, अतः सूर्य का चालन फल $\frac{(५९।२७)(०।३)}{६०}$ =

(५९।२७)×०=०।०

(५९।२७)×३=१७७।८१

योग=०।१७८।८१। इसमें ६० से भाग देने पर ०।२''।५८''। इसे मिश्रमानकालिक सूर्य में घटाने पर जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य=५।१९।३३।१४''—२''।५८''' =५।१९°।३३'।११''।

इसी तरह ०।३ दण्ड-पलात्मक अन्तर से भौमादि सभी ग्रहों की स्पष्टगति को उपर्युक्त रीति से गुणन तथा ६० से भाग देने पर सभी ग्रहों के चालन फल आ जायेंगे। उसके बाद मिश्रमानकालिक तत्तद् ग्रहों में घटाने से जन्मकालिक स्पष्टग्रह होंगें।

चूंकि अद्यतन-श्वस्तन स्पष्ट ग्रहों का अन्तर ही स्पष्टगति होती है, अतः भौमादि स्पष्टग्रहों की स्पष्टगति पञ्चाङ्ग के सहारे ज्ञात कर निम्नाङ्कित रूप में लिख रहा हूँ—

मंगल की स्पष्टगति =४२'।१०''
बुध की स्पष्टगति =९९'।०६''
गुरु की स्पष्टगति =१२'।५३''
शुक्र की स्पष्टगति =६९'।५६''
शनि की स्पष्टगति =७'।४०''
राहु-केतु की स्पष्टगति=३'।११''

इन स्पष्टगतियों से मिश्रमानकालेष्ट कालान्तर ०।३ को गुणन तथा ६० से भाग देने पर कला-विकलात्मक ऋण चालन फल होंगें। गुणन उपर्युक्त विधि (गोमूत्रिका क्रम) से ही करना चाहिए। जैसे मंगल का चालन फल=

$\frac{(४२।१०)\ (०।३)}{६०}$ = (४२।१०)×०=०।०

(४२।१०).३=१२६।३०

योग=०।१२६।३०

इसमें ६० से भाग देने पर=०।२''।६''=मंगल का ऋण चालन फल। इसे मिश्रमानकालिक स्पष्ट मंगल में घटाने पर ७।२°।६'।३५''−२''।६''=७।२।६।३२''।५४'' =जन्मकालिक स्पष्ट मंगल।

इसी तरह बुध का चालन फल $= \frac{(९६।०६)(०।३)}{६०}$

(९६।०६) × ० = ०।०

(९६।०६) ३ = २८८।७।८

०।२८८।१८ = ४'।४८''।१८''

इसमें ६० से भाग देने पर = ०।४''।४८'' = बुध का चा० फ०। इसे मिश्रमान-कालिक स्फुट बुध में घटाने से ६।१५·।१५'।३९''−०।४''।४९'' = ६।१५·।१५'।३४''। ११'' = जन्मकालिक स्पष्ट बुध।

इसी तरह स्पष्ट गुरु का चालन फल =

$\frac{(१२।५३)(०।३)}{६०}$ = (१२।५३)० = ०।०

(१२।५३) ३ = ३६।१५९

योग = ०।३८।३९

इसमें ६० से भाग देने पर ०'।३८''।३९''। इसे मिश्रमानकालिक गुरु में घटाने पर ५।३।१७'।९''−०''।३९''। = ५।३।१७'।८'' = जन्मकालिक स्पष्ट गुरु।

इसी तरह शुक्र का चालन फल = $\frac{(६९।५६)(०।३)}{६०}$ =

(६९।५६) × ० = ०।०

(६९।५६) × ३ = १०७।१६८

योग = ०।२०९।४८

इसमें ६० से भाग देने पर ०'।३''।२९'''।४८'''' = ३''।० इसे मिश्रमानकालिक शुक्र में घटाने पर ४।९।२५।१२''−०।३''।

= ४।९·।२५'।९'' = जन्मकालिक स्पष्ट शुक्र।

इसी तरह शनि का चालन फल = $\frac{(७।४०)(०।३)}{६०}$

= (७।४०) × ० = ०।०

(७।४०) ३ = २१।१२०

योग = ०'।२३''।०'''

इसमें ६० से भाग देने पर ०'।०''।२३'''। इसे मिश्रमानकालिक शनि में घटाने पर ५।९।११'।१६''—०'।०''।२३'''

= ५।९।११'।१५''।३७''' = जन्म का स्पष्ट शनि।

केतु का चालन फल = $\frac{(३।११)(०।३)}{६०}$ = ०।०

९।३३

०।९।३३

इसमें ६० से भाग देने पर ०।०''।९'''।३३''''। इसे मिश्रमानकालिक केतु में जोड़ने पर ९।२५।३८'।५''।०''' + ०''।९''' = ९।२५।३८।५''।९''' । स्पष्टकेतु (जन्मकालिक) = ९।२५।३८।५'' । चूँकि राहु-केतु का अन्तर ६ राशि का सतत रहता है अतः जन्मकालिक राहु = ३।२५।३८'।५'' ।

स्पष्ट चन्द्रमा के आनयन के लिए उपर्युक्त विधि नहीं अपना कर नीलकण्ठी का 'खषड्घ्नं भयातं भभोगोद्धृतमि'त्यादि का संक्षिप्त रूप 'भयातं भोगविहृतं गतर्क्षाङ्कसमन्वितम् । खवेदगुणितं भक्तं त्रिभिरंशादिकः शशी' ।। इसे ही अपनाना चाहिए । इसका तात्पर्य पहले भी दिया जा चुका है, फिर भी भयात को भभोग से भाग देकर गत नक्षत्र का अङ्क जोड़ दें । योगफल को ४० से गुणा कर तीन से भाग दे तो अंशादिक चन्द्रमा होते हैं ।

इसके अनुसार भयात ५१।१६ में भभोग ६४।४३ से भाग देने पर लब्धि = ०।४७।३१ । इसमें गत नक्षत्र १० जोड़ने से १०।४७।३१ हुए । इसे ४० से गुणा कर तीन से भाग देने पर—

$$\frac{(\text{१०।४७।३१})\,\text{४०}}{\text{३}} = \frac{\text{४००।१८८०।१२४०}}{\text{३}} = \frac{\text{४३१।४०।४०}}{\text{३}} =$$

१४३।५३'।३३'' = रा. ४।२३।५३।३३ = स्फुटचन्द्र

'खखाभ्राष्टवेदा भभोगेन भक्ताः' के अनुसार—

$$\text{चन्द्रस्पष्टगति} = \frac{\text{४८०००}}{\text{भभोग}} = \frac{\text{४८००० × ६०}}{\text{३८८३}} = \frac{\text{२८८००००}}{\text{३८८३}} =$$

७४१'।४२'' = चन्द्रस्पष्टगति ।

तात्कालिकाः स्फुटग्रहाः सगतिकाः

सू०	५।१९।३३।११	गतिः	५९।२७
चं०	४।२३।५३।३३	गतिः	७४१।४२
मं०	७।२।६।३३	गतिः	४२।१०
बु०	६।१५।१५।३४	गतिः	९६।०६
गु०	५।३।१७।०८	गतिः	१२।५३
शु०	४।९।२५।९	गतिः	६९।५६
श०	५।९।११।१५	गतिः	७।४०
रा०	३।२५।३८।५	गतिः	३।११
के०	९।२५।३८।५	गतिः	३।११

प्रस्तुत उदाहरण में मिश्रमान तथा इष्टकाल का अन्तर तीन पल मात्र है । अतः चालन फल लाने में अधिक सुविधा हुई है । जहाँ दोनों का अन्तर घटी-पल के रूप में रहे या जहाँ साप्ताहिक स्पष्ट ग्रह बने रहते हैं, जैसे दोनों का अन्तर = ३दि.।१५घ.।२५प. हो तो उपर्युक्त गोमूत्रिका विधि से ही चालन फल लाकर पञ्चाङ्गस्थ स्पष्ट ग्रह में धन-ऋण करने से जन्मकालिक स्पष्ट ग्रह बनाना चाहिए ।

जैसे ग्रहगति = ५'।२५'' हो तो

चालन फल = (३।१५।२५) ५ = १५'।७५''।१२५

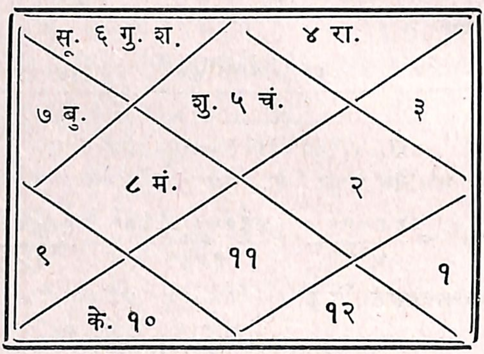
(३।१५।२५) २५ = ७५।३७५।६२५·

१५।१५०।५००।६२५

= १७'।३८''। इसमें ६० से भाग देने पर ०।१८। इसे ग्रह में धन-ऋण या ऋण-धन करने से जन्मकालिक स्पष्ट ग्रह होंगे।

सगतिक स्पष्ट ग्रह बनाने के बाद बहुधा चन्द्रकुण्डली दी जाती है। चन्द्रकुण्डली में कोई विशेषता नहीं होती प्रत्युत जन्मकुण्डलीस्थ चन्द्रमा को चक्र के ऊर्ध्वस्थ कोष्ठ में रखकर अन्य ग्रहों को यथावत् रख दिया जाता है। उद्देश्य यही रहता है कि चन्द्रमा पर से विचारणीय विषय सौविध्यपूर्वक जाना जा सके। अतः चन्द्रकुण्डली आगे देखिए—

चन्द्रकुण्डली



इस प्रकार चन्द्रकुण्डली देने के बाद ससन्धि द्वादश भाव तथा होरालग्न का बनाना आवश्यक होता है। होरालग्न आयुविचार में आवश्यक तत्त्व समझा जाता है। ससन्धि भावों के आनयन के अनन्तर भावफल दिये जायेंगे।

भाव बारह होते हैं; यथा—१. तनु, २. धन, ३. सहज, ४. सुहृद्, ५. सुत, ६. रिपु, ७. जाया, ८. मृत्यु, ९. धर्म, १०. कर्म, ११. आय तथा १२. व्यय।

तनु भाव से शरीर तथा भाग्य का; धन भाव से धन-सम्पत्ति का; सहज भाव से भाई-बहिन का; सुहृद् भाव से मित्र, मातृ, वाहन आदि का; सुत भाव से सन्तान, विद्या का; रिपु (षष्ठ) भाव से शत्रु, रोग, मातुल का; जाया भाव से पत्नी का; अष्टम भाव से मृत्यु एवं आयु का; नवम भाव से भाग्य का; दशम भाव से राज्य, पिता का; आय (एकादश) भाव से लाभालाभ का तथा व्यय (बारहवें) भाव से साधारण व्यय एवं शारीरिक व्यय का भी विचार किया जाता है। अतः भावों का आनयन आवश्यक होता है।

उपर्युक्त बारहों भावों के साधन के लिए सर्वप्रथम तनु तथा दशम भाव का

आनयन आवश्यक होता है। दोनों में छः-छः राशि जोड़ने से सातवें तथा चौथे भावों का ज्ञान हो जाता है। इस तरह प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भावों के सहारे शेष सभी भावों तथा बारहों सन्धियों का भी ज्ञान हो जाता है।

प्रथमलग्नसाधनविधिः

स्फुटोऽर्कः सायनः कार्यो भुक्तभोग्यांशकाश्च ये ॥ ४४ ॥
स्वीयोदयगुणास्त्रिंशद्भक्ता कालास्तदाह्वयाः।
अभीष्टनाडीपलतो भोग्यकालान् विशोधयेत् ॥ ४५ ॥
ततश्चाग्रिमराशीनां स्वोदयांश्चाथ शेषकम्।
त्रिंशता गुणितं भक्तमशुद्धोदयतः फलम् ॥ ४६ ॥
लवाद्यं सहितं मेषादिकैः शुद्धैस्तु राशिभिः।
भुक्ते विधौ भुक्तकालान् षष्टिशुद्धेष्टकालतः ॥ ४७ ॥
विशोध्य गतराशीनां स्वोदयांस्तत्र शोधयेत्।
लवाद्यं तु फलं शुद्धमशुद्धाजादिराशितः ॥ ४८ ॥
अयनांशविहीनं तत् स्फुटं लग्नं प्रजायते।
षड्राशिसहितं तच्च सप्तमं भवनं मतम् ॥ ४९ ॥

सुधा—जिस समय स्फुटलग्न साध्य हो उस समय के स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़ देने से वह सायन सूर्य हो जायगा। सायनार्क के भुक्त या भोग्य अंशादि को उस राशि के स्वोदय मान से गुणा कर तीस से भाग दें तो लब्धि (पलात्मक) भुक्त या भोग्य काल कहलाता है। भोग्य प्रकार से लग्न-साधन करते समय भोग्यकाल को इष्ट नाड़ी-पल में घटाकर शेष में ऐष्य राशियों के स्वोदय मानों को (जहाँ तक घट सके) घटावें। भुक्त प्रकार से लग्न स्पष्ट करते समय सावनेष्ट काल को ६० में घटाने से जो शेष घटी-पल बचे उसमें भुक्तकाल को घटावें। शेष में गत राशियों के स्वोदय मानों को घटाना चाहिए। अर्थात् भोग्यांश पर से लग्न-साधन में सावनेष्ट घटी-पल में ही भोग्यकाल को घटाकर शेष में ऐष्य राशियों के स्वोदय मानों को घटाया जाता है। परन्तु भुक्तांश पर से लग्न साधन में षष्टिशुद्ध सावनेष्ट काल में भुक्तकाल को पुनः भुक्त राशियों के स्वोदय मानों को घटाना पड़ता है। इस प्रकार आगत शेष को ३० से गुणा कर अशुद्धा मान से भाग देने पर आगत अंशादि लब्धि को भोग्य प्रकार में शुद्ध राशि-संख्या में जोड़ने से और भुक्त प्रकार में अशुद्ध राशि संख्या में घटाने से सायन स्फुटलग्न होता है। इसमें अयनांश घटाने पर निरयण फलादेशभोग्य स्पष्ट लग्न होता है। इसमें छः राशि जोड़ने पर सप्तम लग्न होता है।

विमर्श—यह लग्नसाधन-विधि मेरे द्वारा सम्पादित बृहत्पराशरहोराशास्त्र, जिसमें मैंने ही इसे निबद्ध कर रखा है, से उद्धृत है।

स्पष्ट प्रथम लग्न के साधन में तात्कालिकार्क अयनांश लङ्कोदय, चरखण्ड, उसके बाद स्वोदयमानानयन परमावश्यक होता है।

तात्कालिकार्क तो पहले ही सभी ग्रहों के स्पष्टीकरण में सिद्ध हो चुके हैं। अयनांशादि का ज्ञान कराना आवश्यक है।

अयनांश-साधन में ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ का कहना है—'वेदाब्ध्यद्यून: खरसहृत: शकोऽयनांशा:'। इस विधि से केवल वर्षान्त में ही अयनांशानयन सम्भव है। अत: इससे भी सरल तथा वर्षादि, वर्षमध्य या सदैव अयनांश साधन योग्य प्रकार निम्नांकित है—

'एकद्विवेदोनशकस्त्रिनिघ्नो भक्तो द्विशत्याऽयनभागका: स्यु:।
अंशादिकोऽर्कस्त्रिगुणो नखाप्तस्तावन्मिताभिर्विकलाभिराढ्या:'॥

इसके अनुसार इष्ट शक में ४२१ घटा कर शेष को तीन से गुणा करें, गुणन फल में २०० (दो सौ) से भाग दें तो वर्षारम्भकालिक अयनांश होंगें। फिर अंशादिक सूर्य को तीन से गुणा कर बीस से भाग दें, आगत विकलादि लब्धि वर्षारम्भकालिक अयनांश में जोड़ दें तो तात्कालिक अयनांश होंगें।

प्रस्तुत उदाहरण में वर्त्तमान शक—१९०२ में से ४२१ घटाने पर शेष= १४८१। इसे तीन से गुणा कर २०० से भाग लेने पर $\frac{१४८१ \times ३}{२००} = \frac{४४४३}{२००} =$ २२°।१२'।५५"

यह वर्षारम्भकालिक अयनांश हुए। पुन:—

$\frac{\text{अंशादिक सूर्य} \times ३}{२०} = \frac{(१६।३३।११)\,३}{२०} = \frac{४८।९९।३३}{२०} =$

$\frac{५०।३९।३३}{२०} =$ २५"। इसे वर्षारम्भकालिक अयनांश में जोड़ने से २२।१२ ५४" + ०।२५"। = २२°।१३'।१९" = तात्कालिक अयनांश। प्रतिविकला का त्याग कर दिया गया है।

चरखण्डसाधनम्

मेषादौ सायनार्के तु दिनार्धजनिता हि या।
द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्भा पलभेत्युच्यते बुधै:॥ ५०॥
त्रिष्ठा सा गुणिता दिग्भिर्भुजङ्गैर्दशभि: क्रमात्।
त्रिभिर्हृतान्तिमगता भवेयुश्चरखण्डका:॥ ५१॥

सुधा—मेषादि में सायनार्क के होने पर मध्याह्नकालिक बारह अंगुल शंकु की छाया पलभा कही जाती है, जो मिथिला में षडंगुलप्रमित है। उसे तीन जगह रखकर क्रमश: १०।८।१० से गुणा करें और अन्तिम गुणनफल में तीन से भाग लें तो तीन चरखण्ड होते हैं।

लङ्कोदयकथनं तत: स्वोदयसाधनम्

लङ्कोदया विघटिका गजभान्यङ्कगोऽश्विन:।
त्रिपक्षदहना एता: क्रमोत्क्रमगता: पुन:॥ ५२॥

क्रमोत्क्रमस्थितैर्हीनयुताश्चरदलैस्तदा ।
स्वोदयाः स्युः क्रमान्मेषात्तुलादेरुत्क्रमात्तथा ॥ ५३ ॥

सुधा—२७८, २९९, ३२३ को क्रम तथा उत्क्रम (विलोम) से रखने पर लङ्का के (मेष से क्रमशः और तुला से विलोमतः) बारहों राशियों के उदयमान होते हैं।

उपर्युक्त क्रमोत्क्रमस्थ लङ्कोदय में तीनों क्रमोत्क्रमस्थ चरखण्ड हीन तथा युत करें तो स्वोदयमान होंगें। प्रस्तुत उदाहरण में शिशु का जन्म मधुबनी (विहार) में हुआ है। वहाँ का स्वोदयमान उपर्युक्त रीति से लाने पर निम्नाङ्कित हैं—

मेष का = २१८ = मीन
वृष का = २५१ = कुम्भ
मिथुन का = ३०३ = मकर
कर्क का = ३४३ = धनु
सिंह का = ३४७ = वृश्चिक
कन्या का = ३३८ = तुला

इस तरह स्वोदयमान ज्ञात हो जाने पर उपरिलिखित 'स्फुटोऽर्कः सायनः कार्यः' आदि स्फुटलग्नानयन विधि के सहारे स्पष्टलग्नानयन करना चाहिए।

यहाँ स्पष्टलग्नानयन प्रकार, लङ्कोदय कथन, लङ्कोदय से स्वोदय साधन, चरखण्डानयन—ये सब मैंने अपने ही द्वारा रचित बृहत्पाराशर के ग्रहादिसाधनाध्याय से लिया है।

प्रस्तुत उदाहरण में प्रथमलग्नसाधन इस प्रकार है—

'स्फुटोऽर्कः सायनः कार्यः' इत्यादि लग्नानयन विधि से तात्कालिकार्क + अयनांश = सायनस्पष्टसूर्य = ५।१९॰।३३'।११" + २२॰।१३'।१९" = ६।११॰।४६'।३०"। यहाँ तुला का भुक्तांशकलादि = ११।४६।३०" को ३०॰ में घटाने से ३०॰।०।० = ११॰।४६'। ३०" = १८॰।१३'।३०" = भोग्यांश। तुला के स्वोदयमान ३३८ से भोग्यांश को गुणा कर ३० से भाग देने पर $\frac{(१८।१३॰।३०")\ ३३८}{३०}$ = भोग्यकाल = $\frac{६१६०।३।०}{३०}$

= पल विपल २०५। २०। पलात्मक इष्टकाल = ४४ × ६० + ३३ = २६७३। इसमें भोग्यकाल को घटाने से २६७३—२०५।२० = २४६७।४०। इसमें वृश्चिकादि स्वोदयमानों का योग (वृश्चिक से मिथुन तक) = २२३४ घटाने पर शेष = २३३।४०। इस शेष को ३० से गुणा कर अशुद्ध (कर्क) राशिस्वोदय ३४३ से भाग देने पर अंशादिक लब्धि = २०॰।२६'।१४"। इसमें अशुद्ध पूर्व मिथुन की संख्या तीन राशि जोड़ने से ३।२०॰।२६'।१४"। इसमें अयनांश घटाने पर ३।२०।२६।१४—२२॰।१३'।१९" = २।२८॰।१२'।५५" = स्पष्ट प्रथम लग्न।

प्रथम लग्न में ६ राशि जोड़ने पर सप्तम लग्न = ८।२८॰।१२'।५५"।८ सप्तम लग्न।

उपर्युक्त क्रिया में गुरुता इसलिए आई है कि यहाँ रात्र्यर्ध के समय लग्न लाना है। भोग्यकाल घटाने पर बहुत बड़ा शेष रह जाता। अतः बहुत-सी अग्रिम राशियों का स्वोदयमान घटाना पड़ा है। इसलिए रात्रिगत घटीमान को ही इष्टकाल मान कर उपर्युक्त विधि से क्रिया करने पर सप्तम लग्न आयेंगें। पुनः उसमें छः राशि जोड़ने पर प्रथम लग्न आसानी से आयेगा।

अब दशम लग्न-साधन करना है। इसके लिए नतकाल तथा लङ्कोदय की अपेक्षा होती है। लङ्कोदयमान तो पहले ही दिया जा चुका है। अतः नतकाल की परिभाषा तथा उसके द्वारा दशम लग्न-साधन विधि बतला रहा हूँ।

नतोन्नतपरिभाषा, दशमलग्नसाधनविधिश्च

द्युरात्रिगतशेषेष्टघटचोरल्पं तदुन्नतम्।
नतं दिननिशोरर्धमुन्नतोनं प्रकीर्त्तितम्॥ ५४॥
गतेऽल्पे पूर्वदिक् संस्थं शेषेऽल्पे पश्चिमं स्मृतम्।
पूर्वे नते भुक्तरीत्या पश्चिमे भोग्यरीतितः॥ ५५॥
लङ्कोदयैः साधितं यल्लग्नं तद्दशमं भवेत्।
सषड्भं दशमं विज्ञैर्ज्ञेयं तत्तुर्यसंज्ञकम्॥ ५६॥

सुधा—दिन तथा रात्रि के गत घटी और शेष घटी में जो अल्प हो उसे उन्नत काल कहते हैं। दिनार्ध या रात्र्यर्ध में उन्नतकाल को घटाने से नतकाल होता है। गत घटी यदि अल्प हो तो पूर्वनत और शेष घटी यदि अल्प हो तो पश्चिमनत होता है।

रात्रि में दशम लग्न यदि साध्य हो तो सूर्य में छः राशि जोड़ दें, पूर्वनत रहे तो भुक्त प्रकार से, पश्चिमनत हो तो भोग्य प्रकार से लङ्कोदय के द्वारा साधित प्रथम लग्न ही दशम लग्न हो जायगा। दशम लग्न में छः राशि जोड़ने पर चतुर्थ लग्न होता है।

प्रस्तुत उदाहरण में सावनेष्टकाल = ४४।३३, जिसमें रात्रिगत घटी = ४४।३३– दिनमान = ४४।३३–२९।१२ = १५।२१। इसे रात्र्यर्ध १५।२४ में घटाने पर = ०।३ तीन पल मात्र। यह पूर्वोक्त कथनानुसार पूर्वनत हुआ। क्योंकि रात्रिगत काल रात्र्यर्ध से अल्प है। अतः सषड्भ सूर्य तथा नतकाल के द्वारा लङ्कोदय पर से साधित लग्न दशम लग्न होगा।

रा.

सषड्भ सूर्य = ५।१९।३३'।११" + ६ राशि = ११।१९।३३'।११"। लङ्कोदय पर से प्रथम लग्न-साधन के लिए अयनांश इसमें जोड़ा गया तो ११।१९।३३'।११" + २२।१३।१९ = ०।११।४६'।३०" = सायनसषड्भार्क पूर्वनत के कारण भुक्त प्रकार से लग्न साध्य होगा। यहाँ भुक्तांश ११।४६।३० को मेष के लङ्कोदय २७८ से गुणा करने तथा ३० से भाग देने पर आगत भुक्तकाल, नतकाल ०।३ में नहीं घट सकेगा, अतः—

'स्वेष्टकालान्नसंशुद्धचेद् भुक्तं भोग्यं यदा तदा ।
त्रिशता गुणितं स्वेष्टं स्वोदयाप्तं लवादिकम् ॥
यत्तद्धीनं युतं कार्यं रवौ लग्नं स्फुटं भवेत् ।
अयनांशविहीनं सत् ... ...' ॥

अर्थात् भुक्त-भोग्यकाल इष्टकाल में यदि नहीं घटे तो इष्टकाल को ३० से गुणा कर स्वोदय से भाग दें, प्राप्त अंशादिक लब्धि को स्पष्टसूर्य में क्रमशः हीन-युत करें तो स्पष्ट लग्न होगा । पुनः अयनांश घटावें ।

इसके अनुसार $\frac{(०।३)(३०)}{२७८} = \frac{०।९०}{२७८} = ०।०।१९''$ ।

इसे सायन सषड्भसूर्य में घटाने से ०।११·।४६'३०''—०।०'।१९'' = ०।११।४६। ११ । इसमें अयनांश घटाने से ०।११।४६'।११''—२२·।१३'।१९'' = ११।१९·।३२'। ५२'' = दशम लग्न । इसमें ६ राशि जोड़ने पर चतुर्थ लग्न = ११।१९।३२।५२ + ६ राशि = ५।१९।३२'।५२ च० लग्न । इस प्रकार प्रथम, सप्तम, दशम तथा चतुर्थ लग्नों के सहारे निम्नाङ्कित विधि से शेष भावों का साधन सम्पन्न होगा ।

ससन्धिभावानयनविधिः

लग्नोनतुर्यषष्ठांशयुग् लग्नं सन्धिरग्रतः ।
त्रयः ससन्धयो भावा एवं षष्ठांशयोजनात् ॥ ५७ ॥
षष्ठांशानैकयुक् तुर्याद् भावा अग्रे ससन्धयः ।
षडेवं ते भार्ध(१८०)युक्ताः षट्परेऽपि भवन्ति हि ॥ ५८ ॥

सुधा—चतुर्थ भाव में लग्न को घटाकर शेष के षष्ठांश लग्न में जोड़ने पर प्रथम सन्धि, प्रथम सन्धि में षष्ठांश जोड़ने पर द्वितीय भाव, द्वितीय भाव में षष्ठांश जोड़ने पर द्वितीय सन्धि, द्वितीय सन्धि में षष्ठांश जोड़ने पर तृतीय भाव तथा तृतीय भाव में उसी षष्ठांश को जोड़ने पर तृतीय सन्धि होगी ।

उपर्युक्त षष्ठांशोनतीस अंश को चतुर्थ भाव में जोड़ने से चतुर्थ सन्धि, चतुर्थ सन्धि में पुनः उसे जोड़ने पर पञ्चम भाव, पुनः जोड़ने पर पञ्चम भाव की सन्धि, पुनः जोड़ने पर षष्ठ भाव, फिर उसे षष्ठ भाव में जोड़ने पर षष्ठ भाव की सन्धि होगी ।

इस प्रकार आनीत छः भावों तथा छः सन्धियों में ६ राशि जोड़ने पर शेष भाव तथा शेष सन्धियाँ होगीं ।

प्रस्तुत उदाहरण में $\frac{\text{चतुर्थ लग्न—प्रथम लग्न}}{६}$

$$\frac{\text{चतुर्थलग्न-प्रथमलग्न}}{६} = \frac{५।१९।३२।५३—२।२८।१२।५५}{६}$$

$\frac{\text{२।२१।१९।५७}}{\text{६}}$ = १३°।३३'।१९''।३०'' । इसे प्रथम लग्न में जोड़ने पर २।२८°।
१२'।५५'' + १३°।३३'।१९''३०''' = ३।११°।४६'।१४''।३०''' = प्रथम सन्धि ।

इसमें उपर्युक्त षष्ठांश पुनः जोड़ने पर ३।११°।४६'।१४''।३०''' + १३°।३३'।
१९''।३०''' = ३।२५।१९।३४ = द्विभाव ।

इसमें पुनः उक्त षष्ठांश जोड़ने से ३।२५°।१९'।३४'' + १३°।३३'।१९'' = ४।८°।
५२'।५३''।३०''' = द्वितीय सन्धि ।

इसमें पुनः षष्ठांश जोड़ने पर—

४।८°।५२'।५३''।३०''' + १३°।३३'।१९''।३०''' = ४।२२।२६।१३।० = तृतीय भाव + उक्त षष्ठांश = ४।२२°।२६'।१३''।० + १३°।३३'।१९''।३०''' = ५।५°।५९'।
३२''।३०''' = तृतीय सन्धि ।

उपर्युक्त षष्ठांश को एक राशि अर्थात् ३०° में घटाने पर शेष = ३०°—१३°।३३'।
१९''।३०''' = १६°।२६'।४०''।३०''' ।

चतुर्थ भाव + शेष = ५।१९°।३२'५२'' + १६°।२६'।४०''।३०''' = ६।५°।५९'।
३२''।३०''' = चतुर्थ सन्धि ।

चतुर्थ सन्धि + शेष = ६।५°।५९'।३२''३०''' + १६°।२६'।४०''।३०''' = ६।२२°।
२६'।१३''।०''' = पञ्चम भाव ।

पञ्चम भाव + शेष = ६।२२°।२६'।१३''।०''' + १६°।२६'।४०''।३०''' = ७।८°।
५२'।५३''।३०''' = पञ्चम सन्धि ।

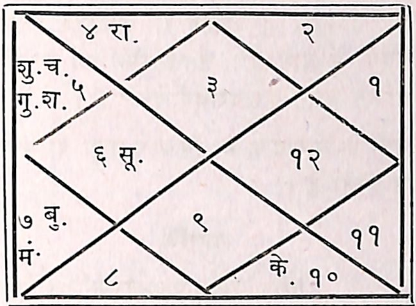
पञ्चम सन्धि + शेष = ७।८°।५२'।५३''।३०''' + १६°।२६'।४०''।३०''' = ७।
२५°। १९'।३४''।०''' = षष्ठ भाव ।

षष्ठ भाव + शेष = ७।२५°।१९'।३४''।०''' + १६°।२६'।४०''।३०''' = ८।११°।
४६'।१४''।३०''' = षष्ठ सन्धि ।

इस प्रकार आनीत सभी भावों तथा सन्धियों में ६ राशि जोड़ने पर ससन्धि द्वादश भाव हो जायेंगे । वे निम्नांकित हैं—

(प्रथम) तनुभाव	२।२८°।१२'।५५''।०	सन्धि	३।११°।४६'।१४''।३०'''
(द्वितीय) धनभाव	३।२५°।१९'।३४'''।०	सन्धि	४।८°।५२'।५३''।३०'''
(तृतीय) सहजभाव	४।२२°।२६'।१३''।०	सन्धि	५।५°।५९'।३२''।३०'''
(चतुर्थ) सुहृद्भाव	५।१९°।३२'।५२''।०	सन्धि	६।५°।५९'।३२''।३०'''
(पञ्चम) सुतभाव	६।२२।२६।१३।०	सन्धि	७।८°।५२।५३।३०
(षष्ठ) रिपुभाव	७।२५।१९।३४।०	सन्धि	८।११।४६°।१४।३०
(सप्तम) जायाभाव	८।२८।१२।५५।०	सन्धि	९।११।४६°।१४।३०
(अष्टम) मृत्युभाव	९।२५°।१९'।३४''।०	सन्धि	१०।८।५२।५३।३०
(नवम) धर्मभाव	१०।२२°।२६'।१३''।०	सन्धि	११।५।५९।३२।३०
(दशम) कर्मभाव	११।१९°।३२'।५२''।०	सन्धि	०।५।५९।३२।३०

(एकादश) आयभाव ०।२२।२६।१३।० सन्धि १।८।५२।५३।३०
(द्वादश) व्ययभाव १।२५।१९।३४।० सन्धि २।११।४६।१३।३०



वक्ष्यमाणे आयुर्विचारे प्रयोजनार्हस्य

होरालग्नस्य साधनम्

इष्टनाडीपले द्वाभ्यां सङ्गुण्य विभजेच्छुरैः ।
लब्धं राश्यादिकं यत्तद्योज्यमौदयिके रवौ ॥ ५९ ॥
होरालग्नं स्फुटं ज्ञेयमित्युक्तं— ।

सुधा—अभीष्ट नाड़ी-पल को दो से गुणा कर पाँच से भाग दें तो जो राश्यादिक लब्धि आवे उसे औदयिक सूर्य में जोड़ दें तो होरालग्न हो जाता है ।

जैसे प्रस्तुत उदाहरण में अभीष्ट नाडी-पल = ४४।३३। इसे दो से गुणा कर पाँच से भाग देने पर $\frac{(\text{४४।३३})\times \text{२}}{\text{५}} = \frac{\text{८९।६}}{\text{५}}$ = १७।२५·।१२।० = ५।२५·।१२।० = लब्धि । इसे औदयिक सूर्य में जोड़ना है । किन्तु औदयिक सूर्य अज्ञात है । अतः जन्मकालिक स्पष्टसूर्य, जिसे पहले ही लाया जा चुका है, में ४४'।३०'' घटाने पर औदयिक सूर्य हो जायगा, क्योंकि सूर्य की स्पष्ट या मध्यम गति लगभग ६० कलामात्र है । अतः—

औदयिक सूर्य = ५।१९।३३।११ (जन्मकालिक स्पष्टसूर्य)

इसे पूर्वानीत लब्धि में $\frac{\text{४४।३०}}{\text{५।१८।४८।४१}}$ = औ० सूर्य

जोड़ने पर = ५।१८·।४८।४१ + ५।२५·।१२।० = ११।१४।०।४ = होरालग्न ।

सप्रयोजनं दशवर्गसप्तवर्गयोः स्वरूपं विवक्षु-

र्गृहहोरादिप्रतिपादनम्

गृहहोरा दृकाणाङ्कभागसूर्यांशकास्तथा ।
त्रिंशांशाः ससप्तमांशाः सप्तवर्गे प्रकीर्त्तिताः ॥ ६० ॥
दशवर्गे षोडशांशा दिगंशाः षष्टि भागकाः ।
अधिकाः सप्तवर्गेभ्यो विशेषफलदायकाः ॥ ६१ ॥

बलाबलपरिज्ञानं ग्रहाणां सप्तवर्गतः ।
पारावतादिकान् योगान् दशवर्गाद् विचिन्तयेत् ।। ६२ ।।

सुधा—गृह, होरा, द्रेष्काण (दृकाण), नवमांश, द्वादशांश, त्रिंशांश तथा सप्तमांश—ये सात सप्तवर्ग में आते हैं । सप्तवर्गनिष्ठ इन सातों में षोडशांश, दिगंश तथा षष्टयंश के सम्मिलित करने पर दशवर्ग बनते हैं ।

सप्तवर्ग के द्वारा ग्रहों के बलाबल का विचार तथा दशवर्ग के द्वारा पारावतादि विशिष्ट योगों का ज्ञान होता है ।

गृहाणि

मेषादीनां भौमशुक्रबुधचन्द्रार्कवित्सिताः ।
कुजेज्यशनिमन्देज्याः क्रमशः पतयः स्मृताः ।। ६३ ।।

सुधा—मेषादिक बारहों राशियों के क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, (पुनः) शनि तथा गुरु—ये स्वामी हैं ।

स्पष्टार्थ चक्र

ग्रह	सू०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
राशिस्वामी	सिंह	कर्क	मेष	मिथुन	धनु	वृष	मकर
,,	+	+	वृश्चिक	कन्या	मीन	तुला	कुम्भ

होराः

राशेरर्धं भवेद्धोराश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः ।
चन्द्रार्कयोः समे राशौ, विषमे रविचन्द्रयोः ।। ६४ ।।

सुधा—राशि का आधा अर्थात् १५ अंश का होरा होता है । अर्थात् एक राशि में पन्द्रह-पन्द्रह अंश के दो होरा होते हैं, जिनमें आरम्भ से पन्द्रह अंश तक प्रथम होरा और शेषांश द्वितीय होरा । सभी राशियों की होरा संख्या चौबीस है ।

सम राशि में प्रथम होरा के अधिप चन्द्रमा और द्वितीय होरा के स्वामी सूर्य होते हैं ।

विषम राशि में प्रथम होरेश सूर्य और द्वितीय होरेश चन्द्रमा होते हैं ।

सम राशि = वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन हैं ।

विषम राशि = मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुम्भ हैं ।

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार ने कहा है—

'समगृहमध्ये शशि रवि होरा । विषमभमध्ये रविशशिनोः सा' ।।

स्पष्टार्थ चक्र

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
होरेश १५°	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.
३०°	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.

द्रेष्काणाः

राशित्र्यंशो हि द्रेष्काणस्ते तु राशौ त्रयो मताः ।
स्वपञ्चनवमाधीशाः क्रमात्तदधिपाः स्मृताः ।। ६५ ।।

सुधा—-राशि का तृतीयांश द्रेष्काण कहलाता है । वे एक राशि में तीन होते हैं । प्रथम द्रेष्काणाधिप राशिस्वामी स्वयं होता है । द्वितीय द्रेष्काण के अधिप राशि से पञ्चम के अधिपति होते हैं तथा तृतीय द्रेष्काणाधिपति राशि से नवम राशि के स्वामी होते हैं । अर्थात् किसी भी राशि में आरम्भ से १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण और उसका स्वामी राशिस्वामी ही होंगे ।

ग्यारह से बीस अंश तक द्वितीय द्रेष्काण और उसका अधिप राशि से पञ्चम के स्वामी होंगे । तृतीय द्रेष्काण इक्कीस अंश से ३० अंश अर्थात् राश्यन्त तक होता है, जिसका अधिप राशि से नवम राशिस्वामी होते हैं ।

स्पष्टार्थ चक्र

राशयः	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
१०°	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.
२०°	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.
३०°	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.

द्रेष्काणेशाः

नवमांशेशाः

चरस्थिरद्विस्वभावराशिषु क्रमशो भवेत् ।
नवांशाधिपतिः स्वस्मात् नवमात्पञ्चमादपि ।। ६६ ।।
नवांशराशयो मेषे मेषान्नक्राद् वृषे नव ।
मिथुने तु तुलाद्याः स्युः कर्कटे कर्कटादिकाः ।। ६७ ।।
सिंहे पुनस्तु मेषाद्याः कन्यायां मकरादिकाः ।
तुलायां तुलतो ज्ञेयाः वृश्चिके कर्कटादिकाः ।। ६८ ।।

पुनर्धनुषि मेषाद्याः मकरे मकरादिकाः ।
कुम्भे तु तुलतो ज्ञेया मीने कर्कटतो मताः ॥ ६९ ॥
नवांशराशिपतयो नवांशेशाः स्मृता बुधैः ।

सुधा—चर, स्थिर तथा द्विस्वभाव राशियों में क्रमशः स्वराशि, नवम राशि तथा पञ्चम राशियों में नौ-नौ राशियों के स्वामी नवांशेश होते हैं। जैसे मेष राशि में मेषादिक नौ राशियों के स्वामी नवों नवांशों के स्वामी होंगें। इस तरह वृष राशि में मकरादिक नौ राशियों के, मिथुन में तुलादिक नौ राशियों और कर्क में कर्कादिक नौ राशियों के स्वामी नवांशेश होंगें।

इसी तरह सिंह राशि में पुनः मेषादिक नौ राशियों के, कन्या राशि में मकरादिक नौ राशियों के, तुला में तुलादि नौ राशियों के और वृश्चिक में कर्कादिक नौ राशियों के स्वामी नवांशेश हैं।

पुनः धनु राशि में मेषादि नौ राशियों के, मकर राशि में मकरादि नौ राशियों के, कुम्भ में तुलादि नौ राशियों के और मीन में कर्कादि नवों राशियों के स्वामी नवांशेश हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी	
३।२०	में	म	तु	कर्क	मे	म	तु	क	मे	म	तु	क	१
६।४०	वृ	कु	वृ	सिं	वृ	कु	वृ	सिं	वृ	कु	वृ	सिं	२
१०।०	मि	मी	ध	क	मि	मी	ध	क	मि	मी	ध	क	३
१३।२०	क	मे	म	तु	क	मे	म	तु	क	मे	म	तु	४
१६।४०	सिं	वृ	कु	वृ	सिं	वृ	कु	वृ	सिं	वृ	कु	वृ	५
२०।०	क	मि	मी	ध	क	मि	मी	ध	क	मि	मी	ध	६
२३।२०	तु	क	मे	म	तु	क	मे	म	तु	क	मे	म	७
२६।४०	वृ	सिं	वृ	कु	वृ	सिं	वृ	कु	वृ	सिं	वृ	कु	८
३०।०	ध	क	मि	मी	ध	क	मि	मी	ध	क	मि	मी	९

नवांश राशियों के स्वामी नवांशेश होते हैं। जैसे मेष राशि में प्रथम नवांशेश मंगल, पञ्चम नवांशेश सूर्य तथा नवम नवांशेश गुरु होंगें। इसी तरह सभी राशियों में नवांशेश इसी चक्र के सहारे शीघ्र ही समझा जा सकता है।

द्वादशांशेशाः

द्वादशांशाधिपस्तत्तद्राशितः क्रमशो भवेत् ॥ ७० ॥

सुधा—तत्तद्राशि से बारह राशियों के स्वामी द्वादशांशेश होते हैं। जैसे मेष राशि में मेषादि बारहों राशियों के स्वामी बारहों द्वादशांशेश होंगें। वृष राशि में वृषादि बारह राशियों के स्वामी बारहों द्वादशांशेश होंगें। ऐसे ही आगे भी जानना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्र

	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी	द्वादशांशाः
१	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	२।३०
२	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	५।०
३	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	७।३०
४	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	१०।०
५	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	१२।३०
६	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	१५।०
७	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	१७।३०
८	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	२०।०
९	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	२२।३०
१०	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	२५।०
११	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	२७।३०
१२	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	३०।०

त्रिंशांशेशाः

त्रिंशपा विषमे भौममन्देज्यज्ञसिताः समे ।
व्यत्ययात् पञ्च पञ्चाष्टनगसायकभागतः ॥ ७१ ॥

सुधा—विषम राशियों (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन तथा कुम्भ) में ५,५,८, ७,५ अंशों के क्रम से मंगल, शनि, गुरु, बुध तथा शुक्र त्रिंशांशेश होते हैं । सम राशियों (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन) में ५, ७, ८, ५, ५ अंशक्रम से शुक्र, बुध, गुरु, शनि तथा मंगल (पूर्वोक्ति के विपरीत) त्रिंशांशेश होते हैं । वराहमिहिर ने भी अपने जातक में इस प्रकार कहा है—

'कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।
विषमर्क्षेषु समर्क्षेषूत्क्रमेण त्रिंशांशकाः कल्प्याः' ॥

इसका तात्पर्य भी पूर्वलिखित ही है ।

सप्तमांशेशाः

सप्तमांशाधिपास्त्वोजगृहे तद्भवनास्तथा ।
समे सप्तमराशेस्तु विज्ञेया विबुधैः सदा ॥ ७२ ॥
यथा मेषे तुलान्तानां राशीनामधिपा, वृषे ।
वृश्चिकाद् वृषभान्तानां राशीनामधिपाः स्मृताः ॥ ७३ ॥

सुधा—मेषादि विषम राशियों में मेषादि राशि से सात राशियों के अधिप सातों सप्तमांशों के अधिप होंगे । वृषादि सम राशियों में वृषादि राशि से सप्तम से सात

स्पष्टार्थ चक्र

मे	वृ	मि	क	सि	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी	
५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	अंश
५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	अंश
८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	८ गु	अंश
७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	७ बु	५ श	अंश
५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	५ शु	५ मं	अंश

राशियों के स्वामी सप्तमांशेश होते हैं। जैसे मेष राशि में सात सप्तमांश हैं। सातों के अधीश मेषादि सात राशियों के स्वामी होंगे। इसी तरह वृषादि सम राशियों में सप्तमांशों के स्वामी वृष से सप्तम वृश्चिक से सात राशि वृष तक के राशियों के स्वामी होंगे। अर्थात् मेष राशि में मेषादि तुलान्त राशियों के स्वामी और वृष में वृश्चिक से वृषभान्त राशियों के स्वामी सप्तमांशेश होंगे। ऐसे ही अन्य राशियों में भी समझना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्र

अंश	मे	वृ	मि	क	सि	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी
४।१७	मं १	मं ८	बु ३	श १०	सू ५	गु १२	शु ७	शु २	गु ९	चं ४	श ११	बु ६
८।३४	शु २	गु ९	चं ४	श ११	बु ६	मं १	मं ८	बु ३	श १०	सू ५	गु १२	शु ७
१२।५१	बु ३	श १०	सू ५	गु १२	शु ७	शु २	गु ९	चं ४	श ११	बु ६	मं १	मं ८
१७।८	चं ४	शु ११	बु ६	मं १	मं ८	बु ३	श १०	सू ५	गु १२	शु ७	शु २	गु ९
२१।२५	सू ५	गु १२	शु ७	शु २	गु ९	चं ४	श ११	बु ६	मं १	मं ८	बु ३	श १०
२५।४२	बु ६	मं १	मं ८	बु ३	श १०	सू ५	गु १२	शु ७	शु २	गु ९	चं ४	श ११
३०।०	शु ७	शु २	गु ९	चं ४	श ११	बु ६	मं १	मं ८	बु ३	श १०	सू ५	गु १२

दशमांशेशाः

दिगंशेशाः स्वतोऽयुग्मे युग्मे तन्नवभान्मताः ।

सुधा—विषम राशियों में उस राशि से आरम्भ कर दश राशियों के स्वामी दशमांशेश होते हैं । सम राशियों में उस राशि के नवम राशि से आरम्भ कर दश राशियों के स्वामी दशमांशेश होते हैं । जैसे मेष राशि में मेष से आरम्भ कर मकर तक के स्वामी दशमांशेश होंगे तथा वृष राशि में वृष से नवम मकर से आरम्भ कर तुला तक राशियों के स्वामी दशमांशेश होंगे । इसी तरह अन्य विषम या सम राशियों में भी समझना चाहिए ।

स्पष्टार्थ चक्र

अंश	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी
३	मं	श	बु	गु	सू	शु	शु	चं	गु	बु	श	मं
६	शु	श	चं	मं	बु	बु	मं	सू	श	शु	गु	गु
९	बु	गु	सू	शु	शु	चं	गु	बु	श	मं	मं	श
१२	चं	मं	बु	बु	मं	सू	श	शु	गु	गु	शु	श
१५	सू	शु	शु	चं	गु	बु	श	मं	मं	श	बु	गु
१८	बु	बु	मं	सू	श	शु	गु	गु	शु	श	चं	मं
२१	शु	चं	गु	बु	श	मं	मं	श	बु	गु	सू	शु
२४	मं	सू	श	शु	गु	गु	शु	श	चं	मं	बु	बु
२७	गु	बु	श	मं	मं	श	बु	गु	सू	शु	शु	चं
३०	श	शु	गु	गु	शु	श	चं	मं	बु	बु	मं	सू

षोडशांशेशाः

मेषसिंहधनुर्भ्यः स्युर्नृपांशेशाश्चरादिषु ॥ ७४ ॥

सुधा—चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव राशियों में क्रमशः मेष, सिंह तथा धनु राशियों से षोडशांशेश होते हैं ।

जैसे चर राशि मेष में मेष से ही आरम्भ कर कर्क तक के स्वामी षोडशांशेश होंगे । स्थिर वृष राशि में सिंह से आरम्भ कर वृश्चिकान्त राशियों के स्वामी षोडशांशेश होंगे । इसी तरह द्विस्वभाव मिथुन राशि में धनु से आरम्भ कर मीनान्त राशियों के स्वामी षोडशांशेश होंगे । इसी तरह अन्यान्य चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशियों में भी समझना चाहिए ।

षष्ट्यंशेशाः

ग्रहलग्नादिकानां यद् भागाद्यं द्विगुणं हृतम् ।
सूर्यैः शेषांशकं सैकं तद्भपाः षष्टिभागपाः ॥ ७५ ॥

सुधा—ग्रह-लग्नादिकों के जो अंशादिक रहे उसे दूना कर बारह से भाग लें, अंशस्थान में जो शेष रहे उसमें एक जोड़ने से जो संख्या आवे, ग्रहाश्रित राशि से तत्संख्यक राशिस्वामी षष्टचंशेश होते हैं। जैसे ग्रह—६।१९।२९'।२८'' अंशादिक को दूना करने पर ३८।५९।१६'· अंशस्थान में १२ से भाग देने पर शेष २ में एक जोड़ने से ३ हुए। अतः तुला से तीसरे धनु राशि का स्वामी गुरु षष्टचंशेश होंगे।

स्पष्टार्थ चक्र

	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी	अं. क. वि.
१	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	१।५२।३०
२	शु	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	श	३।४५।०
३	बु	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	श	५।३७।३०
४	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	७।३०।०
५	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	९।२२।३०
६	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	श	शु	११।१५।०
७	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	श	बु	१३।७।३०
८	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	१५।०।०
९	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	१६।५२।३०
१०	श	शु	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	१८।४५।०
११	श	बु	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	२०।३७।३०
१२	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	२२।३०।०
१३	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	मं	सू	गु	२४।२२।३०
१४	शु	बु	श	बु	बु	श	शु	बु	श	शु	बु	श	२६।१५।०
१५	बु	शु	श	शु	शु	श	बु	शु	श	बु	शु	श	२८।७।३०
१६	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	चं	मं	गु	३०।०।०

इस प्रकार आनीत सप्तवर्गों से ग्रहों का बलाबल निर्णय तथा दशवर्ग से पारिजातादि योगों का परिज्ञान होता है।

वर्गाणां प्रयोजनम्

षड्वर्गसप्तवर्गाभ्यां ग्रहाणां तु बलाबलम्।
किंशुकादींश्च सद्योगांश्चिन्तयेत् शुभवर्गतः ॥ ७६ ॥
द्वाभ्यां तु किंशुको योगस्त्रिभिर्व्यञ्जनसंज्ञकः।
चतुर्भिश्चामरश्छत्रं पञ्चभिः, कुण्डलाभिधः ॥ ७७ ॥
षड्भिः, सप्तभिरेवं तु मुकुटाख्यो बुधैः स्मृतः।
दशवर्गे पारिजातं द्वाभ्यामुत्तमकं त्रिभिः ॥ ७८ ॥
चतुर्भिर्गोपुरं सिंहासनं पञ्चभिरुच्यते।

षड्भिः पारावतं ज्ञेयं देवलोकं तु सप्तभिः ।। ७९ ।।
अष्टभिर्ब्रह्मलोकाख्यं नवभिः शक्रवाहनम् ।
श्रीधाम दशभिर्वर्गभेदैर्भिन्नमुदाहृतम् ।। ८० ।।
तत्र खेटा ग्रहजिता नीचगा दुर्बलास्तथा ।
शयनादिगता दुःस्था योगानां नाशकाः स्मृताः ।। ८१ ।।

सुधा—षड्वर्ग तथा सप्तवर्गों के द्वारा ग्रहों का बलाबल जाना जाता है। शुभ वर्गों के द्वारा किंशुकादिक योगों का विचार करना चाहिए। दो शुभग्रहों के वर्ग से किंशुक, तीन से व्यञ्जन, चार शुभवर्ग से चामर, पाँच से छत्र, छः से कुण्डल तथा सात शुभग्रहों के वर्ग से मुकुटयोग होता है।

दशवर्ग में दो शुभग्रहों के वर्ग से पारिजात, तीन शुभग्रहों के वर्ग से उत्तम, चार से गोपुर, पाँच से सिंहासन, छः से पारावत, सात से देवलोक, आठ शुभग्रहों के वर्ग से ब्रह्मलोक, नौ से शक्रवाहन और दश शुभग्रहों का वर्ग यदि हों तो श्रीधाम-योग बनता है।

ग्रह दूसरों से पराजित नीचस्थ दुर्बल या शयनादि अवस्थागत हों तो योगों का विध्वंस हो जाता है।

ग्रहों के बलाबल-निर्णयार्थ सप्तवर्गज बल बनाते समय स्पष्टग्रह एवं गृह, होरा, द्रेष्काण आदि सातों चक्र सामने रखकर देखें कि कौन ग्रह किसके घर में किसकी होरा में किसके द्रेष्काण आदि में हैं। इस प्रकार शुभग्रहों एवं पापग्रहों का वर्गीकरण सप्तवर्गचक्रस्थ सभी ग्रहों की पंक्ति में करें, जैसा कि निम्नाङ्कित सप्तवर्गज चक्र में किया गया है। शुभवर्ग में अधिक संख्या होने पर वह ग्रह प्रबल तथा पापवर्ग में अधिक संख्या होने पर वह निर्बल समझा जाता है। जैसा कि प्रस्तुत उदाहरण में स्पष्टसूर्य=५।१९°।३३।११ अर्थात् कन्या राशि के बीसवें अंश पर सूर्य हैं। अब गृह, होरा, द्रेष्काण आदि सभी चक्र देखने से सूर्य बुध के घर में, सूर्य की होरा में, शनि के द्रेष्काण में, बुध के नवांश में, मंगल के द्वादशांश में, गुरु के त्रिंशांश में तथा चन्द्रमा के

बलाबलज्ञानार्थ सप्तवर्गज चक्र

ग्रहाः	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
गृहम्	बु.	सू.	मं.	शु.	बु.	सू.	बु.
होरा	सू.	चं.	चं.	चं.	चं.	सू.	चं.
द्रेष्काण	श.	गु.	मं.	श.	बु.	सू.	बु.
नवांश	बु.	बु.	चं.	श.	श.	बु.	गु.
द्वादशांश	मं.	गु.	मं.	मं.	शु.	मं.	गु.
त्रिंशांश	गु.	शु.	शु.	गु.	श.	श.	बु.
सप्तमांश	चं.	गु.	शु.	श.	गु.	शु.	शु.
शुभवर्गाः	३	५	२	२	५	२	६
पापवर्गाः	४	२	५	५	२	५	१

सप्तमांश में हैं। अतः शुभवर्ग में तीन (३) और पापवर्ग में चार (४) हुए। इसी तरह अन्य ग्रहों का भी सप्तवर्गज बलानयन किया गया है।

चूंकि शिशु का जन्म कृष्णपक्षीय त्रयोदशी में है, अतः क्षीण चन्द्र होने के कारण चन्द्रमा पाप ही माना गया है।

अतः शनि सर्वाधिक प्रबल, गुरु-चन्द्रमा बली, सूर्य मध्यबली तथा शेष बुध, शुक्र, मंगल हीनबली सिद्ध हुए।

अथ भावानां केन्द्रादिसंज्ञाः

लग्नसप्तमतुर्याणां दशमस्य च विद्वरैः।
केन्द्रं, तद्वत् त्रिकोणं च नवपञ्चमयोस्तथा ॥ ८२ ॥
केन्द्रेभ्योऽग्रिमभावानां, शेषाणां च यथाक्रमम्।
अभिधानं पणफरमापोक्लिममिहोच्यते ॥ ८३ ॥

सुधा—लग्न सप्तम, चतुर्थ तथा दशम भावों की संज्ञा केन्द्र, नवम-पञ्चम की संज्ञा त्रिकोण, केन्द्र से अग्रिम चार भावों की संज्ञा पणफर और शेष चार की संज्ञा आपोक्लिम विद्वानों के द्वारा रखी गई है।

तन्वादयो द्वादशभावाः

तनुर्धनं च सहजः सुहृत् पुत्रस्तथा रिपुः।
जायामृत्युर्धर्मकर्मलाभा अन्त्यो व्ययः स्मृतः ॥ ८४ ॥
भावेभ्य एभ्य उक्तानां तन्वादीनां विचारणा।
पूर्वाचार्यैः कृता यद्वत् तथा सम्यगिहोच्यते ॥ ८५ ॥

सुधा—तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, लाभ और अन्तिम व्यय—ये बारह भाव हैं। इन भावों के द्वारा शरीरादि सबों का विचार पूर्वाचार्यों ने जैसा किया है वैसा ही यहाँ भी किया जायगा।

तन्वादिभावेभ्यो विचारणीयविषयाः

शरीरं रूपवर्णादि प्रकृतिं चाद्य भावतः।
धनं धान्यं कुटुम्बं च धातुरत्नादिकं धनात् ॥ ८६ ॥
विक्रमं भृत्यभ्रात्रादि पित्रोर्भृत्यं तृतीयतः।
मित्रयानगृहारामभ्रातृसौख्यादितुर्यतः ॥ ८७ ॥
सन्ततिं बुद्धिवैशद्यं विद्यां च तनुजालभात्।
मातुलं व्रणरोगादि रिपुं च रिपुभावतः ॥ ८८ ॥
जाया मृत्यु वणिग्वृत्तिं सप्तमात् परिचिन्तयेत्।
आयुर्गुदेऽङ्कुरं पूर्वजन्मवृत्तिं च मृत्युतः ॥ ८९ ॥
भाग्यं धर्मं तीर्थयात्रादिकं धर्माद् विचिन्तयेत्।
राज्यं प्रवासं पितरं मानं दशमभावतः ॥ ९० ॥

लाभं पशुसमृद्धिं च नानावस्तुभवं भवात्।
व्ययाद् द्रव्यव्ययं चापि शारीरं च विचारयेत् ॥ ९१ ॥

सुधा—तनुभाव से शरीर, शारीरिक रूप-वर्णादि तथा स्वभाव का विचार करना चाहिए। धनभाव से धन-धान्य, कुटुम्ब, रत्न आदि का; तृतीय भाव से भृत्य, भाई, बहन, पराक्रम, माता-पिता के नौकर का विचार करें। चतुर्थ भाव से मित्र, वाहन, घर, बगीचा एवं मातृ-सौख्य का विचार करना चाहिए। पञ्चम भाव से सन्तान, बुद्धिवैशद्य तथा विद्या का विचार; षष्ठ भाव से रोग, व्रण आदि, मामा तथा शत्रु का विचार; सप्तम भाव से पत्नी, मृत्यु, वाणिज्य का विचार किया जाता है। अष्टम भाव से आयु का, गुदा में अङ्कुर, बवासीर आदि का तथा पूर्वजन्मज वृत्तान्त का विचार करना चाहिए। नवम भाव से भाग्य, धर्म, तीर्थयात्रा आदि का; दशम भाव से राज्य, प्रवास, पिता, सम्मान आदि का; आयभाव से लाभालाभ, पशुसमृद्धि का तथा व्यय भाव से द्रव्य-व्यय एवं शारीर व्यय का विचार करना चाहिए।

अथ भावफलानां सदसत्त्वम्

भावो निजाधिपैः सौम्यग्रहैर्वा संयुतेक्षितः।
पापदृग्योगरहितो युवा भावाधिपो यदि ॥ ९२ ॥
केन्द्रत्रिकोणगस्तर्हि भावजं फलमुत्तमम्।
भावेशस्त्रिकगो वापि त्रिकेशैश्च समन्वितः ॥ ९३ ॥
पापैर्युक्तोऽथवा दृष्टः शुभदृग्युतिवर्जितः।
सुप्तोऽथवा मृतो भावपतिः स्थविरतां गतः ॥ ९४ ॥
भावं न वीक्षते तर्हि नष्टं भावफलं वदेत्।

सुधा—कोई भी भाव अपने स्वामी या शुभग्रहों से युत-दृष्ट हों, पापग्रहों के योग या दृष्टि से रहित हो, भावेश युवा हो तथा वे केन्द्र या त्रिकोणगत हों तो उस भाव का फल उत्तम होता है। यदि भावेश लग्न से ६।८।१२ स्थानों (त्रिक) में हों या त्रिकेश से युत हों, पापग्रहों से युत या दृष्ट हों तथा शुभग्रहों के योग या दृष्टि से रहित हों, भावेश सुप्तावस्था, वृद्धावस्था या मृतावस्थागत हों; साथ ही भाव पर भावेश की दृष्टि भी न हो तो भावफल विनष्ट ही समझें।

भावेशानां (ग्रहाणां) बालाद्यवस्थाः

रसांशैरसभे बालः कुमारस्तरुणस्तथा ॥ ९५ ॥
वृद्धो मृतः क्रमाद् ज्ञेयः समर्क्षे तु विलोमतः।

सुधा— विषम राशियों में छः-छः अंशों से भावेशों (ग्रहों) की बाल, कुमार, तरुण, वृद्ध तथा मृत—ये पाँच अवस्थाएँ होती हैं। अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुम्भ में छः-छः अंशों से उपर्युक्त पाँचों अवस्थाएँ होती हैं।

सम (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन) राशियों में उपर्युक्त छः-छः अंशों से ही मृत, वृद्ध, तरुण, कुमार तथा बाल अवस्थाएँ होती हैं।

सूतिकाप्रकरणम्

यन्त्रैः स्फुटतरं जन्मकालं तत्कालसम्भवम् ।। ९६ ।।
लग्नं विज्ञाय जन्माङ्गचक्रं विरचयेत् सुधीः ।
लग्नद्वादशभावेषु स्थापनीयाः स्फुटा ग्रहाः ।। ९७ ।।
तत्र नीचगताः सौम्या ग्रहदृष्टिविवर्जिताः ।
लग्नगः शीतगुस्तर्हि पथि जन्म विनिर्दिशेत् ।। ९८ ।।
भौमदृष्टो रविस्तुङ्गस्वक्षेत्रादिषु संस्थितः ।
प्रबलस्तर्हि विज्ञेयं सप्रकाशं जनुर्गृहम् ।। ९९ ।।
जलभांशगतश्चन्द्रस्तुर्यगो मन्दवीक्षितः ।
युक्तोऽथवा जनुस्तर्हि तमोमयगृहं वदेत् ।। १०० ।।
सूतीगृहे तु जन्माङ्गचक्ररूपे रवेर्दिशि ।
वदेत् प्रदीपं, तनुतो वर्त्ति तैलं च चन्द्रतः ।। १०१ ।।

सुधा—घटयादि यन्त्रों से जन्मसमय तात्कालिक लग्न जानकर जन्माङ्गचक्र की रचना करें। लग्नादि बारहों भावों में स्फुट ग्रहों की स्थापना भी करनी चाहिए। जन्माङ्गचक्र में शुभग्रह नीच राशिगत हों, उन पर किसी ग्रह की दृष्टि न हो, चन्द्रमा लग्नस्थ हों तो मार्ग में जातक का जन्म कहना चाहिए।

उच्चस्थ रवि अपने क्षेत्र या मूलत्रिकोणगत होकर भौमदृष्ट हों तो वे प्रबल समझे जाते हैं। ऐसी स्थिति में सूतिकागृह सप्रकाश रहता है। जलचर राशि अथवा उसके नवांश स्थित चन्द्रमा चौथे स्थान में हों, साथ ही उन पर शनि का योग अथवा दृष्टि रहे तो सूतीगृह को तमोमय समझना चाहिए। जन्माङ्गचक्र रूप सूतिकागृह में सूर्य की दिशा में दीप, चर-स्थिर-द्विस्वभाव लग्नानुसार दीप की चल, स्थिर या द्विस्वभाव स्थिति कहनी चाहिए। लग्न से बाती तथा चन्द्रमा से तैल का ज्ञान करना चाहिए। अर्थात् लग्न की आरम्भिक, मध्य या अन्तिम अवस्थानुसार बत्ती का भी स्वरूप समझना चाहिए। इसी तरह चन्द्रमा पर से तैल का भी परिज्ञान करें।

तात्पर्य यह है कि लग्न के आरम्भ में ही यदि जन्म हुआ हो तो जन्मकाल के आसन्न में ही बत्ती दी गई हो ऐसा समझना चाहिए। लग्नान्त में जन्म होने पर बत्ती की भी अन्तिम अवस्था और लग्न के मध्य में जन्म होने पर बत्ती की स्थिति आनुपातिक रूप में समझें।

चन्द्रमा से तैलज्ञान का तात्पर्य है—चन्द्रमा पूर्णबली रहे तो दीपक में पूर्ण तैल, मध्यबली होने पर दीपक में आधा तैल और क्षीणबली रहने पर तैलाल्पता समझें।

अथ सूतीगृहे द्वारोपसूतिकाज्ञानम्

द्वारं सूतीगृहे केन्द्रगतग्रहदिशि स्मृतम् ।
बहवः केन्द्रगाश्चेत्तत्प्रबलग्रहदिग्भवाः ।। १०२ ।।

लग्नर्क्षवशतो वापि दिगीशक्रमतो भवेत् ॥ १०३ ॥
लग्नचन्द्रान्तरगतग्रहैः स्युरुपसूतिकाः ।
दृश्यार्धगैर्बहिस्थास्ता अन्तःस्थास्ता अदृश्यगैः ॥ १०४ ॥

सुधा—केन्द्रगत ग्रह की दिशा में सूतिकागृह का द्वार कहना चाहिए। अनेक केन्द्रगत ग्रह हों तो प्रबल केन्द्रगत ग्रह की दिशा में द्वार का निर्देश करें। अथवा लग्नराशि की दिशा में द्वार कहें। केन्द्रगत ग्रह के अभाव में लग्नराशि की दिशा में ही द्वार कहना चाहिए। ग्रहों का दिग्ज्ञान—'प्राच्यादीशाः रविसितकुजराहु-यमेन्दुसौम्यवाक्पतयः' से करना चाहिए।

वराहमिहिर ने भी—'द्वारं तु तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैः ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्यसमन्वितैर्वा' द्वारा उपर्युक्त बातें कही हैं।

लग्न और चन्द्रमा के बीच के ग्रहों के द्वारा उपसूतिका का ज्ञान करना चाहिए। सूतिका-घर के बाहर दृश्यचक्रार्धस्थ ग्रहसंख्यक उपसूतिकाएँ और अदृश्यचक्रार्धस्थ ग्रहों के समान सूतिकागृह के भीतर उपसूतिकाएँ होती हैं।

दृश्यचक्रार्ध से तात्पर्य है—सप्तम भाव के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश तक। अदृश्यचक्रार्ध से तात्पर्य है—लग्न के भोग्यांश से सप्तम के भुक्तांश तक।

वराहमिहिर ने भी कहा है—

'चन्द्रलग्नान्तरगतग्रहैः स्युरुपसूतिकाः ।
बहिरन्तश्च चक्रार्धे दृश्याऽदृश्येऽन्यथा परे' ॥

किसी-किसी आचार्य ने दृश्याऽदृश्यचक्रार्ध का तात्पर्य उपरिलिखित से ठीक विपरीत कहा है।

वस्तुतः सप्तम के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश तक का प्रदेश चूंकि क्षितिज से उपरितन है अतः इसे ही चक्रार्ध कहना उपयुक्त है।

अथ बालारिष्टविचारः

बालारिष्टं च तद्भङ्गः विचार्यैव फलं दिशेत् ।
यावद् द्वादशवर्षाणि बालारिष्टमतः शिशोः ॥ १०५ ॥
शिशोर्द्वादशवर्षाणि यावदायुर्न चिन्तयेत् ।

सुधा—नवजात शिशु का बालारिष्ट तथा अरिष्टभङ्ग के विचार करने के बाद ही फलादेश करना चाहिए। चूंकि जन्म से बारह वर्ष तक बालारिष्ट का समय रहता है अतः इस बीच आयुर्विचार नहीं करना उपयुक्त है।

अथ बालारिष्टयोगाः

त्रिकेशश्चन्द्रमाः पापैर्ग्रहैर्युक्तोऽथवेक्षितः ॥ १०६ ॥
सद्यो मृत्युकरः सौम्यग्रहैर्दृष्टोऽष्टवत्सरैः ।
सौम्याश्चेद् वक्रिणः पापैर्वीक्षिता मृत्युकारकाः ॥ १०७ ॥

शुभदृग्रहितं तत्र लग्नं चेन्मासतो मृतिः ।
लग्नगो यदि माहेयः पापैर्युक्तोऽथवेक्षितः ।। १०८ ।।
शुभदृष्टिविहीनो वाऽष्टमस्थोऽर्केण वार्किणा ।
युक्तो मृत्युप्रदस्तर्हि सौम्याश्चेन्नहि रक्षिणः ।। १०९ ।।

सुधा—त्रिकेश चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों तो सद्यः मृत्युकारक हैं। वही चन्द्र शुभग्रहों से दृष्ट हों तो आठ वर्षों में मृत्यु कहना चाहिए ।

पापदृष्ट वक्री शुभग्रह मृत्युप्रद हैं। वही यदि शुभग्रह की दृष्टि न हों तो मास के भीतर ही मृत्यु कहना चाहिए ।

लग्नस्थ मंगल पापयुक्त या पापदृष्ट हों, लग्न पर शुभग्रह का योग या दृष्टि नहीं रहे तो भी मृत्यु कहना चाहिए । अथवा अष्टमस्थ मंगल सूर्य या शनि से युक्त या दृष्ट हो तो भी मृत्यु कहना चाहिए । परञ्च शुभग्रह की दृष्टि या युति रहने पर मृत्यु नहीं होती है ।

षष्ठस्थे शीतगौ कर्मस्थानगे तु शनैश्चरे ।
सप्तमस्थे तु माहेये मात्रा सह शिशोर्मृतिः ।। ११० ।।
लग्ने शनौ निधनगे शीतगौ सहजे गुरौ ।
जातको मृत्युमाप्नोति रिष्टभङ्गकरा न चेत् ।। १११ ।।
यत्र यत्र स्थितौ भौमशनी एकांशसंस्थितौ ।
चन्द्रात्केन्द्रस्थितौ वा तौ तदा बालो न जीवति ।। ११२ ।।
लग्नेऽर्के नवमस्थे वा सप्तमस्थे शनैश्चरे ।
गुरौ शुक्रे च लाभस्थे मासमेकं स जीवति ।। ११३ ।।

सुधा—चन्द्रमा छठे स्थान में, शनि दशम में, मंगल सप्तम में हों तो माता के साथ ही शिशु की मृत्यु हो जाती है ।

लग्न में शनि, अष्टम में चन्द्रमा तथा तीसरे में गुरु रहें तो भी मृत्यु हो जाती है, यदि अरिष्टभङ्गकारक ग्रह नहीं रहें ।

जहाँ कहीं भी स्थित शनि-मंगल एक ही अंश में हों या चन्द्रमा से केन्द्र (१।४। ७।१०)स्थ वे हों तो भी जातक की मृत्यु हो जाती है ।

लग्न या नवम में सूर्य, सप्तम में शनि तथा लाभस्थ गुरु एवं शुक्र हों तो मासाभ्यन्तर में ही जातक की मृत्यु हो जाती है ।

सर्वे व्ययस्थिता नेष्टा राहुशुक्रेन्दुभास्कराः ।
विशेषाज्जातकारिष्टकरा भङ्गकरा दृशा ।। ११४ ।।
स पापेन्दुर्द्यूनभाग्यलग्नपञ्चमरिष्फगः ।
शुभदृग्युतिहीनश्चेज्जातकस्य मृतिप्रदः ।। ११५ ।।
सन्ध्यायां चन्द्रहोरायां गण्डान्ते वा जनुर्यदि ।
प्रत्येकं चन्द्रपापाश्चेत् केन्द्रगा मृत्युकारकाः ।। ११६ ।।

चक्रपूर्वापरार्धेषु पापसौम्येषु कर्कभे ।
लग्नगे नियतं याति जातको यममन्दिरम् ॥ ११७ ॥
पापैः षष्ठाष्टमद्रव्यव्ययगैः पापमध्यगे ।
तनौ मृत्युवशं याति जातको नात्र संशयः ॥ ११८ ॥

सुधा—व्ययस्थ सभी ग्रह अनिष्टकारक होते हैं । राहु, शुक्र, चन्द्रमा तथा सूर्य विशेषरूप से अरिष्टकर हैं । साथ ही इन ग्रहों की दृष्टि यदि बारहवें भाव पर रहे तो अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं ।

सपाप चन्द्र सप्तम, नवम, लग्न पञ्चम या द्वादशस्थ हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि या योग नहीं रहे तो जातक की मृत्यु हो जाती है ।

सन्ध्या, चन्द्रहोरा या गण्डान्त में यदि जातक का जन्म हो, प्रत्येक स्थिति में चन्द्रमा तथा पापग्रह केन्द्रस्थ हो तो भी जातक की मृत्यु हो जाती है ।

सूर्योदय या सूर्यास्त से क्रमशः ३ घटी पूर्व तथा पश्चात् सन्ध्या कही जाती है । अर्थात् सूर्योदय से ३ घटी पूर्व प्रातःसन्ध्या तथा सूर्यास्त से तीन घटी पश्चात् सायं सन्ध्या होती है । जैसा कि रामाचार्य ने भी 'सन्ध्या त्रिनाडी प्रमितार्कबिम्बात्' आदि पद्य में कहा है ।

गण्डान्त से त्रिविध गण्डान्त—लग्नगण्डान्त, तिथिगण्डान्त तथा नक्षत्रगण्डान्त समझना चाहिए ।

(१) कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु, मीन-मेष लग्नों के बीच एक-एक घटी लग्न-गण्डान्त होता है । जैसा कि काश्यप ने कहा है—

सिंहकर्कटयोश्चापकीटयो मीनमेषयोः ।
गण्डान्तमन्तरालं तु नाडिका निधनप्रदा' ॥

(२) तिथिगण्डान्त—पूर्णा तथा नन्दा तिथियों के मध्यवर्ती घटिकाद्वय तिथि-गण्डान्त होता है । जैसा कि नारद ने कहा है—

'पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीद्वयं सदा ।
गण्डान्तं मृत्युदं जन्म यात्रोद्वाहव्रतादिषु' ॥

(३) नक्षत्रगण्डान्त—ज्येष्ठा, रेवती एवं आश्लेषा नक्षत्रों की अन्तिम दो घटिकाएँ तथा मूल, अश्विनी एवं मघा नक्षत्रों की आदिम दो घटिकाएँ अर्थात् ज्येष्ठा-मूल की सन्धिस्थ चार घटिकाएँ, रेवती-अश्विनी की सन्धिस्थ चार घटिकाएँ एवं आश्लेषा-मघा की सन्धिस्थ चार घटिकाएँ नक्षत्रगण्डान्त हैं ।

चक्र के पूर्वार्ध में पापग्रह और चक्र के उत्तरार्ध में शुभग्रह हों तथा कर्कलग्न रहे तो भी जातक की मृत्यु कहना चाहिए ।

पापग्रह षष्ठ, अष्टम, द्वितीय या द्वादश स्थानगत हों तथा लग्न भी दो पापों के बीच में पड़े तो भी जातक की मृत्यु हो जाती है ।

क्षीणेन्दौ लग्नगे पापा यदि केन्द्राष्टमस्थिताः ।
तदापि निधनं याति शिशुर्नात्र विचारणा ॥ ११९ ॥

पापमध्यगतश्चन्द्रो लग्नाष्टान्त्यकलत्रगः ।
अचिरान्मृत्युमाप्नोति शुभैश्चेन्न युतेक्षितः ।। १२० ।।
पापद्वयान्तबालस्थे शीतगौ लग्नमाश्रिते ।
सप्तमाष्टमगे पापे नश्येन्मात्रा सहार्भकः ।। १२१ ।।
भौमार्कशनयो धर्मरिष्फाष्टमगताः शुभैः ।
अदृष्टा निधनं याति जातको नात्र संशयः ।। १२२ ।।

सुधा—क्षीणचन्द्र लग्नगत हों, पापग्रह केन्द्र या अष्टम में स्थित हों तो जातक की मृत्यु कहना चाहिए ।

पापग्रहद्वयमध्यवर्त्ती चन्द्र यदि लग्न अष्टम, द्वादश या सप्तम में स्थित हों तो शीघ्र ही जातक की मृत्यु हो जाती है ।

पापद्वयमध्यवर्त्ती चन्द्र लग्नगत हों, सप्तम तथा अष्टम भी पापयुक्त हों तो माता के साथ बच्चे की मृत्यु कहना चाहिए ।

मंगल, रवि या शनि नवम, द्वादश या अष्टमस्थ हों और शुभग्रहों से वे अदृष्ट हों तो भी जातक की मृत्यु हो जाती है ।

पितृमातृकष्टविचारः

क्षीणेन्दुर्जन्मकाले चेत् पापखेटत्रयान्वितः ।
दृष्टो वा जातकर्स्तर्हि मातृहीनः प्रजायते ।। १२३ ।।
राहुज्ञसितमन्दार्का धने जन्मनि संस्थिताः ।
जन्मभे स्वर्गते तस्य माताऽपि नहि जीवति ।। १२४ ।।
उच्चे नीचेऽथवार्कश्चेत् जन्मकाले कलत्रगः ।
तदा मातृविहीनोऽसावजाक्षीरेण जीवति ।। १२५ ।।
चन्द्रात्तुर्यगते पापे शत्रुक्षेत्रगते सति ।
केन्द्रे शुभविहीने च मातृनाशो भवेद् ध्रुवम् ।। १२६ ।।
षष्ठे च द्वादशे भावे पापे मातुर्भयं दिशेत् ।
चतुर्थे दशमे चैवं पितृकष्टं प्रजायते ।। १२७ ।।
लग्ने व्यये धने चापि सप्तमे पापसंयुते ।
मातापित्रोस्तथान्यान्यपरिवारभयं दिशेत् ।। १२८ ।।
लग्ने जीवे धने मन्दे राहौ च सहजस्थिते ।
जन्मकाले यदि भवेत्तदा मातृभयं दिशेत् ।। १२९ ।।
क्षीणेन्दौ नवमे वाऽथ पञ्चमे पापसंयुते ।
शुभग्रहविहीने च माता बालं परित्यजेत् ।। १३० ।।

सुधा—जन्म के समय क्षीणेन्दु तीन पापग्रहों से युत या दृष्ट हों तो जातक मातृहीन हो जाता है । राहु, बुध, शुक्र तथा सूर्य यदि जन्म के समय धनभावस्थ हों तो

पितृमृत्यु के बाद माता का भी विनाश हो जाता है अर्थात् जातक मातृ-पितृविहीन हो जाता है।

उच्च या नीचस्थ सूर्य जन्म के समय सप्तमस्थ हों तो मातृविहीन शिशु बकरी के दूध से जीवित रहता है।

चन्द्रमा से चतुर्थस्थ पापग्रह शत्रुक्षेत्रगत हों और कोई भी शुभग्रह केन्द्रगत नहीं रहे तो भी माता की मृत्यु हो जाती है।

छठे या द्वादश स्थान में पापग्रह हों तो मातृकष्ट और चतुर्थ या दशम में पापग्रह हों तो पितृकष्ट कहना चाहिए।

लग्न द्वितीय, द्वादश तथा सप्तम में पापग्रह हों तो माता, पिता या अन्य पारिवारिक व्यक्ति के लिए कष्टकारक होते हैं।

लग्न में गुरु, दूसरे में शनि और तीसरे में राहु रहें तो मातृभय समझना चाहिए।

क्षीणचन्द्र नवम या पञ्चम में पापग्रह युक्त हों और शुभग्रह की उस पर दृष्टि नहीं रहे तो माता बच्चे को त्याग देती है।

लग्ने मन्दे धने भौमे षष्ठे शशिनि संस्थिते।
जन्मकाले यदि तदा पितृहीनोऽर्भको भवेत्॥ १३१॥
पापान्वितो रविः पापद्वयमध्यगतोऽपि वा।
सूर्यात् सप्तमगः पापस्तदा पितृवधं दिशेत्॥ १३२॥
राहौ सप्तमगे भूमिनन्दने कर्मजे तथा।
राहौ व्ययगते विद्यात् पितृकष्टं विशेषतः॥ १३३॥
दशमस्थे तु माहेये शत्रुक्षेत्रसमाश्रिते।
पितृकष्टं मृतिं वापि पितुर्विद्यादसंशयम्॥ १३४॥
चन्द्रे षष्ठगते मन्दे लग्नगेऽपि च सप्तमे।
माहेये जन्मकाले चेत् पिता तस्य न जीवति॥ १३५॥

सुधा—लग्न में शनि, दूसरे में मंगल और छठे में चन्द्रमा जन्मकाल में स्थित हो तो जातक पितृहीन हो जाता है।

सूर्य पापग्रहयुक्त या पापद्वयमध्यगत हों और सूर्य से सप्तम में भी पापग्रह हों तो भी जातक पितृहीन हो जाता है।

रवि सप्तम, मंगल दशम और राहु व्ययगत हों तो पितृकष्ट समझना चाहिए।

दशमस्थ मंगल शत्रुक्षेत्रगत हों तो पितृकष्ट या पिता की मृत्यु हो जाती है।

जन्म के समय सप्तमस्थ चन्द्रमा, लग्नस्थ शनि और सप्तमस्थ मंगल हो तो जातक के पिता दिवङ्गत हो जाते हैं।

भानौ भौमनवांशस्थे शनिना तु विलोकिते।
प्राग्जन्मनो गृहत्यागी मृतो वा जायते पिता॥ १३६॥

चतुर्थे दशमे वापि द्वादशे पापयुग्मके ।
पित्रोर्नाशे जातकस्तु देशाद्देशान्तरं व्रजेत् ।। १३७ ।।
षष्ठे लग्ने चतुर्थे वा राहुजीवौ व्यवस्थितौ ।
त्रयोविंशे तदा वर्षे पितृहीनः शिशुर्भवेत् ।। १३८ ।।
पापमध्यगते भानौ पापदृष्टियुतेऽथवा ।
सूर्यात् षष्ठाष्टमर्क्षस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः ।। १३९ ।।
चतुर्थस्थानगैर्वापि पितृकष्टं विनिर्दिशेत् ।
चन्द्रादेवं स्थितैः पापैः मातृकष्टं विचिन्तयेत् ।। १४० ।।

सुधा—मंगल के नवांश में स्थित सूर्य शनि से दृष्ट हों तो जातक के जन्म से पहले ही उसके पिता गृहत्यागी या दिवङ्गत हो जाते हैं ।

जन्मलग्न से चौथे, दशवें या बारहवें स्थान में दो पापग्रह हों तो माता-पिता की मृत्यु के बाद जातक देश-देशान्तर में भटकने वाला होता है ।

जन्म के समय राहु तथा गुरु छठे, चौथे या लग्न में हों तो तेइसवें वर्ष में जातक पितृहीन हो जाता है ।

जन्म के समय पापद्वयमध्यगत होकर सूर्य पापयुक्त या पापदृष्ट हों या सूर्य से छठे, आठवें या चौथे में स्थित पापग्रह शुभग्रहरहित हों तो पितृकष्ट कहना चाहिए ।

चन्द्रमा से इसी तरह स्थित पापग्रहों से मातृकष्ट का निर्देश करना चाहिए ।

इस तरह बालारिष्ट मातृ-पितृराहित्य या मातृ-पितृकष्ट का विचार करना चाहिए ।

अरिष्टभङ्गविचारः

बुधजीवभृगूणां चेदेकोऽपि प्रबलो ग्रहः ।
केन्द्रगो निखिलं तर्हि रिष्टजातं विनश्यति ।। १४१ ।।
जीवो लग्नगतो दीप्तिमानतिप्रबलो यदि ।
अरिष्टं निखिलं हन्ति प्रणाम इव शूलिनः ।। १४२ ।।
त्रिषडैकादशगतो राहुर्भौमस्तथा शनिः ।
अरिष्टं निखिलं जन्मजातं नाशयति ध्रुवम् ।। १४३ ।।
बली केन्द्राधिपः केन्द्रगतोऽरिष्टं विनाशयेत् ।
शुक्ले रात्रिगते लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ।। १४४ ।।
कृष्णे दिवागते तत्र पापग्रहविलोकिते ।
अरिष्टं निखिलं नश्येदुभयोर्योगयोर्ध्रुवम् ।। १४५ ।।
लग्नाच्चतुर्थगे पापे गुरौ केन्द्रत्रिकोणगे ।
दीर्घायुर्जातकः स्वस्थो नष्टारिष्टः प्रजायते ।। १४६ ।।
भौमो हि गुरुणा युक्तो दृष्टो वाऽरिष्टनाशकः ।

शुभमध्यगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥ १४७ ॥
अरिष्टं सकलं नश्येदित्यत्र नहि संशयः ।

सुधा—बुध, गुरु या शुक्र इनमें एक भी ग्रह प्रबल हों तो सभी अरिष्ट विनष्ट हो जाते हैं ।

एक भी दीप्तिमान् प्रबल गुरु यदि लग्नस्थित हों तो शङ्करजी के प्रणाम के द्वारा पाप की तरह सभी अरिष्ट विनष्ट हो जाते हैं ।

तीसरे, छठे, ग्यारहवें में स्थित राहु, मंगल या शनि समस्त जन्मजात अरिष्ट को विनष्ट कर देते हैं ।

बली केन्द्रेश केन्द्रगत हों तो भी सभी अरिष्ट विनष्ट हो जाते हैं ।

शुक्लपक्ष में रात्रिगत लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि और कृष्णपक्ष में दिनगत लग्न पर पापग्रह की दृष्टि यदि रहे तो दोनों स्थितियों में सभी अरिष्ट विनष्ट हो जाते हैं ।

लग्न से चतुर्थस्थ पापग्रह हों और केन्द्रस्थ गुरु हों तो दीर्घायु जातक स्वस्थ तथा नष्टारिष्ट होता है ।

गुरुयुक्त या गुरुदृष्ट मंगल भी अरिष्टनाशक होते हैं ।

पापग्रह शुभग्रहों के बीच में स्थित हों और शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तो भी सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं ।

स्थानवशेन भावेशानां फलानि

लग्नेशे लग्नगे देहसौख्यवानतिविक्रमी ॥ १४८ ॥
धनगे गुणवान् जातः सुखी लाभयुतोऽनिशम् ।
लग्नेशे सहजस्थे तु मृगेन्द्रसमविक्रमः ॥ १४९ ॥
तुर्यगे गुणसौन्दर्यमातृभ्रातृसुखान्वितः ।
सुतगे प्रथमापत्यनाशवान् राजवल्लभः ॥ १५० ॥
क्रोधी मानी तीव्रबुद्धिर्जायते तनुपे जनः ।
षष्ठगे शत्रुपीडा च कष्टं शारीरिकं तथा ॥ १५१ ॥
लग्नेशे सप्तमस्थे तु स्वल्पं पत्नीसुखं भवेत् ।
परस्त्रीद्यूतसंसक्तः क्रोधी चौरोऽपि मृत्युगे ॥ १५२ ॥
भाग्यस्थे भाग्यवान् विष्णुभक्तो वाग्मी जनप्रियः ।
राज्यस्थे तनुपे राजपूज्यस्तातसुखाऽन्वितः ॥ १५३ ॥
लाभस्थे गुणशीलाढ्यो बहुभार्योऽतिलाभयुक् ।
व्ययस्थे व्ययवान् क्रोधी तनुसौख्यसमुज्झितः ॥ १५४ ॥

सुधा—लग्नेश लग्नस्थ हों तो जातक शारीरिक सौख्ययुक्त एवं पराक्रमी होता है । लग्नेश धनस्थ हों तो जातक गुणी, सुखी तथा सतत लाभान्वित होता है । सहजस्थ लग्नेश जातक को सिंह सदृश पराक्रमयुक्त बनाता है ।

लग्नेश चतुर्थस्थ हों तो जातक गुणी, सुन्दर तथा मातृ-भ्रातृसौख्ययुक्त होता है।

पञ्चमस्थ लग्नेश हों तो जातक राजप्रिय, क्रोधी, तीव्रबुद्धि तथा मानी होता है। उसकी प्रथम सन्तान नष्ट हो जाती है।

लग्नेश षष्ठस्थ हों तो जातक को शत्रुपीड़ा तथा शारीरिक कष्ट होता है।

सप्तमस्थ लग्नेश के रहने से स्त्रीसुख थोड़ा होता है।

लग्नेश अष्टमस्थ हों तो जातक जूआ, परस्त्रीसंसक्त, क्रोधी तथा चोर भी होता है।

नवमस्थ लग्नेश रहें तो जातक भाग्यवान्, विष्णुभक्त, वाग्मी तथा जनप्रिय होता है।

दशमस्थ लग्नेश हों तो जातक राजपूज्य एवं पितृसौख्यपूर्ण होता है।

लग्नभवनस्थ लग्नेश के रहने पर मनुष्य गुणी, सुशील, अनेक स्त्रीयुक्त तथा पूर्ण लाभान्वित होता है।

व्ययस्थ लग्नेश हों तो जातक व्ययशील, क्रोधी तथा शारीरिक सौख्यहीन होता है।

अथ स्थानवशेन धनभावेशफलानि

परकार्यरतो नित्यं धनी कामी च निष्ठुरः।
धनेशे लग्नगे जातो जायते सुतवानपि ॥ १५५ ॥
धनगे निःसुतो गर्वी धनी दारद्वयान्वितः।
सहजस्थे गुणी लुब्धो विक्रमी कामुको नरः ॥ १५६ ॥
तुर्यगे सर्वसम्पद्भिर्युतो राजनिभो गुरौ।
मृगौ वा संयुते तुङ्गगते वा धनपे नरः ॥ १५७ ॥
सुतस्थे धनवान् पुत्रैर्धनोपार्जनतत्परैः।
युतः, षष्ठगते शत्रोर्धनाप्तिः सशुभे तथा ॥ १५८ ॥
सपापे धनविध्वंसो गुदे चोर्वोस्तु रोगयुक्।
धनेशे सप्तमे पापयुक्ते दृष्टे च वैद्यराट् ॥ १५९ ॥
परस्त्रीनिरतस्तस्य भार्या च व्यभिचारिणी।
मृत्युगे स्त्रीसुखं चाल्पं भूमिद्रव्ययुतो नरः ॥ १६० ॥
भाग्यस्थे धनवान् रुग्णो बाल्ये पश्चात् सुखी भवेत्।
धनेशे दशमस्थे तु कामी मानी च निःसुतः ॥ १६१ ॥
बहुदारधनैर्युक्तो लाभगे लाभयुक् सदा।
धनेशे व्ययगे जातो मानी साहससंयुतः ॥ १६२ ॥
पराश्रयो भवेत्तस्य ज्येष्ठापत्यसुखं नहि।

सुधा—धनेश लग्नस्थ हों तो मनुष्य कामी, मानी, निष्ठुर, पुत्रवान् तथा सतत परकार्यसंलग्न होता है।

धनेश धनभावगत हों तो मनुष्य अहङ्कारी, धनी, पत्नीद्वययुक्त तथापि पुत्रहीन होता है।

सहज स्थित धनेश में जातक गुणी, पराक्रमी, लोभी तथा कामुक होता है।

तुर्यस्थ धनेश यदि गुरु या शुक्र या उच्चस्थ कोई भी ग्रह हों तो मनुष्य सर्वसम्पद्युक्त राजसदृश होता है।

पञ्चमभावस्थ धनेश धनोपार्जनकारी पुत्रों से युक्त मनुष्य को धनी बनाता है।

षष्ठभावस्थ धनेश यदि शुभग्रहयुक्त हों तो शत्रु से धनप्राप्ति, पापयुक्त हों तो मनुष्य धनक्षय तथा गुदा एवं उरूद्वय में रोगयुक्त होता है।

सप्तमभावस्थ धनेश पापयुक्त या पापदृष्ट होने पर जातक को वैद्यराट् बनाता है। वह परस्त्रीसंसक्त खुद रहे तथा उसकी स्त्री भी व्यभिचारिणी होती है।

अष्टमस्थ धनेश के रहने पर मनुष्य को भूमिद्रव्यादियुक्त होने पर भी पत्नीसुख अल्प होता है।

नवमभाव(भाग्य)स्थ धनेश के रहने पर मनुष्य धनवान्, बाल्यावस्था में रुग्ण किन्तु बाद में पूर्ण स्वस्थ तथा सुखी होता है।

दशमस्थ धनेश के रहने पर मनुष्य बहुस्त्रीधनादि से परिपूर्ण, कामी, मानी एवं पुत्रहीन होता है।

लाभगत धनेश के रहने से मनुष्य लाभयुक्त होता है।

व्ययस्थ धनेश के रहने पर मनुष्य मानी, साहसी, पराश्रयवान् तथा प्रथम सन्तानसुख से वञ्चित होता है।

अथ स्थानवशेन तृतीयभावेशफलानि

लग्नगे सहजेशे तु पुरुषार्थपरो धनी ॥ १६३ ॥
साहसी धनवान् किन्त्वविद्यो जायते नरः।
धनगे सहजेशे तु परदारार्थलोलुपः ॥ १६४ ॥
निर्विक्रमो न सुखभाक् स्वल्पारम्भो भवेन्नरः।
सहजेशे सहजगे धनपुत्रान्वितो नरः ॥ १६५ ॥
सुखगे तु सुखी क्रूरभार्यायुक्तो धनान्वितः।
सुतगे सहजेशे तु गुणी पुत्रान्वितो जनः ॥ १६६ ॥
रिपुगे सहजेशे तु भ्रातृशत्रुर्महाधनी।
सप्तमस्थे तत्र बाल्ये दुःखी पश्चात् सुखी नरः ॥ १६७ ॥
अष्टमस्थे तु चौरः स्यान्नृपात्तन्मृत्युमादिशेत्।
सहजेशे नवमगे पितृसौख्यविवर्जितः ॥ १६८ ॥
पुत्रादिसौख्यसहितः स्त्रीद्वारा भाग्यवान् भवेत्।
कर्मगे सहजेशे तु भुजोपार्जितवित्तवान् ॥ १६९ ॥

लाभगेऽपि फलं तद्वत् मूर्खः सेवारतः कृशः ।
व्ययगे सहजेशे तु दुष्कृतौ व्ययकृज्जनः ॥ १७० ॥

सुधा—लग्नस्थ सहजेश हों तो मनुष्य पुरुषार्थयुक्त, साहसी, धनी, बुद्धिमान् किन्तु विद्याविहीन होता है। धनगत सहजेश में वह परधन तथा परस्त्री के लिए लुब्ध, पराक्रमहीन, सौख्यरहित एवं थोड़े से ही आरम्भ करने वाला होता है। सहजस्थ सहजेश में मनुष्य धनपुत्रार्थसम्पन्न होता है। सुखस्थ सहजेश हों तो धन-सौख्यपरिपूर्ण किन्तु कर्कशा स्त्री वाला वह होता है। पञ्चमस्थ सहजेश हों तो मनुष्य गुणी तथा पुत्रवान् होता है। षष्ठस्थ सहजेश में वह महाधनी किन्तु भाइयों से शत्रुता रखने वाला होता है। सप्तमस्थ सहजेश में मनुष्य बाल्यावस्था में दुःखी किन्तु पश्चात् सुखी होता है। अष्टमस्थ सहजेश हों तो मनुष्य चोर होता है, जिसे राजदण्ड से मृत्यु का आदेश होता है। नवमस्थ सहजेश हों तो मनुष्य पितृसौख्यविहीन, पुत्रादिसौख्यपूर्ण तथा स्त्री द्वारा भाग्ययुक्त होता है। दशमस्थ सहजेश में मनुष्य अपनी भुजाओं के बल से धनोपार्जन करने वाला होता है। एकादशस्थ सहजेश हों तो भी मनुष्य स्वभुजबलोपार्जित धनवान् होता है। साथ ही वह अनपढ़, दासवृत्ति करने वाला तथा दुर्बल होता है। व्ययस्थ सहजेश में मनुष्य दुष्कर्म में व्ययशील होता है।

स्थानवशेन सुखेशफलानि

लग्नगे तुर्यनाथे तु मातृभूवाहनैः सुखी ।
वित्तगे बहुसम्पत्तिशाली मानी च साहसी ॥ १७१ ॥
सहजस्थे तु तुर्येशे गुणी दानी च विक्रमी ।
तुर्यगे शीलवान् मानी मन्त्री सर्वधनाधिपः ॥ १७२ ॥
सुतगे तुर्यनाथे तु विष्णुभक्तो जनप्रियः ।
सुखी मानी च विज्ञेयः स्वभुजार्जितवित्तवान् ॥ १७३ ॥
षष्ठगे व्यभिचारी च चौरः क्रोधी दुरात्मवान् ।
सप्तमस्थे तु तुर्येशे विद्वान् किन्तु सभाजडः ॥ १७४ ॥
अष्टमस्थे नरः पित्रोरल्पसौख्ययुतोऽपि च ।
गेहादिसुखहीनश्च क्लीबो वा जारजो मतः ॥ १७५ ॥
भाग्यगे गुणसम्मानयुक्तोऽनेकसुखान्वितः ।
कर्मगे राजसम्मानयुक्तो हृष्टो यतात्मवान् ॥ १७६ ॥
सुखेशे लाभगे दाता गुणी रुग्ण उदारधीः ।
व्ययगे तुर्यनाथे तु मूर्खो दुर्वासनान्वितः ॥ १७७ ॥
आलसी गृहसौख्यादिविहीनो जायते नरः ।

सुधा—चतुर्थेश यदि लग्नगत हों तो मनुष्य मातृभूवाहनादिसम्पन्न होता है। उसे धनगत होने पर वह सम्पत्तिशाली तथा साहसी होता है। सहजस्थ वह हों तो

मनुष्य गुणी, दानी तथा पराक्रमी होता है। तुर्यस्थ तुर्येश हों तो मनुष्य शीलवान्, मानी, मन्त्री तथा सर्वसम्पत्तिशाली होता है। पञ्चमस्थ तुर्येश हों तो मनुष्य विष्णु-भक्त, जनप्रिय, सुखी, मानी तथा स्वभुजोपार्जित सम्पत्ति वाला होता है। षष्ठस्थ तुर्येश में मनुष्य व्यभिचारी, चोर, क्रोधी तथा दुरात्मा होता है। सप्तमस्थ वह हों तो मनुष्य विद्वान् किन्तु सभाजड़ होता है। अष्टमस्थ सुखेश में मनुष्य माता-पिता से अल्प सुख प्राप्त करने वाला, गृहादिसौख्यविहीन, खुद नपुंसक या जारज होता है। नवमस्थ सहजेश में मनुष्य गुणी, मानी तथा अनेक सौख्यपूर्ण होता है। दशमस्थ सुखेश में मनुष्य राजसम्मानपूर्ण, हृष्ट तथा यतात्मा होता है। लाभस्थ सुखेश में मनुष्य दाता, उदार, गुणी किन्तु रुग्ण होता है। व्ययस्थ सुखेश में मनुष्य मूर्ख, दुर्वासना-ग्रस्त, आलसी तथा गेहादिसौख्यविहीन होता है।

स्थानवशेन पञ्चमेशफलानि

सुतेशे तनुगे विद्वान् कुटिलः कृपणस्तथा ॥ १७८ ॥
पुत्रसौख्यान्वितो जातः परवित्तापहारकः ।
धनगे धनपुत्रादियुतो मानी गुणान्वितः ॥ १७९ ॥
स्त्रीवल्लभोऽति मानी च कुटुम्बपरिपालकः ।
तृतीयस्थे सुतेशे तु मायावी स्वार्थसाधकः ॥ १८० ॥
तुर्यगे श्रीयुतो मातृसौख्ययुक्तः सुबुद्धिमान् ।
सुतगे शुभसंयुक्ते सुतवान् पापसंयुतः ॥ १८१ ॥
सुतहीनो भवेज्जातो गुणी मित्रप्रियोऽपि च ।
सुतेशेऽरिगते पुत्रो मृतो वा दत्तको भवेत् ॥ १८२ ॥
क्रीतोऽथवा भवेत् सोऽपि पित्रा शत्रुत्वमाप्नुयात् ।
सुतेशे सप्तमे जातः सर्वधर्मसमन्वितः ॥ १८३ ॥
सुतसौख्ययुतो नित्यमुपकारपरो भवेत् ।
सुतेशेऽष्टमगे कासश्वासी क्रोधी न सौख्यभाक् ॥ १८४ ॥
नवमे सुतनाथे तु ग्रन्थकृत् ख्यातियुग् जनः ।
पुत्रेशे कर्मभावस्थे नानासौख्यसमन्वितः ॥ १८५ ॥
राजेव शुभ्रयशसा युक्तो जातो न संशयः ।
लाभस्थे चतुरो ग्रन्थनिर्माता धार्मिकः सुधीः ॥ १८६ ॥
व्ययगे पुत्रहीनोऽसौ क्रीतपुत्रो न सौख्यभाक् ।

सुधा—पञ्चमेश लग्नगत हों तो मनुष्य विद्वान्, कुटिल, कृपण, पुत्रादि सौख्य-सम्पन्न तथा परवित्तापहारक होता है। धनभावगत वे हों तो धन-पुत्रादियुक्त, मानी, गुणी, स्त्रीवल्लभ तथा कुटुम्बपोषक होता है। पञ्चमेश तृतीयभावस्थ हों तो मनुष्य मायावी तथा स्वार्थसाधनतत्पर रहता है। चतुर्थभावस्थ होने पर श्रीसम्पन्न,

मातृसुखयुक्त तथा बुद्धिमान् होता है। पञ्चमेश पञ्चमभावगत शुभग्रहयुक्त हों तो पुत्रवान् और वही पापग्रहयुक्त होने पर पुत्रहीन, गुणी तथा मित्रप्रिय होता है। षष्ठभावस्थ पञ्चमेश हों तो मनुष्य पुत्रहीन, दत्तक पुत्र या क्रीत पुत्र वाला वह भी पिता से शत्रुता रखने वाला होता है। सप्तमभावस्थ पञ्चमेश हों तो मनुष्य सर्वधर्मयुक्त, पुत्रसौख्यसम्पन्न तथा सतत परोपकारतत्पर होता है। अष्टमभावस्थ पञ्चमेश हों तो मनुष्य क्रोधी, कासश्वासी तथा सतत कष्टपूर्ण रहता है। नवमभावगत पञ्चमेश मनुष्य को ख्यातियुक्त तथा ग्रन्थनिर्माता बनाता है।

दशमभावस्थ पञ्चमेश हों तो मनुष्य राजा के समान अनेकविध सौख्यसम्पन्न तथा शुभ्र यशोयुक्त होता है। आयभावस्थ वह मनुष्य को चतुर, ग्रन्थ-निर्माता, धनी तथा बुद्धिमान् बनाता है। व्ययभावस्थ पञ्चमेश मनुष्य को पुत्रहीन या क्रीत पुत्र वाला तथा दुःखी बनाता है।

स्थानवशेन षष्ठभावेशफलानि

तनुगे षष्ठभावेशे रोगी मानी गुणान्वितः ॥ १८७ ॥
कीर्त्तिवित्तयुतो जातो ज्ञातिशत्रुश्च जायते।
वित्तगे वंशविख्यातो वक्ता सौख्ययुतो नरः ॥ १८८ ॥
विक्रमस्थे भ्रातृशत्रुः क्रोधी स्याद्धीनविक्रमः।
तुर्यगे पिशुनो द्वेषी चलो मातृसुखोज्झितः ॥ १८९ ॥
षष्ठेशे सुतगे स्वार्थी चलमित्रधनादिकः।
षष्ठेशे षष्ठगे ज्ञातिजनैः शात्रवमीहितम् ॥ १९० ॥
सप्तमेऽरिपतौ जातो जायासौख्यविवर्जितः।
अष्टमे ननु रुग्णः स्यात् परस्त्रीवित्तलाभयुक् ॥ १९१ ॥
नवमेऽरिपतौ काष्ठपाषाणक्रयविक्रयी।
हानिलाभयुतो जातो जायते नात्र संशयः ॥ १९२ ॥
दशमेऽरिपतौ ख्यातो वक्ता पितृविरक्तिमान्।
लाभगे शत्रुतो लाभो धनी मानी गुणी तथा ॥ १९३ ॥
सुतसौख्यविहीनश्च जायते किन्तु साहसी।
व्ययगे व्यसने त्वर्थव्ययी हिंसारतोऽनिशम् ॥ १९४ ॥

सुधा—लग्नगत षष्ठेश हों तो मनुष्य रोगी, मानी, गुणी, धनी तथा यशस्वी होता है, किन्तु अपने सगे-सम्बन्धियों से शत्रुता रखने वाला होता है। द्वितीयभावस्थ षष्ठेश हों तो मनुष्य स्ववंशविख्यात, वक्ता तथा सौख्यपूर्ण होता है। तृतीयभावस्थ षष्ठेश हों तो भाइयों से शत्रुता, क्रोध की अधिकता तथा पराक्रमहीनता होती है। तुर्यभावस्थ षष्ठेश में मनुष्य को पिशुनता, द्वेषबुद्धि, मातृसुखहीनता तथा चंचलता होती है। पञ्चमभावस्थ षष्ठेश हों तो मनुष्य स्वार्थी, चलमित्र तथा चलसम्पत्ति वाला होता है। षष्ठभावस्थ षष्ठेश हों तो मनुष्य को अपने बन्धु-बान्धवों से शत्रुता

रहती है। सप्तमस्थ षष्ठेश हों तो स्त्रीसौख्य का अभाव होता है। अष्टमस्थ षष्ठेश में मनुष्य रुग्ण होता है। वह दूसरी स्त्री द्वारा धनप्राप्ति करने वाला होता है।

नवमस्थ षष्ठेश हों तो मनुष्य लकड़ी तथा पत्थर की खरीद-बिक्री करने वाला, कभी हानि तो कभी लाभ में रहता है। दशमस्थ षष्ठेश हों तो मनुष्य विख्यात वक्ता होता है, किन्तु अपने पिता से अनुरक्त नहीं रहता। आयस्थ षष्ठेश में शत्रु से लाभ, धनसम्मानपरिपूर्ण, गुणी तथा पुत्रसौख्य रहित मनुष्य होता है। व्ययभावस्थ षष्ठेश हों तो जातक व्यसन तथा हिंसा में अनवरत संलग्न रहता है। वह अपव्ययकारी भी होता है।

स्थानवशेन जायेशफलानि

जायेशे लग्नगे जातो लम्पटो वातपीडितः।
दुष्टो धीरो, धनस्थे तु बहुस्त्रीभिः समागमः॥ १९५॥
स्त्रीद्वारा वित्तसंलाभः, सहजस्थे मृतात्मजः।
तुर्यभावगते तत्र जाया नहि पतिव्रता॥ १९६॥
स्वयं दन्तरुजा युक्तो धर्मात्मा सत्यसंयुतः।
सुतगे धनमानाढ्यो नरः सर्वगुणैर्युतः॥ १९७॥
षष्ठगे रोगिणी भार्या विद्वेषो वा तया सह।
सप्तमस्थे तु जायेशे जायासुखयुतो नरः॥ १९८॥
वातार्दितोऽपि विद्यावान् धीरः सद्बुद्धिमानपि।
अष्टमस्थे तु दुःशीला रुग्णा भार्या न सौख्यदा॥ १९९॥
नवमस्थे सदा नाना स्त्रीभिः सङ्गमतः सुखी।
कर्मगे सुतवित्तादियुतो वश्या न तत् प्रिया॥ २००॥
लाभगे सप्तमेशे तु जायातो लाभयुग् नरः।
पुत्रसौख्यमतीवाल्पं कन्या सौख्यमति स्मृतम्॥ २०१॥
व्ययगे ननु जायेशे दरिद्रः कृपणस्तथा।
वस्त्राजीवी स्वयं किन्तु गृहिणी व्यभिचारिणी॥ २०२॥

सुधा—जायेश यदि लग्नगत हों तो मनुष्य लम्पट, वातार्त्त, धीर तथा दुष्ट होता है। धनस्थ जायेश में मनुष्य अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग करने वाला तथा स्त्री द्वारा धनप्राप्ति करने वाला भी होता है। सहजभावगत जायेश हों तो मनुष्य मृतात्मज (जिसका पुत्र मर जाय) होता है। चतुर्थभावस्थ जायेश हों तो उसकी पत्नी पतिव्रता नहीं अपितु चालू होती है। वह दन्तरोग से पीडित धर्मात्मा तथा सत्यशील होता है।

पञ्चमभावस्थ जायेश के होने से मनुष्य धन तथा मान युक्त एवं सर्वगुणसम्पन्न होता है। षष्ठभाव में जायेश हों तो स्त्री रुग्णा अथवा उसके साथ विद्वेष रहा करता

है। सप्तम में सप्तमेश हों तो मनुष्य स्त्री-सुखपरिपूर्ण, वातार्त्त, विद्यावान्, धीर तथा बुद्धिमान् होता है। अष्टमस्थ यदि जायेश हों तो स्त्री दुःशीला, रुग्णा तथा असौख्य-करी होती है। नवमस्थ जायेश रहें तो अनेक स्त्रियों के संगम से मनुष्य सुखानुभव करता है। दशमस्थ जायेश हों तो पत्नी पत्यधीन नहीं रहती किन्तु वह धन-पुत्रादि से परिपूर्ण होता है।

लाभभावस्थ जायेश में मनुष्य स्त्री द्वारा लाभवान् होता है। उसे पुत्रसुख अल्प किन्तु कन्यासुख अधिक होता है। व्ययभावस्थ जायेश के रहने से मनुष्य दरिद्र, कृपण तथा वस्त्रव्यापार से जीविकोपार्जन करने वाला होता है। उसकी पत्नी दुश्शीला होती है।

अथ स्थानवशेनाष्टमेशफलानि

लग्नगेऽष्टमभावेशे देवब्राह्मणनिन्दकः।
व्रणान्वितः सदा शारीरिकसौख्यविवर्जितः॥ २०३॥
धनगेऽष्टमभावेशे जातः स्वल्पधनोऽबलः।
सहजस्थे भ्रातृसौख्यविहीनो दुर्बलोऽलसः॥ २०४॥
सुखगे यानभूगेहसौख्ययुक्तो भयान्वितः।
मित्रद्रोहपरश्चाथ सुतगे मन्दधीर्धनी॥ २०५॥
स्वल्पापत्ययुतो जातो दीर्घायुश्च प्रजायते।
रिपुगे द्विषतां जेता रुग्णो भीरतिवारितः॥ २०६॥
वामगे स्त्रीद्वयोपेतः सपापे धनसङ्क्षयः।
अष्टमस्थेऽष्टमेशे तु दीर्घायुस्तत्र दुर्बलः॥ २०७॥
मध्यायुर्गुरुनिन्दासु चौर्येऽपि निरतो हि सः।
भाग्यगे नास्तिकः पापी परस्त्रीधनलुब्धकः॥ २०८॥
कर्मस्थेऽष्टमभावेशे पितृसौख्यविवर्जितः।
पिशुनो निष्क्रियो जातः सौम्यदृग्युतिवर्जितः॥ २०९॥
लाभस्थे बाल्यकाले तु दुःखी चान्ते सुखी भवेत्।
दरिद्रः पापसंयुक्ते दीर्घायुः सौम्यसंयुते॥ २१०॥
व्ययगे व्ययशीलोऽसौ दुष्कृतौ पापसंयुते।
स्वल्पायुश्च भवेज्जातः ससौम्ये व्ययकृच्छुभे॥ २११॥

सुधा—अष्टमेश लग्नस्थ हों तो जातक देव-ब्राह्मणनिन्दक एवं सदैव शारीरिक सौख्यरहित व्रणयुक्त रहता है। धनभावगत अष्टमेश में मनुष्य स्वल्प वित्त वाला तथा दुर्बल रहता है। सहजस्थ अष्टमस्थ हों तो मनुष्य भ्रातृसौख्यविहीन, दुर्बल तथा आलसी होता है। चतुर्थभावस्थ अष्टमेश हों तो मनुष्य मातृ-भू-गेह-सौख्य युक्त होता है, साथ ही वह मित्रद्रोही तथा बिभीत रहता है। पञ्चमभावस्थ अष्टमेश में जातक

मन्दबुद्धि, धनी, अल्प सन्तति वाला और दीर्घायु होता है। षष्ठभावस्थ अष्टमेश हों तो मनुष्य शत्रुजेता एवं रोगयुक्त होता है, साथ ही उसे सर्प तथा पानी से भय कहना चाहिए। सप्तमभावस्थ अष्टमेश हों तो एकाधिक स्त्री वाला जातक होता है, साथ ही सपाप अष्टमेश सप्तम में रहें तो धनक्षय भी कहना चाहिए। अष्टमस्थ अष्टमेश हों तो जातक दीर्घायु होता है, किन्तु दुर्बल अष्टमेश के रहने पर जातक मध्यायु होता है। साथ ही वह गुरुनिन्दा एवं चौर्यवृत्ति में निपुण रहता है। नवमस्थ अष्टमेश में जातक मनुष्य नास्तिक, पापी, दूसरे की स्त्री एवं परधन में लुब्ध होता है। कर्मस्थ अष्टमेश शुभग्रह की दृष्टि एवं योग से रहित होने पर मनुष्य को पितृसौख्यविहीन, पिशुन तथा निष्क्रिय बनाता है। एकादशभावस्थ अष्टमेश हों तो मनुष्य बचपन में दुःखी किन्तु अन्त में सुखी होता है। व्ययस्थ अष्टमेश सपाप हों तो जातक दुष्कर्म में व्ययशील तथा अल्पायु होता है। वही शुभग्रह युक्त होने पर शुभकार्य में जातक को व्ययकारी बनाता है।

स्थानवशेन नवमेशफलानि

तनुभावगते भाग्याधिपतौ रूपवान् सुधीः।
जनप्रियो जनाधीशपूज्यः सौभाग्यवान्नरः॥ २१२॥
वित्तगे धनपुत्रादियुक्तः कामी सुधीर्जनः।
सहजस्थेऽर्थसौन्दर्यसुशीलगुणयुग् नरः॥ २१३॥
सुखगे जननीगेहयानसम्पत्समन्वितः।
सुतगे धार्मिको धीरो गुरुभक्तो जनप्रियः॥ २१४॥
शत्रुभावगते भाग्यहीनः शत्रुव्रणार्दितः।
मातुलादिसुखैर्हीनो भाग्येशे जायते जनः॥ २१५॥
कामस्थे धनसम्पत्तिः कलत्रात्सुखसम्भवः।
यशस्वी सद्गुणी जातोऽष्टमस्थे भाग्यवर्जितः॥ २१६॥
भाग्येशे नवमस्थे तु गुणी मातृसुखान्वितः।
दशमस्थे लोकवन्द्यो नृपोऽमात्योऽथवा भवेत्॥ २१७॥
सेनाध्यक्षो गुणी जातो विशिष्टप्रतिभान्वितः।
लाभभावगते तत्र नित्यं वित्तागमो भवेत्॥ २१८॥
गुरुभक्तिरतः पुण्यशीलो गुणयुतो नरः।
व्ययगे व्ययशीलोऽसौ सत्कृतौ जनसत्कृतौ॥ २१९॥
तत्परो भाग्यरहितो निःस्वः सञ्जायते नरः।

सुधा—भाग्येश लग्नगत हों तो मनुष्य सुन्दर, सुबुद्ध, लोकप्रिय, राजपूज्य तथा सौभाग्यशील होता है। धनभावगत भाग्येश में मनुष्य धन-पुत्रादियुक्त, कामी तथा सुबुद्ध होता है। सहजभावगत वे हों तो मनुष्य धन, रूप, शील तथा गुण से युक्त

होता है। चतुर्थभावस्थ भाग्येश में मनुष्य माता, भूमि, गेह, वाहन तथा धनसम्पन्न होता है। पञ्चमस्थ भाग्येश हों तो मनुष्य धार्मिक, धीर, गुरुभक्त तथा जनप्रिय होता है। षष्ठस्थ भाग्येश हों तो मनुष्य भाग्यहीन, शत्रुगण से पीड़ित, मामा-मौसी आदि के सुखों से वञ्चित रहता है। सप्तमभावगत भाग्येश हों तो स्त्री द्वारा धन-सम्पत्ति तथा सुखाप्ति होती है। वह यशस्वी तथा सद्गुणवान् भी होता है। अष्टमस्थ नवमेश में मनुष्य भाग्यहीन होता है। नवमस्थ नवमेश में मनुष्य गुणवान् एवं भ्रातृसौख्यसम्पन्न होता है। दशमस्थ भाग्येश हों तो मनुष्य लोकवन्द्य राजा अथवा सेनाध्यक्ष किंवा राजमन्त्री होता है। लाभस्थ भाग्येश हों तो मनुष्य को नित्य धनलाभ होता है। वह गुरुभक्त, पुण्यशील तथा गुणी होता है। व्ययभावगत भाग्येश हों तो मनुष्य सत्कार्य में व्ययशील एवं जनसत्कार में तत्पर, भाग्यहीन तथा दरिद्र होता है।

स्थानवशेन राज्येशफलानि

राज्येशे तनुभावस्थे विद्यागुणसमन्वितः॥ २२०॥
रुग्णो बाल्ये सुखी पश्चात् धनवृद्धिः सदा भवेत्।
वित्तगे धनवान् राजवन्द्यः पितृसुखान्वितः॥ २२१॥
सहजस्थे गुणी वाग्मी पराक्रमयुतो नरः।
भ्रातृसौख्यान्वितो जातो गुणवान् धर्मतत्परः॥ २२२॥
सुखगे गुणसम्पन्नो धनधामसुखान्वितः।
मातृभक्तो भवेज्जातो वाहनेन समन्वितः॥ २२३॥
सुतगे राज्यनाथे तु धनपुत्रप्रमोदवान्।
रिपुगे शत्रुभिः पीडा निःस्वस्तातसुखोज्झितः॥ २२४॥
जायाभावगते तत्र सत्यधर्मयुतस्तथा।
वाग्मी गुणी मनस्वी च जायासौख्ययुतो नरः॥ २२५॥
अष्टमस्थे तु राज्येशे निष्क्रियः परनिन्दकः।
दीर्घायुश्च भवेज्जातो जायते नात्र संशयः॥ २२६॥
भाग्यस्थे दशमेशे तु राजा राजकुलोद्भवः।
सुतवित्तसुखी राजतुल्यो जातोऽन्यवंशजः॥ २२७॥
कर्मस्थे दशमेशे तु पराक्रमयुतो नरः।
सत्यशीलो गुरोर्भक्तः सुखितश्च प्रजायते॥ २२८॥
भवगे दशमेशे तु सुतवित्तयुतो गुणी।
प्रसन्नः सत्यशीलोऽसौ जातकः सुखितः सदा॥ २२९॥
व्ययगे व्ययकृद् दक्षो भीतः शत्रुजनात् सदा।
चिन्तातुरोऽनिशं राजसम्बद्धश्च प्रजायते॥ २३०॥

सुधा—राज्येश लग्नभावस्थ हों तो जातक विद्वान् तथा गुणवान् होता है।

बाल्यकाल में वह रुग्ण रहता है, किन्तु बाद में वह सुखी तथा उसे सतत धनवृद्धि होती रहती है। धनभावगत राज्येश में जातक धनी, राजपूज्य तथा पितृसौख्यपूर्ण होता है। सहजभावगत राज्येश हों तो जातक गुणी, वाग्मी, पराक्रमी, भ्रातृसौख्य-युक्त तथा धार्मिक होता है। सुखभावस्थ राज्येश में जातक गुणी, भूमि-गृह-वाहन-सुखसम्पन्न तथा मातृभक्त होता है। पञ्चमभावस्थ राज्येश हों तो जातक धन-पुत्र से परिपूर्ण तथा प्रमोदवान् होता है। षष्ठभावस्थ राज्येश में जातक निःस्व, शत्रुपीड़ित तथा पितृसौख्यरहित होता है। सप्तमभावस्थ राज्येश हों तो मनुष्य गुणी, सत्यनिष्ठ, स्त्रीसौख्यसम्पन्न, वाग्मी तथा मनस्वी होता है। अष्टमभावस्थ राज्येश में मनुष्य अकर्मण्य, परनिन्दक तथा दीर्घायु होता है। नवमभावस्थ राज्येश में मनुष्य राजवंशीय यदि हो तो राजा और इतरवंशीय होने पर राजा के समान धनपुत्रयुक्त होता है। राज्येश यदि राज्यभावस्थ हों तो मनुष्य पराक्रमी, सत्यनिष्ठ, गुरुभक्त तथा सौख्य-पूर्ण होता है। आयभावस्थ राज्येश में मनुष्य धन-पुत्रयुक्त, गुणी, सत्यनिष्ठ तथा प्रसन्न रहता है। व्ययभावस्थ राज्येश में वह खर्चा करने में दक्ष, शत्रुजन से बिभीत, सतत चिन्तातुर तथा राजसम्बद्ध रहता है।

स्थानवशेन लाभेशफलानि

लाभेशे लग्नगे भूरिवक्ता नित्यं धनागमात्।
धनी काव्यकरः सत्त्वगुणी जातो हि जायते ॥ २३१ ॥
वित्तगे सिद्धियुग् दानपरो वित्तसमन्वितः।
सहजस्थे तु निपुणो भ्रातृसौख्ययुतोऽथ भीः ॥ २३२ ॥
शत्रो रुजोऽपि सततं जातकस्य प्रजायते।
लाभेशे मातृभावस्थे मातृपक्षाद्धनागमः ॥ २३३ ॥
भूगेहयानसम्पन्नस्तीर्थाटनपरो भवेत्।
पञ्चमस्थे तु धर्मात्मा गुणशीलपरैः सुतैः ॥ २३४ ॥
युक्तोऽपि सुखितो जातो जायते नात्र संशयः।
षष्ठस्थे लाभभावेशे नानारोगान्वितो जनः ॥ २३५ ॥
रिपुभिः पीडितो नित्यं प्रवाससुखमश्नुते।
लाभेशे कामगे कामी गुणवान् स्त्रीवशोऽनिशम् ॥ २३६ ॥
अष्टमस्थे तु विकलः सर्वकार्येषु सर्वदा।
दीर्घायुष्ययुतो जातो मृतस्त्रीकश्च जायते ॥ २३७ ॥
भाग्यगे लाभभावेशे राजपूज्यो धनाधिपः।
कर्मस्थेऽपि भवेद्राजवन्द्यो गुणयुतो नरः ॥ २३८ ॥
यतात्मा सत्यवादी च स्वधर्मनिरतः सदा।
लाभेशे लाभगे जातो भवेल्लाभयुतोऽनिशम् ॥ २३९ ॥

सद्विद्या सौख्यसम्पन्नः समृद्धः सततं भवेत् ।
व्ययगे म्लेच्छसंसर्गान्निरतोऽपि च कामुकः ।। २४० ।।
व्ययकृत् सत्कृतौ जातो बहुकान्तश्च जायते ।

सुधा—लाभेश लग्नगत हों तो जातक वक्ता, काव्यकर्त्ता, सात्त्विक तथा नित्य धनागम से धनी होता है। धनभावस्थ लाभेश में मनुष्य सिद्धिसम्पन्न, दानी तथा धनी होता है। सहजस्थ लाभेश हों तो जातक सर्वकार्यनिपुण, भ्रातृसौख्यसम्पन्न, किन्तु शत्रु तथा रोग से बिभीत रहता है। मातृभावस्थ लाभेश हों तो जातक को मातृपक्ष से धनागम होता है। साथ ही भूमि-गेह-वाहनयुक्त वह तीर्थाटनशील होता है। पञ्चमस्थ लाभेश में मनुष्य धर्मात्मा होता है। वह गुणशीलसम्पन्न, पुत्रसौख्ययुक्त तथा अत्यन्त सुखी होता है। षष्ठभावस्थ लाभेश हों तो मनुष्य अनेक रोगों से आक्रान्त होता है। शत्रुओं से पीड़ित वह प्रवासी रहता है। लाभेश जायाभावस्थ हों तो मनुष्य कामुक, सतत स्त्रीवशीभूत तथा गुणवान् होता है। अष्टमभावगत लाभेश रहें तो मनुष्य सभी कार्यों में विफल, दीर्घायु, किन्तु अपनी स्त्री से पहले मरने वाला होता है। नवमभावगत लाभेश में मनुष्य राजपूज्य, धनी, सत्यनिष्ठ, धर्मात्मा तथा चतुर होता है। कर्मभावस्थ लाभेश हों तो भी मनुष्य राजपूज्य, गुणवान्, यतात्मा, सत्यनिष्ठ तथा अपने धर्म में लीन रहता है। लाभभावस्थ लाभेश में मनुष्य सतत लाभ युक्त, सद्विद्यासौख्यसम्पन्न तथा प्रतिदिन समृद्ध होता रहता है। व्ययभावस्थ लाभेश में मनुष्य अधिक कामुक, म्लेच्छों के साथ रहने वाला, सत्कार्य में व्ययशील तथा अनेक स्त्री वाला होता है।

स्थानवशेन व्ययेशफलानि

व्ययेशे लग्नगे जातो व्ययशीलः प्रजायते ।। २४१ ।।
निर्धनः कफरोगी च विद्याविरहितो भवेत् ।
धनगे शुभकार्येषु व्ययकृत् सुखितो गुणी ।। २४२ ।।
प्रियभाषी धर्मशीलः जायते हि जनप्रियः ।
भ्रातृगे भ्रातृहीनोऽसौ परद्वेषकरः स्मृतः ।। २४३ ।।
व्ययेशे तुर्यगे जातो मातृसौख्यविवर्जितः ।
भूयानभवनैश्चापि विहीनो जायते नरः ।। २४४ ।।
सुतगे सुतसम्प्राप्तौ बहुव्ययकरो नरः ।
विद्याविरहितो नित्यं तीर्थाटनपरश्च सः ।। २४५ ।।
व्ययेशे षष्ठगे शत्रुः स्वजनस्यातिलम्पटः ।
दुःखितः पापधीः क्रोधी जायते जातकः सदा ।। २४६ ।।
सप्तमस्थे तु निर्विद्यो वञ्चितः स्त्रीसुखादपि ।
रन्ध्रस्थे गुणसम्पन्नो मध्यायुश्च प्रियंवदः ।। २४७ ।।

धर्मगे स्वार्थनिरतो गुरुभिर्द्वेषबुद्धियुक् ।
व्ययेशे राज्यगे तातसौख्यमल्पं तु निश्चितम् ।। २४८ ।।
धराधिपवशाद् भूरिधनव्ययकरो भवेत् ।
लाभगे नहि लाभः स्यात् कदाचित् स्तोकलाभयुक् ।। २४९ ।।
व्ययेशे व्ययगे जातो व्ययशीलः सदा भवेत् ।
जनद्वेषकरो नित्यं देहसौख्यविवर्जितः ।। २५० ।।

सुधा—व्ययेश लग्नगत हों तो जातक व्ययशील, निर्धन, विद्याविहीन तथा कफ-रोग युक्त होता है । धनभावगत व्ययेश हों तो जातक शुभ कार्य में व्ययकर्त्ता, सुखी, गुणी, प्रियभाषी तथा जनप्रिय होता है । सहजभावगत व्ययेश में जातक मातृसौख्य-विहीन तथा परद्वेषकारी होता है । सुखभावगत व्ययेश हों तो माता, भूमि, यान एवं भवन सुख से जातक वञ्चित होता है । पञ्चमस्थ व्ययेश हों तो जातक पुत्र-प्राप्ति के लिए बहुत व्यय करने वाला, विद्यारहित तथा सतत तीर्थाटनकारी होता है । षष्ठ-भावस्थ व्ययेश हों तो जातक स्वजनों का शत्रु, खुद लम्पट, पापबुद्धि तथा क्रोधी होता है । सप्तमभावस्थ व्ययेश हों तो मनुष्य स्त्रीसुख से वञ्चित तथा विद्याविहीन होता है । अष्टमस्थ व्ययेश में मनुष्य गुणी, मध्यायु तथा प्रियभाषी होता है । नवमभावस्थ व्ययेश हों तो मनुष्य भाग्यहीन, स्वार्थी तथा गुरुजनों का द्वेषकारी होता है । कर्मस्थ व्ययेश में मनुष्य को पितृसुख में कमी, राजा के द्वारा अधिक व्यय करने की विवशता होती है । लाभभावस्थ व्ययेश हों तो धनलाभ अधिक नहीं होता, किन्तु परधन का थोड़ा-सा लाभ कभी हो जाता है । व्ययस्थ व्ययेश में मनुष्य शारीरिक सुखहीन, जनद्वेषकारी तथा अधिक व्ययशील होता है ।

अथ भावफलविचाराध्यायः

भावाधीशे स्वतुङ्गस्थे केन्द्रकोणगतेऽथवा ।
निजगेहगते वापि शुभग्रहविलोकिते ।। २५१ ।।
पापदृग्योगरहिते भावे भावेशसंयुते ।
दृष्टे वा तर्हि भावानां प्राबल्यं कथितं बुधैः ।। २५२ ।।
भावेशे त्रिकगे नीचराशिगेऽस्तं गतेऽथवा ।
भावे पापेक्षितयुते दौर्बल्यं तस्य निश्चितम् ।। २५३ ।।
एवं बलाबलं वीक्ष्य भावानां फलमादिशेत् ।

सुधा—भावाधीश अपने उच्च, केन्द्र या त्रिकोण या स्वभवनस्थ होकर शुभग्रह से युक्त या शुभदृष्ट हो, साथ ही पापग्रहों के योग या पापों की दृष्टि से रहित हो, भाव पर भावेश का संयोग या उसकी दृष्टि रहे तो उस भाव की प्रबलता होती है ।

भावेश यदि त्रिक(षष्ठाष्टमद्वादश)स्थ हों, नीचराशिस्थ या अस्तंगत हों,

भाव पर पापग्रह का संयोग अथवा दृष्टि हो तो उस भाव की दुर्बलता निश्चित रूप से होती है। इस प्रकार भावों के बलाबल देखने के बाद ही फलादेश करना चाहिए।

तनु(लग्न)भावविचारः

लग्नेशः केन्द्रकोणस्थस्तनुसौख्यकरो नृणाम् ॥ २५४ ॥
स एव त्रिकगः पापयुक्तः सौख्यहरो भवेत्।
लग्नेशोऽस्तमितो नीचशत्रुभस्थोऽतिरोगकृत् ॥ २५५ ॥
स एवोच्चगतः केन्द्रकोणगः शुभदृग्युतः।
देहसौख्यकरो नृणां सर्वदैव न संशयः ॥ २५६ ॥
लग्ने शुभे तु सुभगो दुर्भगः पापसंयुते।
केन्द्रत्रिकोणगोऽङ्गेशो बुधो जीवोऽथवा भृगुः ॥ २५७ ॥
दीर्घायुर्मतिमान् जातो धनवान्राजवल्लभः।
जीवः शुक्रो बुधो वापि सचन्द्रो लग्नगो यदि ॥ २५८ ॥
लग्नात् केन्द्रगतो वापि राजलक्षणसंयुतः।
लग्ने क्रूरो लग्ननाथः पापगेहे तु संस्थितः ॥ २५९ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ पापान्तरस्थौ वा रवीन्दुतः।
द्यूमस्थः क्षितिजो विच्च पृष्ठोदयगतो यदि ॥ २६० ॥
नेत्रान्धो दुष्टकर्मा च पापासक्तो जनो भवेत्।

सुधा—केन्द्र या त्रिकोण(१।४।७।१०।९।५)स्थ लग्नेश शुभग्रहों के योग या दृष्टि से शारीरिक सौख्यकारी और वही लग्नेश त्रिक(६।८।१२)स्थ होकर पापग्रहों के योग या दृष्टि से शारीरिक सौख्यहारी होते हैं।

लग्नेश सूर्यसान्निध्य से अस्त, नीच या शत्रु भवनस्थ होने पर रोगकारी और वही अपने उच्च, केन्द्र या त्रिकोणस्थ होकर शुभग्रह के संयोग या दृष्टि युक्त हों तो निःसन्देह स्वास्थ्यकारी होते हैं। लग्न में शुभग्रह के संयोग से जातक सुन्दर और पापग्रह के योग से जातक कुरूप होता है।

केन्द्रकोणस्थ लग्नेश बुध, गुरु या शुक्र हों तो जातक दीर्घायु, बुद्धिमान्, धनवान् तथा राजप्रिय होता है। सचन्द्र गुरु, शुक्र या बुध लग्नगत हों या लग्न से केन्द्रगत हो तो राजलक्षणयुक्त जातक को समझना चाहिए।

लग्न में पापग्रह और लग्नेश पापग्रहराशिस्थ हों, सूर्य तथा चन्द्रमा पापद्वयान्तर्गत हों, अथवा मंगल, सूर्य चन्द्रमा से सप्तम में और बुध पृष्ठोदयगत हों तो जातक दुष्ट कार्य करने वाला नेत्रान्ध तथा पापासक्त होता है।

धनभावविचारः

धनेशः केन्द्रकोणस्थो धनभावगतोऽपि वा ॥ २६१ ॥
धनाधिपो गुरुर्भौमयुक्तो धनगतो यदा।

लाभस्थो धनपो लाभपतिर्धनगतोऽथवा ।। २६२ ।।
केन्द्रकोणगतौ लाभधनपौ वापि केन्द्रगौ ।
कोणगौ वाप्युभौ, सर्वयोगेषु धनवान्नरः ।। २६३ ।।
धनेशस्त्रिकगो वापि क्रूरो धनगतोऽर्थहृत् ।
धने शुभस्तु धनदः पापस्तत्रार्थनाशकृत् ।। २६४ ।।
धनेशः शुभखेटाढ्यः स्थितः पारावतादिके ।
जनुः काले यदि तदा धनवान् जायते नरः ।। २६५ ।।
धनेशे परमोच्चस्थेऽथवा स्वभवनस्थिते ।
गुरुणा वीक्षिते वापि युक्ते जातो जनप्रियः ।। २६६ ।।
धनेशे केन्द्रगे लाभनाथे तस्मात् त्रिकोणगे ।
गुरुशुक्रेक्षितयुते धनवान् जायते नरः ।। २६७ ।।
धनलाभपती षष्ठभावगौ पापदृग्युतौ ।
वित्तलाभौ यदा वापि निःस्वो जातः प्रजायते ।। २६८ ।।

सुधा—धनेश केन्द्र या कोणस्थ हों या धनभावगत हों; धनेश गुरु-भौमयुक्त होकर धनगत हों; लाभस्थ धनेश या धनस्थ लाभेश हों; लाभेश-धनेश दोनों केन्द्र या कोणस्थ हों या दोनों केन्द्रस्थ हों या दोनों कोणस्थ हों तो सभी स्थितियों में जातक धनी होता है ।

त्रिकस्थ धनेश या पापयुक्त धनभाव हों तो धनक्षय होता है । धनभाव में शुभग्रह धनवर्द्धक और उसमें पापग्रह धनहारक होता है । शुभग्रह युक्त धनेश पारावत आदि योग में स्थित हों तो भी जातक धनी होता है । धनेश परमोच्चस्थ अथवा स्वभवनस्थ हों और गुरु से युक्त या दृष्ट हों तो जातक जनप्रिय होता है । धनेश केन्द्रस्थ हों और लाभेश धनेश से नवम या पञ्चम में हो, साथ ही गुरु या शुक्र से युत या दृष्ट हों तो भी जातक पूर्ण धनसम्पन्न होता है । धनेश तथा लाभेश षष्ठस्थ हों या धन लाभस्थान पापयुक्त या पापदृष्ट हों तो जातक दरिद्र होता है ।

वित्तलाभाधिपावस्तं गतौ पापग्रहान्वितौ ।
पापग्रहेक्षितौ वापि दारिद्र्यं लभते नरः ।। २६९ ।।
त्रिकगो धनलाभेशौ लाभगो मङ्गलस्तथा ।
धनस्थितो भवेद्राहुस्तदा राज्ञा धनक्षयः ।। २७० ।।
व्यये शुभयते वित्तयुतावपि शुभान्विते ।
वित्तायस्थे गुरौ शुक्रे धर्ममूलो धनक्षयः ।। २७१ ।।
धनेशे सबले जातः शोभनाक्षोऽथ दुर्बले ।
त्रिकस्थिते तर्हि नेत्रे वैकल्यं तस्य जायते ।। २७२ ।।
पापान्विते धनपतौ धने पापग्रहान्विते ।
वातरोगार्दितो जातोऽलीकवाक् पिशुनोऽपि च ।। २७३ ।।

धनेशो द्वादशेशश्च शुक्रो लग्नपतिस्तथा ।
त्रिकस्थश्चेन्नेत्ररोगो जायते नात्र संशयः ।। २७४ ।।
सखलः कविसंयुक्तश्चन्द्रो धनगतो यदा ।
नेत्रहीनो भवेज्जातो विदुषामिति सम्मतम् ।। २७५ ।।

सुधा—वित्तेश एवं लाभेश अस्तंगत दोनों पापयुक्त या पापदृष्ट हों तो जातक दरिद्र होता है । धनेश तथा लाभेश त्रिकस्थ हों; लाभस्थ मंगल और धनस्थ राहु हों तो राजा के द्वारा धनक्षय होता है । धन तथा व्यय भाव शुभग्रह युक्त हों, धनेश भी शुभग्रहान्वित हों, धन तथा आय भाव में गुरु या शुक्र रहे तो धर्ममूलक धनक्षय कहना चाहिए ।

धनेश (नेत्रेश) प्रबल हों तो जातक शोभनाक्ष होता है । धनेश की दुर्बलता तथा उसे त्रिकस्थ होने पर नेत्र में विकार कहना चाहिए । धनेश पापयुक्त एवं धन-भाव भी पापग्रहान्वित हों तो जातक वातरोग से पीड़ित, मिथ्यावादी तथा पिशुन (चुगलखोर) होता है । धनेश, व्ययेश, लग्नेश तथा शुक्र त्रिकस्थ हों तो निश्चयतः नेत्ररोग होता है । सपापचन्द्र शुक्रसहित होकर धनस्थ हों तो जातक नेत्रहीन होता है ।

अथ सहजभावविचारः

सहजे शुभसंयुक्ते दृष्टे वा सहजान्वितः ।
स भौमो भ्रातृभावेशो भ्रातृभावं यदीक्षते ।। २७६ ।।
यद्वा सहजभावस्थस्तदा भ्रातृसुखं दिशेत् ।
सभौमः सहजेशश्चेत् पापयुक्तोऽथवेक्षितः ।। २७७ ।।
पापक्षेत्रगतस्तर्हि सहजघ्नः प्रजायते ।
भ्रातृभावपतिश्चन्द्रः शुक्रो वा सहजस्थितः ।। २७८ ।।
तयोरेकस्तदा सौख्यं सहजाया विनिर्दिशेत् ।
पुंग्रहः सहजेशश्चेत् सहजे यदि संस्थितः ।। २७९ ।।
तदा भ्रातृसुखं विद्यान्मिश्रे तदुभयं दिशेत् ।
सहजेशकुजौ रन्ध्रगतौ पापैर्युतेक्षितौ ।। २८० ।।
सोदरघ्नौ, तथा केन्द्रकोणोच्चनिजमित्रभे ।
सहजेशे कारकेऽपि स्थिते वा बलसंयुते ।। २८१ ।।
भावे सौम्यैर्युते वाऽपि दृष्टे भ्रातृसुखं वदेत् ।

सुधा—सहजभाव शुभग्रह युक्त या शुभदृष्ट हों तो जातक भाइयों वाला होता है । सभौम सहजेश सहजभाव को देखें या सहजभावस्थ हों तो जातक भ्रातृसुखपूर्ण होता है । वही (सभौम सहजेश) पापयुक्त या पापदृष्ट हों या पापक्षेत्रगत हों तो भ्रातृनाशक होता है ।

सहजेश चन्द्रमा या शुक्र हों या दोनों में से एक सहजभावगत हों तो सहजा (बहन) का सौख्य कहना चाहिए। सहजेश पुरुषग्रह सहजभावगत हों तो भ्रातृ-सुख कहें। वही मिश्र (पुरुष-स्त्री) ग्रह यदि सहजस्थ हों तो भाई तथा बहन दोनों का सुख कहें।

सहजेश तथा भौम दोनों अष्टमस्थ होकर पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो सहजों के घातक होते हैं। वे ही (सभौम सहजेश) केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन, मित्र-क्षेत्र या अपने कारकस्थ हों या प्रबल भाव पर शुभग्रह की दृष्टि या संयोग रहे तो भाव सुख (सहज सुख) कहना चाहिए।

सहजे चान्द्रिसंयुक्ते तदीशे शशिनाऽन्विते ॥ २८२ ॥
मन्दान्विते कारके तु भगिनी प्रथमं भवेत्।
पश्चात् सहोदरोऽप्येकस्तृतीयो मृतिमाप्नुयात् ॥ २८३ ॥
नीचस्थे विक्रमाधीशे कारके राहुणान्विते।
परतः सोदराभावः पूर्वजं तत्त्रयं वदेत् ॥ २८४ ॥
भौमे लाभेशसंयुक्ते गुरुणापि समन्विते।
विक्रमस्थानगे चन्द्रे सोदराः सप्तसंख्यकाः ॥ २८५ ॥
सहजस्थे शशाङ्के तु पुङ्ग्रहेणैव वीक्षिते।
भ्रातरस्तत्र कविना भगिन्यः संयुतेक्षिते ॥ २८६ ॥
सहजस्थो रविर्हन्यादग्रजं पृष्ठजं शनिः।
उभयं भूमिजो हन्ति नात्र सन्दिहते बुधाः ॥ २८७ ॥

सुधा—सहज भाव में बुध हों, सहजेश चन्द्रमा से युक्त हों, सहजकारक शनियुक्त हों तो पहले बहन पीछे एक भाई तीसरा मृत्यु को प्राप्त करता है। सहजेश नीच राशिस्थ तथा सहजकारक राहु के साथ हों तो प्रथम तीन भाई-बहन जीवित और बाद के सभी दिवंगत हो जाते हैं। मंगल लाभेश तथा गुरु के साथ रहें, सहजभावगत चन्द्रमा पुंग्रह (रवि, भौम, गुरु) से ही युत या दृष्ट हों तो भाई की और शुक्र से युत या दृष्ट होने पर बहन की उत्पत्ति होती है। सहजस्थ सूर्य अग्रज को, शनि पृष्ठस्थ को और मंगल दोनों को खत्म करने वाले होते हैं।

सुखभावविचारः

तुर्येशे तुर्यभावस्थे लग्नेशे वाऽत्र संस्थिते।
सौम्यग्रहैर्युते वापि दृष्टे गृहसुखं वदेत् ॥ २८८ ॥
तुर्येशे स्वर्क्षतुङ्गांशगते भूगेहयानजम्।
मातृवाद्यादिजनितं ज्ञेयं सुखमनुत्तमम् ॥ २८९ ॥
केन्द्रे कोणेऽथवा तुर्यकर्मेशौ सह संस्थितौ।
राजार्हे सदने वासो भवेदिति सुनिश्चितम् ॥ २९० ॥

केन्द्रस्थे तुर्यनाथे तु केन्द्रगे भार्गवे तथा।
बुधे स्वतुङ्गराशिस्थे यानसौख्यं सुनिश्चितम्॥ २९१॥

सुधा—सुखेश सुखभावस्थ या लग्नेश सुखभावगत हों और वे शुभग्रहों से युत या दृष्ट हों तो गृहसौख्य कहना चाहिए। सुखेश स्वभवन या उच्चांशगत हों तो भूमि, गेह, वाहन, मातृ-वाद्यादि समस्त सुख कहना चाहिए। सुखेश तथा कर्मेश केन्द्र या त्रिकोण में साथ-साथ रहें तो राजार्ह सदन में निवास कहना चाहिए। सुखेश केन्द्रस्थ हों तथा शुक्र भी केन्द्रगत हों और बुध अपने उच्चराशिस्थ हों तो वाहनसुख निश्चित रूप से होता है।

सुखे चरे सुखेशे तु सभौमे व्ययषष्ठगे।
जातको मूकतामेति वृद्धैरिदमुदीरितम्॥ २९२॥
सुखेशे लाभगे लाभनाथे तु सुखभावगे।
द्वादशे वासरे यानमाप्नुयाज्जातको ध्रुवम्॥ २९३॥
रवौ वाहनभावस्थे वाहनेशे स्वतुङ्गगे।
भृगुणा संयुते यानप्राप्तिर्द्वात्रिंशवत्सरे॥ २९४॥
सुखस्थौ चन्द्रलग्नेशौ शुभग्रहयुतेक्षितौ।
सुखेशो लग्नगस्तर्हि सुखाधिपदशागमे॥ २९५॥
अनायासं भूमिगेहनिखातद्रव्यसङ्गमः।

सुधा—सुखभाव चरराशि हो, सभौम सुखेश छठे या बारहवें में स्थित हों तो जातक मूक होता है—ऐसा प्राचीनाचार्यों का कथन है। सुखेश लाभभावस्थ और लाभेश सुखभावगत हों तो बारहवें वर्ष में वाहन-प्राप्ति कहना चाहिए। सूर्य चौथे में और सुखेश अपने उच्च में शुक्र के साथ रहें तो बत्तीसवें वर्ष में वाहन प्राप्ति कहें। सुखस्थ चन्द्र तथा लग्नेश शुभग्रह से युक्त या शुभदृष्ट हों, और सुखेश लग्नगत हों तो सुखेश की दशा में अनायास भूमि-गेह-निखात द्रव्य (गड़ा हुआ द्रव्य) की प्राप्ति होती है।

पञ्चमभावविचारः

पञ्चमाच्चिन्तनीयेषु प्राधान्यं सुतविद्ययोः॥ २९६॥
तस्मादुभयसम्बद्धविवेचनमथोच्यते।
त्रिकगः पञ्चमेशश्चेत् गुरुज्ञसहितोऽपि सन्॥ २९७॥
विद्याविरहितो जात स एव निजगेहगः।
केन्द्रकोणगतो वापि बली विद्यान्वितोऽर्भकः॥ २९८॥
जीवज्ञपञ्चमेशाश्चेत् अस्ताः सूर्यसमीपतः।
प्रज्ञाल्पता भवेत्तर्हि निजर्क्षे नैव चाल्पता॥ २९९॥
पञ्चमेशो गुरुश्चापि त्रिकगौ चेत्तदार्भकः।
मूकस्ताभ्यां युतास्तातादिस्थानपतयो यदि॥ ३००॥

त्रिकगा मूकता तेषामपि विज्ञैः प्रकीर्त्तिताः ।
एकस्थानगता जीवबुधराहुशनैश्चराः ।। ३०१ ।।
भृगुणा वीक्षितास्तर्हि जातः शूद्रोऽपि तीव्रधीः ।
योगेऽस्मिन् ब्राह्मणाः सर्वशास्त्रगा वेदपारगाः ।। ३०२ ।।

सुधा—पञ्चम भाव से विचारणीय विषयों में विद्या तथा पुत्र की प्रधानता है, अतः इन दोनों का विवेचन मैं पञ्चम भाव के द्वारा करता हूँ ।

पञ्चमेश गुरु या बुध से संयुक्त होकर भी त्रिक(६।८।१२)स्थ हों तो जातक विद्याविहीन होता है । वही पञ्चमेश अपने भवन, केन्द्र या त्रिकोणस्थ होकर प्रबल हों तो जातक सविद्य होता है । सूर्यसान्निध्य से बुध, गुरु तथा पञ्चमेश अस्तंगत हों तो जातक अल्पबुद्धि होता है । अस्त होकर भी वे यदि अपने भवनस्थ हों तो प्रज्ञाल्पता न कहे । पञ्चमेश तथा गुरु त्रिकस्थ हों तो जातक मूक होता है । इन दोनों से युक्त पित्रादि स्थानेश त्रिकस्थ हो तो उनकी (पित्रादि) की मूकता कहनी चाहिए । एकस्थानस्थ बुध, गुरु, राहु तथा शनैश्चर यदि शुक्र से दृष्ट हों तो शूद्रवंशज जातक भी तीव्रबुद्धि का होता है । इस योग में ब्राह्मणवंशज सर्वशास्त्रज्ञ एवं वेदपारङ्गत होता है ।

जीवः केन्द्रगतो वित्तपतिर्ज्ञो वोच्चगो भृगुः ।
निजगेहगतो वापि जातो गणितशास्त्रवित् ।। ३०३ ।।
धनभावगतो भौमः शुभग्रहयुतो विदा ।
वीक्षितो वा बुधः केन्द्रगतो गणितविज्जनः ।। ३०४ ।।
चन्द्रः सचान्द्रिः केन्द्रस्थोऽथवा केन्द्रगतो बुधः ।
सहजेशयुतो जातस्तदापि गणिते पटुः ।। ३०५ ।।
धर्मेशोऽर्कोऽथवा भौमो गुरुणा भृगुणापि वा ।
वीक्षितो जायते जातः शास्त्रज्ञो नात्र संशयः ।। ३०६ ।।
बुधो गुरुश्च धनौ पापदृष्टिविवर्जितौ ।
व्याख्याता जायते जातो धनपो गुरुणा युतः ।। ३०७ ।।
धनस्थितो यदि भवेत्तदा वाग्मी न संशयः ।
धने शुभयुते दृष्टे मिष्टभाषी, सपापके ।। ३०८ ।।
दुर्मुखो जायते जातो मिश्रैर्मिश्रफलं दिशेत् ।
द्वितीयेशे तु बलिनि केन्द्रगे शशिजे तथा ।। ३०९ ।।
शुक्रे पञ्चमगे जातो ज्योतिःशास्त्रविशारदः ।

सुधा—गुरु केन्द्रगत, धनेश बुध हों या स्वोच्च या स्वभवनस्थ शुक्र हों तो जातक गणितशास्त्रज्ञ होता है । धनभावगत भौम शुभग्रह के साथ हों और बुध की उन पर दृष्टि रहे, अथवा बुध केन्द्रस्थ हों तो भी जातक गणितशास्त्रज्ञ होता है ।

बुधयुक्त चन्द्रमा केन्द्रस्थ हों अथवा केन्द्रस्थ बुध सहजेश युक्त हों तो भी जातक गणित में पटु होता है। धर्मेश सूर्य या मंगल गुरु या शुक्र से युतदृष्ट हों तो जातक शास्त्रज्ञ होता है। बुध तथा गुरु धनस्थ हों और उन पर पापग्रह की दृष्टि नहीं रहे तो जातक व्याख्याता होता है। धनेश गुरुयुक्त होकर धनस्थित हों तो जातक वाग्मी होता है। धनभाव शुभग्रह युक्त या शुभदृष्ट रहे तो जातक मिष्टभाषी, पापग्रह युतदृष्ट होने पर दुर्मुख और शुभ-पाप दोनों से युत या दृष्ट धनभाव हो तो जातक मिष्ट तथा कटु दोनों तरह का बोलने वाला होता है। बली धनेश केन्द्रस्थ हों, बुध तथा शुक्र पञ्चमस्थ हों तो जातक ज्यौतिषशास्त्रज्ञ होता है।

सन्ततिविचारः

केन्द्रस्थे कोणगे वापि पञ्चमेशे बलान्विते ॥ ३१० ॥
पुत्रसौख्यं भवेत्तस्य त्रिकस्थे नहि तद्भवेत्।
पञ्चमेशे दुर्बले तु पापाक्रान्तेऽपि नीचगे ॥ ३११ ॥
सुतोत्पत्तिर्न जायेत जातोऽपि मृतिमाप्नुयात्।
नीचस्थः पञ्चमेशश्चेत् षष्ठादित्रिकसंस्थितः ॥ ३१२ ॥
म्रियते प्रथमापत्यं काकवन्ध्या सधर्मिणी।
लाभगे नवमेशे तु सुतेशे नीचसंस्थिते ॥ ३१३ ॥
सुते केतुबुधौ स्यातां सुतं कष्टात् विनिर्दिशेत्।
चन्द्रान्विते पञ्चमेशे चन्द्रद्रेष्कोणगेऽपि चेत् ॥ ३१४ ॥
कन्योत्पत्तिस्तदा ज्ञेया पुत्राभावं च निर्दिशेत्।
चरराशिगते पञ्चमेशे चन्द्रेऽगुना युते ॥ ३१५ ॥
शनौ पञ्चमभावस्थे परजातं वदेच्छिशुम्।
चन्द्रादष्टमगे जीवे लग्नादष्टमगे विधौ ॥ ३१६ ॥
पापग्रहेक्षितयुते परजातं वदेच्छिशुम्।
पञ्चमेशे स्वतुङ्गस्थे लग्नतो द्वित्रिकोणगे ॥ ३१७ ॥
गुरुणा संयुते दृष्टे पुत्रवान् जायते नरः।

सुधा—प्रबल पञ्चमेश केन्द्र(१।४।७।१०)स्थ या कोण(९।५)स्थ हों तो पुत्र सौख्य होता है। पञ्चमेश के त्रिकस्थ होने पर पुत्रसौख्य की कमी कहना चाहिए। पञ्चमेश दुर्बल पापग्रहाक्रान्त या नीचस्थ हों तो पुत्रोत्पत्ति होती ही नहीं। यदि संयोगतः हो भी जाय तो उसका जीवित रहना कठिन होता है। नीचराशिस्थ पञ्चमेश यदि त्रिकस्थ हों तो प्रथम सन्तान भी जीवित नहीं रहती, साथ ही पत्नी काकवन्ध्या हो जाती है। लग्नस्थ नवमेश और नीचस्थ पञ्चमेश हों और पञ्चमभाव में बुध तथा केतु दोनों हों तो पुत्रोत्पत्ति कठिनता से होती है। सचन्द्र पञ्चमेश यदि चन्द्र द्रेष्काणगत हों तो कन्योत्पत्ति होती है, किन्तु पुत्राभाव उसे रहता है।

चरराशिस्थ पञ्चमेश चन्द्रमा तथा राहु के साथ हों और पञ्चम में शनि हो तो जातक परजात होता है। चन्द्रमा से अष्टम में गुरु तथा लग्न से अष्टमस्थ चन्द्रमा हों, उन पर पापग्रह की युति या दृष्टि हो तो भी जातक को जारजात समझना चाहिए। पञ्चमेश अपने उच्चस्थ होते हुए लग्न से दूसरे, तीसरे, नवें या पाँचवें स्थान में गुरु से युक्त हों तो जातक पुत्रवान् होता है।

लग्नाच्चन्द्रात्सप्तमाच्च गुरोरपि विदांवरैः ॥ ३१८ ॥
विचारः सन्ततेः कार्यो नैकस्मादिति निर्णयेत्।
लग्नत्रिकोणपतयस्त्रिकगाः पञ्चमाधिपः ॥ ३१९ ॥
गुरोरपि त्रिकस्थश्चेत् सुतोत्पत्तिरसम्भवा।
त एव यदि जीवज्ञभृगुभिः संयुतास्तदा ॥ ३२० ॥
विलम्बाज्जायते तस्य सुतोत्पत्तिर्न संशयः।
गुरोः पञ्चमभावश्चेत् पापाक्रान्तस्तथा गुरुः ॥ ३२१ ॥
पापयुक्तः स्वयमपि पुत्रस्तस्य न जीवति।
एवं लग्नात् सप्तमाच्च चन्द्रादपि विचारयेत् ॥ ३२२ ॥
लग्नसप्तमचन्द्रेभ्यः पञ्चमे पापखेचरे।
पापाक्रान्ते च तत्स्थाने पुत्रबाधा प्रजायते ॥ ३२३ ॥
विलम्बादेकयोगे स्याद् विनश्येद्योगयुग्मके।
योगत्रये चतुर्योगे सुतोत्पत्तिरसम्भवा ॥ ३२४ ॥
एवं सति हरेर्वंशश्रवणं दानमाङ्गनम्।
रुद्राभिषेकः कपिलादानं च सुतदायकम् ॥ ३२५ ॥

सुधा—लग्न चन्द्रमा सप्तमभाव तथा गुरु पर से सन्तति का विचार करना चाहिए। एक से उसका निर्णय उपयुक्त नहीं है। लग्नेश तथा कोणेश यदि त्रिकस्थ हों, गुरु से पञ्चमेश भी त्रिकगत हों तो सन्तानोत्पति असम्भव हो जाती है। यदि वे (लग्नेश, कोणेश तथा गुरु से पञ्चमेश) गुरु, बुध एवं शुक्र से युक्त हों तो विलम्ब से सुतोत्पत्ति अवश्य होती है।

गुरु से पञ्चमभाव यदि पापयुक्त हों और गुरु भी पापान्वित हों तो उसका पुत्र जीवित नहीं रहता। इसी तरह लग्न सप्तम तथा चन्द्रमा पर से भी विचार करना चाहिए। लग्न सप्तम तथा चन्द्रमा से पञ्चम पापाक्रान्त और वे (लग्न सप्तम चन्द्रमा) खुद भी सपाप हों तो पुत्रोत्पत्ति में बाधा होती है। एक ही योग हो तो बिलम्ब से पुत्रोत्पत्ति हो जाती है। योगद्वय उपस्थित होने पर पुत्र होकर नष्ट हो जाता है। योगत्रय या योगचतुष्टय में पुत्रोत्पत्ति असम्भव होती है। ऐसी स्थिति में हरिवंश-श्रवण, कन्यादान, रुद्राभिषेक तथा गोदान पुत्रोत्पत्तिकारक होते हैं।

तृतीये पुत्रयुगलं चान्द्रिः कन्याद्वयं दिशेत्।
गुरुः पञ्चसुतान् चन्द्रार्कजावेकं सुतं, भृगुः ॥ ३२६ ॥

पुत्रत्रयं तथा कन्याद्वयं च वसुधात्मजः।
राहुकेतू च तत्रस्थाः पुत्रसौख्यविघातकाः ॥ ३२७ ॥
कलत्रे संस्थितः शुक्रः कन्यायुग्मं प्रयच्छति।
लग्नगौ शनिशुक्रौ चेत् पुत्रत्रयकरौ नृणाम् ॥ ३२८ ॥
किन्तु पञ्चमभावेशे दुर्बले पापसंयुते।
अस्तङ्गतेऽथवा नैव जातोऽपि म्रियते क्षणात् ॥ ३२९ ॥

सुधा—बुध तृतीयस्थ होने पर पुत्रद्वय तथा कन्याद्वय प्रदान करते हैं। इसी तरह तृतीयस्थ गुरु पाँच पुत्रों को, चन्द्रमा तथा शनि एक पुत्र को, तृतीयस्थ शुक्र तीन पुत्र तथा कन्याद्वय देते हैं। साथ ही उसी तृतीय में स्थित मंगल, राहु तथा केतु पुत्रसौख्य-घातक होते हैं। सप्तम में स्थित शुक्र दो कन्याओं को, लग्नगत शनि तथा शुक्र पुत्रत्रय-कारक होते हैं। अर्थात् शनि-शुक्र दोनों लग्नस्थ हों तो पुत्रत्रय समझना चाहिए। किन्तु सभी बातें पञ्चमेश की प्रबलता में ही सम्भव है। पञ्चमेश दुर्बल या पापयुक्त रहें या सूर्य-सान्निध्य से अस्तंगत हों तो पुत्रोत्पत्ति होती ही नहीं, यदि हो भी तो शीघ्र ही वह नष्ट हो जाती है।

पञ्चमे मङ्गलो जातं हन्ति जातं सुनिश्चितम्।
हतापत्यं मृतापत्यं कुरुते तत्र भास्करः ॥ ३३० ॥
राहुर्मन्दोऽथवा केतुः पञ्चमे गर्भनाशकः।

सुधा—पञ्चमभावस्थ मंगल उत्पन्न जातक को नाश करने वाले होते हैं। पञ्चम-भावस्थ सूर्य मनुष्य को हतापत्य (उत्पन्न होकर मर जाने वाला) या मृतापत्य (मरा हुआ ही पैदा होने वाला) बनाता है। अर्थात् जिस जातक के पञ्चमभाव में सूर्य रहे तो उसे सन्तान होकर मर जाय या मरी हुई सन्तान पैदा होती है। पञ्चम में शनि, राहु या केतु गर्भनाशक होते हैं।

सुतेशे परमोच्चस्थे सशुभे पापवर्जिते ॥ ३३१ ॥
पञ्चमे पुरुषांशस्थे जातोऽनेकसुतो भवेत्।
लग्नत्रिकोणदशमैकादशप्रमदागताः ॥ ३३२ ॥
बुधेज्यकवयो नैजगेहतुङ्गगतास्तदा।
जायते नियतं तस्य पुत्रो बुधसमः सुधीः ॥ ३३३ ॥
सुताङ्गपौ हि सुतगावेकद्रेष्काणगावपि।
बलिनौ यदि विद्येतां शीघ्रं तस्य सुतागमः ॥ ३३४ ॥
अथवा पञ्चमे लग्ने दशमे बलसंयुते।
गुरौ, वा सशुभे लग्ने सुतेऽपि सुतमादिशेत् ॥ ३३५ ॥

सुधा—परमोच्चस्थ पञ्चमेश शुभग्रह से युक्त तथा पापग्रहरहित होकर पुंग्रह के नवांशस्थ होकर पञ्चमभाव में हों तो जातक अनेक पुत्रों का सुख पाता है। अपनी

राशि या अपने उच्चस्थ बुध, गुरु, शुक्र लग्न पञ्चम, नवम, दशम, एकादश या सप्तम भावस्थ हों तो उसे राजा के समान तथा विद्वान् पुत्र पैदा होता है। बली लग्नेश तथा पञ्चमेश एकद्रेष्काणस्थ होकर पञ्चमभावगत हों तो उसे शीघ्र पुत्रोत्पत्ति होती है अथवा बली गुरु पञ्चम लग्न या दशम में हों या लग्न तथा पञ्चम में शुभग्रह हों तो भी शीघ्र पुत्रोत्पत्ति होती है।

पञ्चमे पुङ्ग्रहाणां स्युर्यावतां दृष्टयस्तथा।
स्त्रीग्रहाणाञ्च, तावन्तः पुत्राः कन्या यथाक्रमम् ॥ ३३६ ॥
यत्संख्यकनवांशे स्यात् पुत्राधीशो हि तत्समाः।
पुत्राः पुत्र्यश्च विज्ञेयाः पुंस्त्रीग्रहनवांशतः ॥ ३३७ ॥
यावद्भिः पापखेटैः स्युर्दृष्टाः सुतनवांशकाः।
गर्भाः नश्यन्ति तावन्तः शुभैश्चेन्नयुतेक्षिताः ॥ ३३८ ॥

सुधा—पञ्चमभाव पर जितने पुंग्रहों की दृष्टि हो उतने पुत्र तथा जितने स्त्रीग्रहों की दृष्टि हों उतनी कन्याएँ होती हैं। पञ्चमेश यत्संख्यक नवांश में हों तो उतने पुत्र तथा कन्याएँ पुंस्त्रीग्रहों के नवांश के द्वारा कहना चाहिए। अर्थात् पञ्चमेश यत्संख्यक पुंग्रह के नवांश में हो तो उतने पुत्र तथा यत्संख्यक स्त्रीग्रह के नवांश में हों तो उतनी कन्याएँ कहना चाहिए। पञ्चमभाव के नवांश को जितने पापग्रह देखें उतने गर्भों का विनाश हो जाता है, यदि शुभग्रहयोग या शुभग्रहदृष्टि उस पर नहीं हो।

पञ्चमे बलिनः खेटाः पुत्रपुत्रीप्रदाः स्मृताः।
बली रविः पञ्चमगः पुत्रमेकं तु वा त्रयम् ॥ ३३९ ॥
शशी चतुष्टयं भौमस्त्रितयं शशिजस्तथा।
पञ्चकं कन्यकानां वै दातारः क्रमशः स्मृताः ॥ ३४० ॥
बली गुरुः पञ्चमगः पञ्चपुत्रप्रदायकः।
शुक्रः पञ्चमगः कन्याषट्कं किं वा चतुष्टयम् ॥ ३४१ ॥
रविजः पुत्रमेकं वै दद्यात् पञ्चमगो बली।

सुधा—पञ्चमभावस्थ बली ग्रह पुत्र या पुत्री के उत्पादक होते हैं। पञ्चमस्थ बली सूर्य एक या तीन पुत्रों को देते हैं। इसी तरह पञ्चमस्थ बली चन्द्र चार कन्याएँ, बली मंगल तीन कन्याएँ, बली बुध पाँच कन्याएँ देते हैं। बली गुरु पञ्चमस्थ होने पर पाँच पुत्रों को, पञ्चमस्थ बली शुक्र छः या चार कन्याएँ और बली शनि पञ्चमगत होने पर एक पुत्र देने वाले होते हैं।

जनने यस्य रन्ध्रस्थौ स्वर्क्षगौ शनिभास्करौ ॥ ३४२ ॥
वन्ध्या भार्या सदोषा चेत्तत्रस्थौ चन्द्रचन्द्रजौ।
जीवशुक्रौ वाऽपि भौमोऽष्टमस्थो यस्य जन्मनि ॥ ३४३ ॥
मृतापत्या भवेत्तस्य भार्या, शान्त्या तु शं भवेत्।
हरिवंशश्रुतिः सूर्यकृते, भौमशनैश्चरे ॥ ३४४ ॥

रुद्रपाठो राहुदोषे कन्यादानं शुभप्रदम् ।
केतुदोषे गवीदानमुदितं सन्ततिप्रदम् ।। ३४५ ।।
हरिवंशश्रुतिर्वैद्यनाथयोश्चरणान्तिके ।
सपत्नीकस्य नियतं मनोवाञ्छितसिद्धिदम् ।। ३४६ ।।

सुधा—जिसके जन्मसमय में स्वभवनस्थ शनि-सूर्य अष्टमस्थ हों तो उसकी स्त्री वन्ध्या होती है । यदि अष्टम में चन्द्रमा या बुध हो तो उसकी स्त्री दोषपूर्णा होती है । गुरु, शुक्र या मंगल अष्टमस्थ हों तो उसकी पत्नी मृतापत्या (मृत सन्तान पैदा करने वाली) होती है । शान्ति करने से कल्याण सम्भव है । सूर्यजन्य दोष में हरिवंश-श्रवण, शनि-भौमकृत दोष में रुद्रपाठ, राहुकृत दोष में कन्यादान, केतुजन्य दोष में गोदान शुभप्रद तथा सन्ततिप्रद है ।

श्रीवैद्यनाथचरण के निकट सपत्नीक यदि हरिवंश-श्रवण किया जाय तो निश्चयतः मनोवाञ्छित सिद्धि मिलती है ।

षष्ठभावविचारः

रोगव्यसनशत्रूणां मातुलव्रणयोस्तथा ।
समरे विजयं चापि षष्ठभावाद् विचिन्तयेत् ।। ३४७ ।।
रोगाधीशे हि लग्नस्थे सखले रन्ध्रगेऽथवा ।
विकलो हि व्रणव्रातैर्जायते नियतं नरः ।। ३४८ ।।
षष्ठेशे लग्नगे वापि षष्ठस्थानगते गुरौ ।
शत्रुक्षयकरो जातः समरे विजयी सदा ।। ३४९ ।।
रविचन्द्रादयः खेटाः षष्ठेशास्तनुरन्ध्रगाः ।
तत्तत्स्थानविशेषेण जनानां व्रणकारकाः ।। ३५० ।।
शिरोदेशे रविश्चन्द्रो मुखे कण्ठे धरासुतः ।
बुधो वक्षःस्थले जीवो नाभौ पृष्ठे तु भार्गवः ।। ३५१ ।।
शनिर्नयनयो राहुरोष्ठेऽङ्घ्रौ केतुरीरितः ।

सुधा—रोग, व्यसन, शत्रु, मामा, व्रण तथा समर में विजय का विचार षष्ठभाव से करना चाहिए । रोगाधीश (षष्ठेश) लग्नस्थ होकर पापग्रहों से युक्त हों या सपाप षष्ठेश अष्टमस्थानगत हों तो जातक व्रणसमूहों से निश्चयतः विकल रहता है । षष्ठेश लग्नस्थ हों या षष्ठस्थ गुरु हों तो जातक शत्रुनाशक होता है । रणक्षेत्र में उसे सदैव विजय प्राप्त होती रहती है ।

रवि-चन्द्रादिक सभी ग्रह षष्ठेश होकर लग्न या अष्टम में हों तो तत्तत्स्थान-विशेष में व्रणकारक होते हैं । रवि षष्ठेश होकर लग्न या अष्टम में हों तो शिरोदेश में, इसी तरह चन्द्रमा षष्ठेश होकर लग्न या अष्टम में हों तो मुख में; इसी रूप में मंगल हों तो कण्ठ में, बुध हों तो वक्षःस्थल (छाती) में, गुरु हों तो नाभि में, शुक्र

हों तो पृष्ठदेश में, शनि हों तो नयनद्वय में, राहु हों तो होठ में और केतु हों तो पैर में व्रण कहना चाहिए।

लग्नेशेऽपि च रन्ध्रेशे षष्ठगे नेत्ररोगभाक्॥ ३५२॥
भृगावरौ दक्षनेत्रे पादे रोगः शनावरौ।
तमोग्रहे तु षष्ठस्थे रोगो दन्तोष्ठयोः स्मृतः॥ ३५३॥
कुजज्ञराशिगेऽङ्गेशेऽरिणा दृष्टे गुदारुजः।
सपापेन्दौ लग्नसंस्थेऽथवा षष्ठे सदा रुजः॥ ३५४॥
केन्द्रे सपापे सत्खेटदृष्टिहीनेऽपि रोगयुक्।
शत्रुक्षेत्रगतो नीचस्थितो वाऽस्तङ्गतो ग्रहः॥ ३५५॥
वक्री वा षष्ठगः कश्चिद् यदि जातस्तदा भवेत्।
पीडितः शत्रुभिश्चापि व्रणव्रातैर्विशेषतः॥ ३५६॥

सुधा—लग्नेश तथा अष्टमेश षष्ठभावस्थ हों तो नेत्ररोग कहना चाहिए। इस प्रकार शुक्र यदि लग्नेश या रन्ध्रेश होकर षष्ठस्थ हों तो दाहिने नेत्र में, शनि यदि लग्नेश या अष्टमेश होकर षष्ठस्थ हों तो पैर में, इसी तरह राहु-केतु षष्ठस्थ हों तो दाँत तथा होठ में रोग कहना चाहिए।

लग्नेश मंगल या बुध के राशिगत होकर अपने शत्रुग्रह से देखे जाँय तो गुदा में रोग होता है। सपाप चन्द्रमा लग्न या षष्ठस्थ हों तो जातक सदैव रोगाक्रान्त रहता है। शत्रुक्षेत्रगत या नीचराशिस्थ अथवा अस्तंगत कोई भी ग्रह यदि षष्ठस्थ हों या वक्री हों तो जातक व्रणसमूह तथा शत्रुओं से पीड़ित रहता है।

जायाभावविचारः

स्वोच्चे स्वभे तु जायेशे पूर्णं जायासुखं स्मृतम्।
त्रिकगे तु भवेद्रुग्णा भार्या नैव सुखं दिशेत्॥ ३५७॥
जायेशे त्रिकगे जायाक्लेशोऽधिकतरो भवेत्।
जायास्थानगते शुक्रे जातः कामी विशेषतः॥ ३५८॥
जायेशेऽस्तङ्गते शत्रुनीचभस्थेऽतिदुर्बले।
जायते बहुधा रुग्णा मृता वा तस्य भामिनी॥ ३५९॥
कवेः शनेर्वा राशिस्थे जायेशे शुभवीक्षिते।
स्वोच्चगे सौम्यदृष्टे वा बहुभार्यो भवेन्नरः॥ ३६०॥
सप्तमस्थे कुजे जातो वन्ध्यासक्तोऽथ चन्द्रगे।
वेश्याद्या नीचजात्या वाऽऽसक्तो वापि वणिक्स्त्रिया॥ ३६१॥
तमो ग्रहे शनौ वापि सप्तमस्थे रजस्वला।
सक्तो जातो भवेद् वापि नीचजात्या विशेषतः॥ ३६२॥

जायेशे स्वोच्चगे सौम्ययुक्ते जायागृहेऽपि वा ।
सबले तनुपे तर्हि भार्या तस्य गुणान्विता ।। ३६३ ।।
पुत्रपौत्रादिसंयुक्ता भवेदिति सुनिश्चितम् ।

सुधा—जायेश अपने उच्च या अपने भवनस्थ हों तो जायासुख पूर्णरूपेण होता है। जायेश यदि त्रिक(६।८।१२)स्थ हों तो जाया रुग्णा होती है और जायासुख उसे नहीं होता है। जायेश यदि त्रिकस्थ हों तो पत्नी अधिकतर रुग्ण होती है। जाया स्थान में यदि शुक्र हों तो जातक अधिक कामुक होता है।

जायेश अस्तंगत, शत्रुक्षेत्र या नीचराशिस्थ होने के कारण दुर्बल हों तो उसकी स्त्री बहुधा रुग्ण या मृत हो जाती है। जायेश शुक्र या शनि के राशिस्थ होकर शुभग्रह से युत या दृष्ट हों या उच्चस्थ होकर शुभदृष्ट हों तो जातक अनेक स्त्री वाला होता है। सप्तमस्थ मंगल हों तो जातक वन्ध्यासक्त होता है। सप्तमस्थ बुध रहे तो वेश्या या नीच जाति की स्त्री, किंवा बनियों की स्त्री में जातक आसक्त रहता है। राहु, केतु या शनि सप्तमस्थ हों तो रजस्वला के साथ, विशेषतः नीच जाति की रजस्वला के साथ जातक को आसक्त समझना चाहिए। जायेश अपने उच्च या जाया स्थान में शुभग्रह युक्त हों, लग्नेश भी प्रबल हों तो जातक की स्त्री गुणवती तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त होती है।

द्वित्र्यादिभार्यायोगः

सपापे सप्तमेशे तु नीचे वा पापराशिगे ।। ३६४ ।।
बुधे शनौ वा तत्रस्थे जातो भार्याद्वयं वहेत् ।
लग्नेशः सप्तमेशश्च लग्ने वा सप्तमे स्थितौ ।। ३६५ ।।
अथवा सप्तमे पापोऽष्टमे वा व्ययगे कुजे ।
व्ययेशेऽदृश्यचक्रार्धे विवाहद्वयमादिशेत् ।। ३६६ ।।
सशुभः सप्तमेशश्चेत् त्रिकगः सप्तमः पुनः ।
सपापो वाऽष्टमे जायास्थाने वा द्वादशे कुजः ।। ३६७ ।।
सप्तमेशदृशा हीनस्तदापि स्त्रीद्वयं दिशेत् ।
द्वितीयसप्तमौ पापयुक्तौ वा पापवीक्षितौ ।। ३६८ ।।
निर्बलौ भवतस्तर्हि विवाहद्वयमादिशेत् ।
तत्रैव बहवः पापाः पापदृष्टौ च तौ यदा ।। ३६९ ।।
विवाहत्रितयं तर्हि जातकस्य विनिर्दिशेत् ।
लग्ने धने सप्तमे वा पापे नीचे कलत्रपः ।। ३७० ।।
अस्तङ्गतो वा तत्रापि जातकः स्त्रीत्रयं वहेत् ।

सुधा—सपाप सप्तमेश नीच या पापग्रह की राशि में बुध या शनि के साथ हों तो जातक दो स्त्री वाला होता है। लग्नेश तथा सप्तमेश लग्न या सप्तम में स्थित हों, अथवा सप्तम में पापग्रह, अष्टम तथा द्वादश में मंगल हों, व्ययेश अदृश्य चक्रार्ध में

रहें तो भी जातक स्त्रीद्वय वाला होता है। शुभग्रह सहित सप्तमेश यदि त्रिकस्थ हों और सप्तमभाव भी सपाप हों या सप्तम, अष्टम तथा द्वादश में स्थित मंगल पर सप्तमेश की दृष्टि नहीं रहे तो भी जातक पत्नीद्वय का वहन करे। द्वितीय, सप्तम दोनों पापयुक्त या पापदृष्ट होकर निर्बल हों तो भी जातक को दो स्त्रियाँ होती हैं। वहीं बहुत से पापग्रह हों और उन दोनों पर पापग्रह की दृष्टि भी रहे तो जातक को तीन विवाह का निर्देश करे। लग्न द्वितीय या सप्तम में पापग्रह हों, जायेश नीच-राशिस्थ हों या अस्तंगत हों तो भी जातक को तीन स्त्रियाँ होती हैं।

विवाहसमयः

स्फुटजायालग्नपयोर्योगो राश्यादिको भवेत् ॥ ३७१ ॥
आगते गोचरगुरौ विवाहः प्रायशो भवेत्।
जायाकारकजायेशमध्ये यो बलवान् भवेत् ॥ ३७२ ॥
तद्दशाऽन्तर्दशायां वै विवाहः कीर्त्तितो बुधैः।
चन्द्रराशिपतिः स्पष्टः स्फुटाष्टमपसंयुतः ॥ ३७३ ॥
राश्यादिके गते जीवे विवाहः प्रायशो भवेत्।

सुधा—स्फुटलग्न तथा स्पष्ट जायाभाव का जो राश्यादिक हो उसमें गोचर के गुरु के आने से प्रायशः विवाह होता है। जायाकारक तथा जायेश में जो बलवान् हों तो उस दशा, अन्तर्दशा में विवाह का होना पण्डितों ने कहा है। स्पष्ट चन्द्रराशिपति में स्फुट अष्टमेश के योग से जो राश्यादिक आवे उसमें गोचर के गुरु के आने से विवाह सम्भव होता है।

अष्टम(मृत्यु)भावविचारः

लग्नेऽष्टमेशो बाल्ये तु विविधक्लेशकृन्नृणाम् ॥ ३७४ ॥
पश्चादतिसुखी नित्यं धर्मशीलो भवेन्नरः।
पापोऽष्टमेशो लाभे चेदल्पायुष्यप्रदो भवेत् ॥ ३७५ ॥
स एव सशुभस्तत्र दीर्घमायुः प्रयच्छति।
सपापो द्वादशे वापि षष्ठेऽल्पायुष्पदो नृणाम् ॥ ३७६ ॥
किं वोभयत्र लग्नेशसहितोऽपि तथाविधः।
अष्टमेशोऽथवा मन्दो दीर्घायुष्यकरो मृतौ ॥ ३७७ ॥
वित्ते मृत्युपतिर्नूनं तस्करत्वं प्रयच्छति।
अष्टमेशोऽपि लग्नेशः प्रबलौ मृतिमास्थितौ ॥ ३७८ ॥
षष्ठस्थानस्थितौ वापि सङ्ग्रामे विजयप्रदौ।
तावेव निर्बलौ तत्र स्थितौ मृत्युकरौ रणे ॥ ३७९ ॥

सुधा—अष्टमेश लग्नस्थित होने पर बाल्यकाल में विविध क्लेशकर और बाल्यावस्था के बाद सौख्य एवम् धर्मशीलकारक होते हैं। पाप अष्टमेश यदि लाभ-

स्थानगत हों तो जातक अल्पायु होता है। वही अष्टमेश शुभग्रह के साथ लाभस्थानगत हों तो जातक दीर्घायु होता है। सपाप अष्टमेश द्वादश या षष्ठस्थानस्थ हों तो अल्पायुष्यकर होते हैं, या दोनों स्थानों में लग्नेश के साथ भी रहे तो भी अल्पायुष्यकर ही होते हैं। अष्टमेश या शनि अष्टमस्थ होने पर दीर्घायुष्यप्रद होते हैं। धनस्थ अष्टमेश चौर्यवृत्तिप्रद होते हैं। प्रबल अष्टमेश तथा लग्नेश अष्टम या षष्ठ स्थानगत हों तो जातक संग्राम में विजयी होता है। निर्बल वे दोनों उन स्थानों में स्थित होने पर भी संग्राम में मृत्युकारक होते हैं।

दीर्घायुर्योगाः

षष्ठेशो वा व्ययेशश्चेत् षष्ठे वापि व्यये स्थितः।
लग्ने वाप्यष्टमस्थाने दीर्घायुष्यकरो भवेत्॥ ३८०॥
लग्नेशोऽप्यष्टमेशश्च पञ्चमेशस्तथा निजे।
क्षेत्रे निजनवांशे वा मित्रक्षेत्रेऽपि संस्थितौ॥ ३८१॥
दीर्घायुष्यकरावेवं लग्नाष्टमपती तथा।
दशमेशशनी केन्द्रत्रिकोणाय गता अपि॥ ३८२॥
बली लग्नपतिः सौम्यैः केन्द्रगैर्यदि वीक्षितः।
अथवा स्वोच्चराशिस्थे लग्नेशे रन्ध्रगे गुरौ॥ ३८३॥
चन्द्रे लाभगते चापि दीर्घायुष्यमसंशयम्।

सुधा—षष्ठेश तथा व्ययेश षष्ठ या द्वादश स्थान में लग्न या अष्टम स्थान में रहें तो जातक दीर्घायु होता है। लग्नेश अष्टमेश और पञ्चमेश अपने क्षेत्र, अपने नवांश अथवा मित्रभवन में रहें तो भी जातक दीर्घायु होता है। इसी तरह लग्नेश अष्टमेश, दशमेश तथा शनि केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थ हों तो भी जातक दीर्घायु होता है। बली लग्नेश यदि केन्द्रस्थ शुभग्रहों से देखे जायँ अथवा लग्नेश उच्चराशिस्थ हों, गुरु अष्टमस्थ हों और चन्द्रमा लाभस्थानगत हों तो भी जातक दीर्घायु होता है।

अल्पायुर्योगाः

दुर्बले लग्नपे केन्द्रगतेऽष्टमपतौ सति॥ ३८४॥
अल्पायुर्जायते जातो द्वात्रिंशत् परमं वयः।
अष्टमेशे तु नीचस्थे मृतौ पापसमन्विते॥ ३८५॥
निर्बले लग्नपे जातः स्वल्पायुर्जायते ध्रुवम्।
सपापे रन्ध्रपे रन्ध्रे पापग्रहसमन्विते॥ ३८६॥
व्ययेऽपि क्रूरसंयुक्ते स्वल्पायुर्जायते नरः।
केन्द्रत्रिकोणगाः पापाः षष्ठाष्टमगताः शुभाः॥ ३८७॥
लाभे नीचस्थरन्ध्रेशे जातः सद्यो विनश्यति।
पञ्चमे रन्ध्रपे रन्ध्रे पापग्रहसमन्विते॥ ३८८॥

अथवा रन्ध्रपे रन्ध्रराशिगे हिमगौ पुनः ।
सपापे सौम्यदृग्हीने जातं स्वल्पायुषं वदेत् ।। ३८९ ।।

सुधा—लग्नेश दुर्बल और अष्टमेश केन्द्रस्थ हों तो जातक बत्तीस वर्ष परमायु वाला स्वल्पायु होता है । अष्टमेश नीचस्थ हों, अष्टम भवन सपाप हों, लग्नेश भी निर्बल हों तो जातक स्वल्पायु होता है । अष्टमेश सपाप हों और अष्टम तथा द्वादश भी पापयुक्त हों तो भी जातक स्वल्पायु होता है । पापग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों, शुभग्रह छठे या आठवें में हों और नीचस्थ अष्टमेश यदि आयभावस्थ हों तो जातक शीघ्र दिवङ्गत हो जाता है । अष्टमेश पञ्चम में और अष्टम पापयुक्त हों अथवा अष्टमेश अष्टम में और चन्द्रमा सपाप तथा शुभदृष्टिरहित हों तो जातक स्वल्पायु होता है ।

नवम(भाग्य)भावविचारः

गुरौ भाग्यगते केन्द्रसंस्थिते धर्मभावपे ।
सबले लग्ननाथे तु बहुभाग्ययुतो नरः ।। ३९० ।।
लग्नस्थो भाग्यपो जीवदृष्टो वा सुखलग्नपौ ।
पश्यतः स्वस्वगेहं चेत् पूर्णदृष्टया तदार्भकः ।। ३९१ ।।
उदारो राजवन्द्यश्च सर्वसम्पत्समन्वितः ।
सुखेशे रन्ध्रगे जातो भाग्यहीनः प्रजायते ।। ३९२ ।।
भाग्येशे लाभभावस्थे भाग्यवानुदितो बुधैः ।

सुधा—गुरु भाग्यस्थानस्थ तथा भाग्येश केन्द्रस्थ और लग्नेश प्रबल हों तो जातक भाग्यवान् होता है । लग्नस्थ भाग्येश गुरुदृष्ट हों या सुखेश तथा लग्नेश अपने-अपने घर को अर्थात् सुखेश सुखस्थान को और लग्नेश लग्न को पूर्णदृष्टि से देखें तो जातक उदार, राजवन्द्य तथा सर्वसम्पत्तिशाली होता है । सुखेश अष्टमस्थ हों तो जातक भाग्यहीन होता है और भाग्येश लाभस्थानगत हों तो जातक भाग्यवान् होता है ।

वित्तेशे वित्तगे लग्नपतिर्लग्नगतः सुखे ।। ३९३ ।।
सुखेशो धर्मपो लग्ने यदि तर्हि प्रजायते ।
राजसिंहासनारूढो वरोऽतिविदितो नरः ।। ३९४ ।।
गुरुणा भृगुणा वापि युक्तो भाग्यपतिः सुखे ।
स्वगृहे वा तदा जातः सर्वसम्पत्समन्वितः ।। ३९५ ।।
सुखेशसहितौ जीवकवी केन्द्रत्रिकोणगे ।
लाभभावगतौ वापि जातः सौभाग्यवान् भवेत् ।। ३९६ ।।
भाग्येशे केन्द्रगे भाग्ये शुभग्रहयुतेक्षिते ।
अथवा भाग्यपतिना दृष्टे जातोऽतिभाग्यवान् ।। ३९७ ।।

लग्ने वित्ते पञ्चमे वा ग्रहे बलिनि संस्थिते ।
वित्तेशे वित्तगे वापि राज्यगे भाग्यवान्नरः ।। ३९८ ।।
सुखेशे नवमेशे च वित्तगे वा गुरौ भृगौ ।
तदापि जायते जातो धनाढ्योऽतिसुखान्वितः ।। ३९९ ।।

सुधा—धनेश धनस्थ, लाभेश लाभस्थ, सुखेश सुखस्थ तथा भाग्येश लग्नस्थ हों तो जातक सिंहासनारूढ श्रेष्ठ तथा विख्यात व्यक्ति होता है। गुरु या शुक्र से युक्त भाग्येश सुखस्थान अथवा अपने भवनस्थ हों तो जातक सर्वसम्पत्समन्वित होता है। सुखेशयुक्त गुरु या शुक्र केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थ हों तो जातक भाग्यशाली होता है। भाग्येश केन्द्रस्थ हों, भाग्यस्थान में शुभग्रह का योग अथवा शुभग्रह की दृष्टि हो या भाग्येश की दृष्टि हों तो भी जातक परम भाग्यवान् होता है। लग्न, वित्त या पञ्चम में बली ग्रह विद्यमान हों और धनेश धन या राज्यस्थान में हों तो भी मनुष्य भाग्यवान् होता है। सुखेश नवमेश धनभावगत हों अथवा वित्तस्थान में गुरु-शुक्र हों तो भी जातक भाग्यशाली होता है।

भाग्येशो जीवदृष्टश्चेत् त्रिकोणभवने स्थितः ।
अथवा लाभगस्तर्हि जातो भवति भाग्यवान् ।। ४०० ।।
लग्नेशः स्वोच्चगो भाग्यपतिः केन्द्रत्रिकोणगः ।
अथवा लग्नधर्मेशौ सुखे जातोऽतिभाग्यवान् ।। ४०१ ।।
सुखधर्मपती लाभे लग्नेशे भाग्यसंस्थिते ।
भाग्येशे पञ्चमे वापि जातोऽतीव सुखान्वितः ।। ४०२ ।।
जीवः स्वोच्चगतो भाग्ये लग्ने वापि व्यवस्थितः ।
जातः सौभाग्यशीलोऽसौ सद्गतिं प्राप्नुयादपि ।। ४०३ ।।

सुधा—गुरुदृष्ट भाग्येश नवम, पञ्चम अथवा लग्नगत हों तो जातक भाग्यशाली होता है। लग्नेश अपने उच्च में भाग्येश केन्द्र या त्रिकोण में या लग्नेश तथा भाग्येश सुखस्थान में हों तो जातक परम भाग्यशाली होता है। सुखेश तथा भाग्येश लाभस्थान में और लग्नेश भाग्यस्थान में हो अथवा भाग्येश पञ्चम में हो तो भी जातक अत्यधिक सुखी होता है। उच्चस्थ गुरु भाग्यस्थान या लग्न में हों, तो सौभाग्यशील जातक अन्त में सद्गति पाता है।

भाग्येशे नीचगे वास्ते विक्रमेशेऽतिदुर्बले ।
कर्माधिपेन सहिते जातो भिक्षाशितां व्रजेत् ।। ४०४ ।।
पञ्चमस्थानगे राहौ भाग्येशे मृतिमस्थिते ।
अथवा नीचराशिस्थे भिक्षुको जायते नरः ।। ४०५ ।।
शनौ भाग्यगते तत्र सुधांशुसहितेऽपि च ।
लग्नेशे नीचगे जातो भिक्षुको नात्र संशयः ।। ४०६ ।।

सुधा—भाग्येश नीचस्थ या अस्तंगत हों और दुर्बल विक्रमेश कर्मेश के साथ हों तो जातक भिक्षाशी होता है। राहु पञ्चम में, भाग्येश अष्टम या नीच राशि में हों तो जातक भिक्षुक होता है। शनि भाग्यस्थान में चन्द्रमा के साथ हों और लग्नेश नीचस्थ हों तो भी जातक निःसन्देह भिक्षुक होता है।

कर्म(दशम)भावविचारः

स्वोच्चस्वभनवांशस्थे कर्मेशे बलसंयुते।
पुण्यशीलो यशस्वी च पितृसौख्ययुतो नरः॥ ४०७॥
बुधजीवौ कर्मगेहे कर्मेशेन समन्विते।
शिवालयतडागादिकर्त्ता जातस्तदा भवेत्॥ ४०८॥
निजोच्चगगुरौ कर्मस्थाने भृगुसमन्विते।
शुभ्रकीर्तियुतो जातो विख्यातः क्षितिमण्डले॥ ४०९॥
स्वोच्चस्थकर्मगे जीवसंयुक्ते भाग्यपेऽपि च।
कर्मराशिगते जातो भूरिमानप्रतापवान्॥ ४१०॥
अन्योन्यं लाभकर्मेशौ कर्मलाभगतौ यदा।
अथवा केन्द्रगौ तौ च जातः सौख्ययुतो भवेत्॥ ४११॥
गुरुणा सहिते कर्मपतौ बलिनि मीनगे।
जातको नियतं तर्हि वस्त्राभरणसौख्ययुक्॥ ४१२॥

सुधा—बली राज्येश (कर्मेश) अपने उच्च या अपनी राशिस्थ नवांश में हों तो जातक पुण्यशील, यशस्वी तथा पितृसौख्ययुक्त होता है। बुध-गुरु कर्मस्थान में कर्मेश के साथ हों तो जातक शिवमन्दिर, तालाब आदि का निर्माता होता है। अपने उच्चस्थ गुरु कर्मस्थान में शुक्र के साथ हों तो शुभ्रयशोयुक्त जातक परम विख्यात होता है। कर्मेश अपने उच्च में गुरु के साथ हों, भाग्येश कर्मस्थान में हों तो जातक प्रचुर सम्मान तथा प्रतापवान् होता है। लाभेश तथा कर्मेश परस्पर एक-दूसरे के स्थान में या दोनों केन्द्रस्थ हों तो भी जातक सौख्यसम्पन्न होता है। गुरु सहित बली कर्मेश यदि मीनस्थ हों तो जातक वस्त्राभरण से परिपूर्ण एवं सुखी होता है।

कर्मपे शुभसंयुक्ते शुभस्थाने व्यवस्थिते।
राजतो वा वणिग्वृत्त्या लाभो हार्निर्विपर्यये॥ ४१३॥
लाभराशिगते कर्मपतौ लाभगतौ तनौ।
कर्मगे भार्गवे जातो रत्नाद्यैः पूरितो भवेत्॥ ४१४॥
कर्मेशे स्वोच्चगे केन्द्रत्रिकोणभवनस्थिते।
दृष्टे जीवेन वा युक्ते सत्कर्मसहितो नरः॥ ४१५॥
लाभगे कर्मनाथे तु लाभेशेन समन्विते।
केन्द्रत्रिकोणगे चन्द्रे सत्कर्मनिरतो जनः॥ ४१६॥

चन्द्रे कर्मगते कर्मपतौ चन्द्रात्त्रिकोणगे ।
लाभेशे केन्द्रभावस्थे कीर्त्तिमान् जायते नरः ॥ ४१७ ॥
कर्मभावगते लग्नपतौ बलिनि कर्मपे ।
वाचस्पतियुते वापि दृष्टे कीर्त्तियुतो नरः ॥ ४१८ ॥
कर्मशे भाग्यगे लग्नपतौ कर्मभसंस्थिते ।
चन्द्रे लग्नात्त्रिकोणस्थे यशस्वी जायते नरः ॥ ४१९ ॥

सुधा—कर्मेश शुभसंयुक्त होकर शुभस्थान में हों तो राजा से या वाणिज्य वृत्ति से लाभ होता है। वही कर्मेश इसके विपरीत पापयुक्त होकर पापस्थानस्थ हों तो हानि होती है। कर्मेश लाभस्थ और लाभेश लग्नगत हों, साथ ही शुक्र दशमस्थानगत हों तो जातक रत्नादि से परिपूर्ण होता है। स्वोच्चस्थ कर्मेश केन्द्र या त्रिकोण में हों, साथ ही गुरुयुक्त या गुरुदृष्ट हों तो जातक सत्कर्म में लीन रहता है। लाभस्थ कर्मेश लाभेश के साथ हों और चन्द्रमा केन्द्र या त्रिकोण में हों तो भी जातक सत्कर्मरत होता है। चन्द्रमा कर्मस्थ और कर्मेश चन्द्रमा से नवम या पञ्चम में हों, लग्नेश भी केन्द्रस्थ हों तो जातक यशस्वी होता है।

लग्नेश कर्मस्थ और बली कर्मेश गुरुयुक्त या गुरुदृष्ट हों तो भी जातक कीर्त्तिमान् होता है। कर्मेश भाग्यस्थान में और लग्नेश कर्मस्थान में तथा चन्द्रमा लग्न से नवम या पञ्चम में हों तो भी जातक यशस्वी होता है।

अन्ये अशोभनयोगाः

मन्देऽर्कसहिते पापनवांशे कर्मणि स्थिते ।
जायते शत्रुजनिताऽपकीर्त्तिर्वितता भुवि ॥ ४२० ॥
पापयुक्ते हि दशमे सप्तमे च खलान्विते ।
जातोऽपकीर्त्तिसहितो विदूषकपदं भजेत् ॥ ४२१ ॥
राहुयुक्ते हि कर्मेशे जन्मतो मृतिमास्थिते ।
महामूर्खो भवेज्जातोऽपकीर्त्तिसहितोऽपि च ॥ ४२२ ॥
शनिभौमयुते कर्मपतौ सप्तमभे स्थिते ।
सपापे वित्तपे जातः कृच्छ्रादुदरपूरकः ॥ ४२३ ॥
लाभस्थाने राहुभौमशनिसूर्यैरधिष्ठिते ।
जातको नियतं कर्मध्वंसकारी प्रजायते ॥ ४२४ ॥
शनौ कर्मगते नीचस्थितखेटसमन्विते ।
पापान्विते कर्मनाथे कर्महीनो भवेन्नरः ॥ ४२५ ॥
रन्ध्रराशिगते कर्मपतौ पापे च कर्मगे ।
कर्मतः कर्मगे पापे कर्मवैकल्यकृन्नरः ॥ ४२६ ॥

सुधा—सार्क शनि पापग्रह के नवांशस्थ होकर कर्मभावस्थ हों तो जातक शत्रुकृत

दुर्यशपूर्ण होता है। सप्तम तथा दशम पापयुक्त हों तो दुर्यशपूर्ण जातक विदूषक होता है। कर्मेश यदि राहुयुक्त होकर अष्टमभावस्थ हो तो जातक मूर्ख तथा दुर्यशपूर्ण होता है। शनि-मंगलयुक्त कर्मेश सप्तम में स्थित हों और धनेश सपाप हों तो जातक किसी तरह कठिनाई से अपना उदर-पोषण कर पाता है। राहु, सूर्य, शनि एवं मंगल लाभस्थान में हो तो जातक कर्मध्वंसी होता है। कर्मस्थान में शनि नीचस्थ पाप के साथ हों और कर्मेश भी सपाप हों तो जातक कर्महीन (अभागा) होता है। कर्मेश अष्टम में और कर्मभाव सपाप हों, साथ ही कर्म से कर्मस्थान (सप्तम) पापयुक्त हों तो जातक दौर्भाग्यपूर्ण होता है।

अथ लाभभावविचारः

लाभेशे सबले तुङ्गभवनस्थे शुभेऽशुभे।
नियतं सर्वसम्पत्तिलाभो भवति जन्मिनाम् ॥ ४२७ ॥
दुर्बले नीचगे लाभपतौ रविकरावृते।
त्रिकगे नैव लाभः स्यात् केन्द्रकोणेषु यत्नतः ॥ ४२८ ॥
लाभभं रविणा युक्तं दृष्टं वा यदि जन्मनि।
राजतो दस्युतो वापि लाभः पशुधनादपि ॥ ४२९ ॥
चन्द्रेण युक्तं दृष्टं वा लाभो जलजवस्तुतः।
भौमेन युक्तं दृष्टं सत् लाभो रत्नप्रवालतः ॥ ४३० ॥
बुधेन युक्तं दृष्टं सत् शिल्पकाव्यप्रबोधतः।
गुरुणा राजतो यज्ञसाधुपूजाबलाद्धनम् ॥ ४३१ ॥
भृगुणा लाभभं युक्तं दृष्टं वा यदि जन्मनि।
गमागमैः शुभ्रवस्त्रराजतक्रयविक्रयैः ॥ ४३२ ॥
भानुजेनेक्षितं युक्तं महिषीलौहनीलजैः।
व्यापारेण भवेल्लाभ इत्युक्तं मुनिपुङ्गवैः ॥ ४३३ ॥

सुधा—शुभ या अशुभ लाभेश बली तथा उच्चस्थ हों तो जातक को सर्वविध सम्पत्तियों का लाभ होता है। दुर्बल, नीचस्थ या रविकिरणावृत (अस्त) लाभेश यदि त्रिकस्थ हों तो कुछ भी लाभ नहीं होता। वही लाभेश दुर्बलादि होने पर भी केन्द्र या कोणस्थ हों तो प्रयत्न करने पर लाभ होता है। लाभभवन रवियुक्त या रविदृष्ट हों तो राजा या चोर-डाकू से तथा पशुधन से लाभ कहना चाहिए। चन्द्रमा से लाभभाव युक्त या दृष्ट होने पर जलज वस्तु जैसे—मछली, मखाना या अन्य पानी में होने वाले पदार्थों से लाभ कहना चाहिए। मंगल से वह युत या दृष्ट हो तो रत्नादि या प्रवाल (मूंगा) के द्वारा लाभ कहना चाहिए। बुध से युक्त या दृष्ट लाभ-भाव रहें तो शिल्पकला या काव्यादि रचना से लाभ होता है। गुरु से यदि वह युत या दृष्ट हो तो राजा, यज्ञ, सद्ज्ञान आदि से वह लाभान्वित होता है। शुक्र से लाभभाव

युत या दृष्ट हों तो यातायात, शुभ्र वस्त्र या चाँदी के क्रय-विक्रय से लाभ कहना चाहिए। शनि से लाभभाव युतदृष्ट होने पर भैंस, लोह, नील के व्यापार से लाभ कहना चाहिए।

लाभेशे लाभगे केन्द्रत्रिकोणे वापि संस्थिते।
अस्तङ्गतेऽपि तुङ्गस्थे बहुलाभं वदेद् बुधः॥ ४३४॥
लाभेशे धनगे केन्द्रकोणगे धनभावपे।
गुरुणा सहिते लाभे भूरिलाभं विनिर्दिशेत्॥ ४३५॥
लाभेशे शुभसंयुक्ते तृतीयभवने सति।
षट्त्रिंशे वत्सरे प्राप्ते लक्षेशो जायते नरः॥ ४३६॥
लाभेशे केन्द्रकोणस्थे शुभग्रहसमन्विते।
चत्वारिंशे तु सम्प्राप्ते प्रचुरं लाभमादिशेत्॥ ४३७॥
गुरुणा संयुते लाभे धने चन्द्रसमन्विते।
भृगुणा संयुते भाग्ये बहुभाग्ययुतो नरः॥ ४३८॥
लाभाल्लाभगते जीवे चन्द्रे चान्द्रिसमन्विते।
लाभेशे लाभभावस्थे लग्नेशेऽपि च तद्गते॥ ४३९॥
धनेशे लाभगे लाभपतौ धनगते सति।
धनेशे लाभभावस्थे लाभेशे भ्रातृभावगे॥ ४४०॥
योगेष्वेतेषु सर्वेषु लाभवान् जायते नरः।
लाभेशे नीचगे वास्ते त्रिके पापसमन्विते॥ ४४१॥
प्रयत्नेऽपि न लाभः स्यात्सौभाग्यरहितो नरः।

सुधा—लाभेश लाभस्थ या केन्द्र-कोणस्थ हो और अस्तङ्गत होने पर भी स्वतुङ्गस्थ हों तो जातक प्रचुर लाभान्वित होता है। लाभेश धनस्थ और धनेश केन्द्र-कोणस्थ हों, लाभस्थान में गुरु हों तो भी प्रचुर लाभ कहना चाहिए। लाभेश शुभग्रह-युक्त होकर यदि तृतीयभावस्थ हों तो छत्तीसवें वर्ष में जातक लक्षाधीश हो जाता है। लाभेश शुभग्रहयुक्त होकर केन्द्र या त्रिकोण में हों तो जातक चालीसवें वर्ष में प्रचुर लाभान्वित होता है। लाभस्थान गुरु से और धनभाव चन्द्रमा से युक्त हो और शुक्र भाग्यभावस्थ हों तो जातक बहुत लाभ(भाग्य)वान् होता है। लाभभाव से एकादश अर्थात् भाग्यस्थान गुरु, चन्द्र तथा चान्द्रि (बुध) हों, लाभेश तथा लग्नेश लाभस्थ हों, धनेश लाभभावगत और लाभेश धनभावगत तथा लाभेश तृतीयभावस्थ हों—इन सभी योगों में जातक लाभ(भाग्य)वान् होता है।

वही लाभेश नीचस्थ हो या अस्त हो और सपाप होकर त्रिकस्थ हों तो प्रयत्न करने पर जातक दरिद्र होता है।

अथ व्ययभावविचारः

व्ययाधीशे व्यये सौम्ययुक्ते दृष्टे स्वतुङ्गगे॥ ४४२॥

स्वराशिगे वा जातस्य सत्कार्येषु सदा व्ययः।
व्ययाधीशः शशी स्वोच्चस्वर्क्षे स्वांशेऽपि वा स्थितः॥ ४४३॥
धर्माय मन्त्रभावेषु गतो वा दिव्यसौख्यकृत्।
व्ययेशः शत्रुनीचांशेऽष्टमे षष्ठेऽपि वा स्थितः॥ ४४४॥
स्त्रीसौख्यरहितं जातं दिव्यभोग्यनिराकृतम्।
व्ययाधिक्यात् सदा क्लान्तं कुरुते नात्र संशयः॥ ४४५॥
भौमार्कसहितो राहुर्व्ययस्थानगतोऽथवा।
व्ययाधीशेऽर्कसंयुक्ते नरके पतनं भवेत्॥ ४४६॥

सुधा—व्ययेश व्ययस्थान में शुभयुक्त वा शुभदृष्ट होकर अपने उच्च या अपने भवन में हों तो जातक का व्यय सदैव सत्कार्यों में होता है। व्ययेश चन्द्रमा अपने उच्च, अपने भवन या अपने नवांशस्थ हों या नवम, दशम या आय स्थानों में हों तो जातक दिव्य सौख्यभोगी होता है। व्ययेश अपने शत्रुक्षेत्र नीच राशि या नीच नवांश या छठे, आठवें स्थान में हों तो जातक स्त्रीसुखरहित सदैव व्ययाधिक्य से क्लान्त रहता है। सूर्य-मंगलसहित राहु यदि व्ययस्थानगत हों या व्ययाधीश सूर्य के साथ हों तो जातक नारकीय जीवन बिताता है।

व्ययस्थानगते सौम्ये व्ययेशे स्वोच्चगे तथा।
शुभग्रहयुते दृष्टे सद्गतिं लभते जनः॥ ४४७॥
व्यये मन्दादिसंयुक्तशुभदृष्टिविवर्जिते।
महीजेन युते दृष्टे पापमूलो धनव्ययः॥ ४४८॥
व्यये लाभपतौ लग्ने व्ययेशेन समन्विते।
भार्गवेण च संयुक्ते धर्ममूलो धनव्ययः॥ ४४९॥

सुधा—व्ययस्थान में शुभग्रह, व्ययेश अपने उच्च में शुभग्रह युक्त या दृष्ट हों तो जातक सद्गतियुक्त होता है। व्ययस्थान यदि शन्यादि पापग्रहयुक्त हों और उस पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं रहें और मंगल से युक्त या दृष्ट हों तो पापमूलक धन-व्यय होता है। लग्नेश व्ययस्थान में और लग्न में व्ययेश रहें और शुक्र का संयोग रहे तो धर्ममूलक धनव्यय कहना चाहिए।

जातकस्कन्धे विविधयोगाध्यायः

सौम्याः केन्द्राधिपतयो न दिशन्ति शुभं फलम्।
पापा नैवाऽशुभं दद्युस्त्रिकोणेशाः समे शुभाः॥ ४५०॥
पतयस्त्रिषडायानां सदा पापफलप्रदाः।
धनव्ययाष्टमेशास्तु फलदाः सङ्गतेर्वशात्॥ ४५१॥
भाग्यव्ययाधिपत्येनाष्टमेशो न शुभप्रदः।
त्रिषडायाधिपत्येन विशेषादशुभप्रदः॥ ४५२॥

नवपञ्चमलग्नेशवशात् स शुभदो मतः ।
अष्टमेशत्वदोषो हि सूर्याचन्द्रमसोर्नहि ॥ ४५३ ॥
केन्द्रकोणाधिपत्योस्तु सम्बन्धेन परस्परम् ।
राजयोग इह प्रोक्तो विशेषाद्धर्मकर्मणोः ॥ ४५४ ॥
धर्मकर्माधिपत्योस्तु एकत्वेऽपि च तादृशः ।
वृषलग्ने धर्मकर्मनाथः सूर्यसुतो यथा ॥ ४५५ ॥

सुधा—शुभग्रह केन्द्रेश शुभफलदायक नहीं होते हैं। पापग्रह केन्द्रेश अशुभफलद नहीं होते। त्रिकोणेश (१।५।९ के स्वामी) सदैव शुभफलदायक होते हैं। ३।६।११ के स्वामी अर्थात् त्रिषडायेश सदैव अशुभफलदायक होते हैं। धनेश, व्ययेश तथा अष्टमेश संगति के अनुसार ही फलदायक होते हैं।

अष्टमेश भाग्यस्थान से बारहवें के अधिप होने के कारण शुभफलद नहीं होते हैं। वही (अष्टमेश) त्रिषडायाधिपति भी हों तो विशेष रूप से अशुभफलदायक होते हैं। वही (अष्टमेश) नवमेश, पञ्चमेश तथा लग्नेश के साथ रहने पर शुभफलद होते हैं। अष्टमेशत्व दोष सूर्य एवं चन्द्रमा को नहीं लगता है। केन्द्रेश और कोणेश के परस्पर सम्बन्ध होने पर, विशेषरूप से धर्मेश और कर्मेश के सम्बन्ध से राजयोग होता है। धर्मेश और कर्मेश का स्वामी यदि एक हो तो भी राजयोग होता है; जैसा कि वृषलग्न में धर्मेश और कर्मेश का स्वामी शनि ही होता है। अर्थात् वृषलग्न वाले को धर्मेश-कर्मेश के एकत्व होने के कारण राजयोग स्वतः सिद्ध रहता है।

एक एव ग्रहः केन्द्रपतिः कोणपतिश्च सन् ।
केन्द्रगः कोणगो वापि विशेषाद्योगकारकः ॥ ४५६ ॥
पापानां केन्द्रनाथत्वप्रयुक्ता शुभकारिता ।
त्रिकोणस्यापि नाथत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः ॥ ४५७ ॥
यदि केन्द्रत्रिकोणेशौ त्रिषडायपती तदा ।
तयोः सम्बन्धतो नैव सुयोगं लभते नरः ॥ ४५८ ॥

सुधा—एक ही ग्रह केन्द्रेश और कोणेश होकर केन्द्र या कोणगत हों तो विशेष योगकारक होता है। पापग्रहों की केन्द्रेशत्व होने पर जो शुभकारिता (शुभफल-दायकत्व) कही गई है वह तभी होती है जब कि वह (पापग्रह) त्रिकोणेश भी रहे। केवल केन्द्रेश रहने पर उसे शुभफलदातृत्व नहीं होता है।

यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश त्रिषडायेश भी हों या केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश का त्रिषडायेश के साथ कोई सम्बन्ध भी हो तो उपर्युक्त सुयोग नहीं होता है। यहाँ पराशरोक्त कुछ आवश्यक पद्य यथावत् रख रहा हूँ—

'सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः ।
पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः ॥

न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि ।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ।।
केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः ।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः ।।
बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः ।
न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत् ।।
भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः ।
स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम् ।।
कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता ।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः ।।
लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः ।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ ।।
यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ ।
नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ ।।
यद् यद् भावगतौ वापि यद् यद् भावेशसंयुतौ ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ।।

विमर्श—यहाँ सम्बन्ध का विशेष रूप से उपादान हुआ है । केन्द्रेश-त्रिकोणेश का सम्बन्ध, धर्मेश-कर्मेश का सम्बन्ध आदि । वस्तुतः सम्बन्ध चार प्रकार के होते हैं—

(१) सहावस्थान सम्बन्ध—दोनों ग्रह एक साथ किसी घर में अवस्थित हों । जैसे मेषलग्न वालों के लिए धर्मेश गुरु कर्मेश शनि के साथ कहीं बैठे हों ।

(२) परस्पर दृष्टि सम्बन्ध—दोनों सम्बद्ध ग्रह एक-दूसरे को पूर्णरूप से देखते हों । जैसे मेषलग्न में ही धर्मेश गुरु और कर्मेश शनि क्रमशः लग्न से तीसरे (मिथुन) और नवम में अर्थात् मिथुन में गुरु और धनु में शनि होने से एक-दूसरे को सप्तमस्थ होने के कारण पूर्णदृष्टया देखते हैं ।

(३) अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध—यह तब होता है जब कि एक दूसरे के घर में बैठा हो और दूसरा (एक) को देखता हो । जैसे मेष लग्न में ही तृतीयस्थ गुरु को व्यय(मीन)स्थ मंगल देखता है और मंगल गुरु के घर मीन में बैठा हो ।

(४) परस्पर क्षेत्र सम्बन्ध—जैसे सिंह में चन्द्र और कर्क में सूर्य के रहने से होगा ।

राजयोगाः

पञ्च खेटा यदा यस्य जन्मकाले निजोच्चगाः ।
स सार्वभौमो नृपतिस्त्रिभिश्चापि नराधिपः ।। ४५९ ।।
गुरावुच्चगते केन्द्रे कर्मस्थानगते भृगौ ।
जनुः काले यदि भवेत्तदा जातो नराधिपः ।। ४६० ।।

गुरौ सचन्द्रे कर्कस्थे चापगे वा, बुधे रवौ।
तुङ्गगे लग्नभवने जातो राजा न संशयः॥ ४६१॥
गुरौ कर्कगते, लग्ने शनौ मदनगेऽथवा।
सुखे वक्रगते शुक्रे जातो राजा न संशयः॥ ४६२॥
जीवादित्यौ मेषगौ चेद्दशमे भूमिनन्दनः।
बुधशुक्रेन्दवो भाग्ये जातो नरपतिर्भवेत्॥ ४६३॥

सुधा—जन्मसमय में पाँच ग्रह यदि उच्चस्थ हों तो जातक सार्वभौम राजा होता है। तीन ग्रहों के भी उच्चस्थ रहने पर जातक राजा होता है। उच्च का गुरु केन्द्रस्थ और शुक्र यदि राज्यस्थानगत हों तो भी जातक राजा होता है। सचन्द्र गुरु कर्क या धनुगत हों और बुध तथा सूर्य भी उच्चस्थ होकर लग्नगत हों तो भी जातक राजा होता है। गुरु कर्क(उच्च)स्थ और शनि लग्न या सप्तम में हो तथा वक्री शुक्र चतुर्थस्थ हों तो भी जातक राजा होता है। गुरु तथा सूर्य मेषस्थ, मंगल राज्यस्थ और बुध, शुक्र तथा चन्द्रमा भाग्यस्थ हों तो भी जातक राजा होता है।

भाग्ये मन्दे मृगे भौमे सुखे जीवज्ञभार्गवे।
दिवाकरकराक्रान्तिहीने जातो नराधिपः॥ ४६४॥
रव्यादयो ग्रहाः सर्वे तुलाजमकरेऽथवा।
कर्के वा जन्मनि यदा राजयोगो बुधैः स्मृतः॥ ४६५॥
उच्चे रवौ मृगे वैरिभावे भौमेऽथ भार्गवे।
कर्मगे सहजे मन्दे जातोऽरिध्वंसको नृपः॥ ४६६॥
कर्मेशो नवमेशेन पञ्चमेशेन वा यदि।
सम्बद्धः प्रबलेन स्यात्तदा राजा न संशयः॥ ४६७॥
खेटाः सर्वे मीनकन्यावृषवृश्चिकसंस्थिताः।
अथवा चापमिथुनकुम्भसिंहगता यदि॥ ४६८॥
जनुःकाले यदि तदा योगः सिंहासनाभिधः।
सिंहासनोद्भवो जातः प्रतापी प्रबलो नृपः॥ ४६९॥

सुधा—शनि नवमस्थ, भौम मकरस्थ, बुध, गुरु तथा शुक्र सुखस्थ किन्तु रविकराक्रान्त न हों तो जातक राजा होता है। रव्यादिक सभी ग्रह जन्मकाल में तुला, मेष, मकर अथवा कर्क में हों तो भी पण्डितों ने राजयोग कहा है। रवि मेषस्थ, मंगल षष्ठस्थ होकर और शुक्र राज्यस्थान में तथा शनि तृतीयस्थ हों तो जातक शत्रुध्वंसक राजा होता है। कर्मेश नवमेश अथवा पञ्चमेश के साथ सम्बद्ध हों तो भी जातक राजा होता है। सभी ग्रह मीन, कन्या, वृष, वृश्चिक या धनु, मिथुन, कुम्भ एवं सिंह में जन्मसमय हों तो सिंहासन नाम का योग होता है। सिंहासनोत्पन्न जातक प्रतापी तथा प्रबल राजा होता है।

कन्यामीनधनुर्युग्मकुलीरे यदि जन्मनि ।
रव्यादयो ग्रहाः सर्वे जातो राजारिनाशकः ॥ ४७० ॥
सिंहे रविः शशी कर्के मृगे दिनकरात्मजः ।
मीने जीवो बुधो युग्मे तुलायां भृगुनन्दनः ॥ ४७१ ॥
अजे भूमिसुतो यस्य जन्मकाले हि विद्यते ।
साधारणकुलोत्थोऽपि जातो भूपालभूषणः ॥ ४७२ ॥
धर्मकर्माधिनेतारावन्योन्यभवनोपगौ ।
बलिनौ जन्मनि यदा जातोऽरिध्वंसको नृपः ॥ ४७३ ॥
जायालाभकर्मभावगता हि बलिनः शुभाः ।
कुजो भाग्ये शनिर्लाभे जातस्तर्हि नराधिपः ॥ ४७४ ॥
स्वोच्चे स्वमित्रमेवेन्दौ भाग्यगे, शनिभौमयोः ।
कर्मवित्तगयोर्जातो राजयोगान्वितो भवेत् ॥ ४७५ ॥
लग्नातिरिक्तकेन्द्रस्थे विधौ पूर्णबलान्विते ।
भृगुणा वापि गुरुणा दृष्टे राजा न संशयः ॥ ४७६ ॥

सुधा—कन्या, मीन, धनु, मिथुन या कर्क में सभी ग्रह यदि जन्मसमय में हों तो जातक राजा होता है । सिंह में सूर्य, कर्क में चन्द्रमा, मकर में शनि, मीन में गुरु, मिथुन में बुध, तुला में शुक्र तथा मेष में मंगल यदि हों तो साधारण वंशोत्पन्न भी जातक राजश्रेष्ठ होता है । धर्मेश एवं कर्मेश यदि परस्पर भवनस्थ हों अर्थात् धर्मेश कर्मस्थान में और कर्मेश भाग्यस्थान में हों, साथ ही वे प्रबल भी हों तो जातक शत्रु-ध्वंसक राजा होता है । बली सभी शुभग्रह सप्तम, एकादश या दशम स्थानगत हों तथा मंगल भाग्यस्थान में और शनि एकादश में हों तो भी जातक नरेश होता है । स्वोच्चस्थ या मित्रभवनस्थ चन्द्रमा यदि भाग्यगत हों और शनि दशम तथा मंगल दूसरे स्थान में हों तो जातक राजा होता है । पूर्णबली चन्द्रमा लग्नातिरिक्त केन्द्र-स्थान में हों और उन पर गुरु या शुक्र की पूर्ण दृष्टि रहे तो भी जातक राजा होता है ।

एक एव ग्रहः स्वोच्चस्थितो वीर्यान्वितो यदि ।
वर्गोत्तमगतस्तर्हि जातो भवति भूपतिः ॥ ४७७ ॥
जन्मलग्नगते जीवे शशिजे केन्द्रसंस्थिते ।
भाग्याधिपतिसन्दृष्टे जातो राजसमो भवेत् ॥ ४७८ ॥
शनौ केन्द्रेऽथवा कोणे स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे ।
लाभेशेन च सन्दृष्टे जातो राजसमो भवेत् ॥ ४७९ ॥
चन्द्रे तनौ सुखे जीवे कर्मगे भृगुनन्दने ।
शनौ स्वोच्चेऽथवा स्वर्क्षे जातो नृपसमो भवेत् ॥ ४८० ॥

लग्नादित्रितये रिष्फदशमैकादशे ग्रहाः ।
तिष्ठेयुः सकलास्तर्हि जातो नृपतिसन्निभः ।। ४८१ ।।
कुम्भोदयस्थे रविजे तुङ्गे ग्रहचतुष्टये ।
मेषलग्ने बुधे स्वोच्चे गुरौ वापि नराधिपः ।। ४८२ ।।

सुधा—एक भी बली स्वोच्चस्थ ग्रह यदि वर्गोत्तमस्थ हों तो जातक राजा होता है। जन्मसमय में गुरु यदि लग्नस्थ हों, बुध केन्द्रस्थ हों, साथ ही भाग्येश की उन पर दृष्टि रहे तो जातक राजा के समान होता है। शनि केन्द्र या नवम, पञ्चम या अपने उच्च अथवा मूलत्रिकोणस्थ हों और उन पर लाभेश की दृष्टि रहे तो भी जातक राजा के समान होता है। चन्द्रमा लग्न में, गुरु चतुर्थ में, शुक्र दशम में और शनि अपने उच्च या स्वभवन में हों तो भी जातक राजा के समान होता है। लग्न से आगे तथा पीछे तीन-तीन स्थानों में सभी ग्रह रहें तो भी जातक राजसदृश होता है। कुम्भलग्नस्थ शनि तथा अन्य चार ग्रह स्वोच्चस्थ हों या मेषलग्न में बुध या गुरु स्वोच्चस्थ हों तो भी जातक राजा होता है।

मृगोदयगते भौमे चन्द्रे कर्कगते नृपः ।
भौमार्कज्यैः क्रमान्मेषमृगकुम्भस्थितैरपि ।। ४८३ ।।
उच्चाभिलाषी सविता त्रिकोणस्थस्तथा शशी ।
गुरुणा सहितः कर्के यदि जातो नराधिपः ।। ४८४ ।।
लग्नेशः केन्द्रगः कर्मपतिः पञ्चमगस्तथा ।
भाग्येशो लाभगश्चेत् स्यात्तदा जातो नराधिपः ।। ४८५ ।।

सुधा—मकरलग्न में मंगल तथा कर्क में चन्द्रमा हों तो जातक राजा होवे, अथवा मंगल, सूर्य और गुरु क्रमशः मेष, मकर तथा कुम्भ में स्थित हों तो भी जातक राजा होता है। उच्चाभिलाषी सूर्य यदि त्रिकोण में और चन्द्रमा गुरु के साथ कर्क में हों तो जातक राजा होता है। लग्नेश केन्द्र में, कर्मेश पञ्चम में और भाग्येश लाभ-स्थान में हों तो भी जातक राजा होता है।

गुरुणा सहितः शुक्रो वित्तगो यदि जन्मनि ।
वसुधाधिपतिर्जातो जितारातिगणो भुवि ।। ४८६ ।।
अस्तोऽपि रविजः स्वस्थोऽथवा मूलत्रिकोणगः ।
विद्याविशारदं जातं कुरुते नृपतिं ध्रुवम् ।। ४८७ ।।
सुखभावगतौ सूर्यशशिजौ, दशमस्थितौ ।
मन्देन्दू, लाभगो भौमो जातस्तर्हि नराधिपः ।। ४८८ ।।
दशमे पञ्चमे वापि लग्ने शनिकुजौ यदि ।
धनुर्मीनस्थिते पूर्णचन्द्रे, राजा न संशयः ।। ४८९ ।।

लग्नातिरिक्तकेन्द्रस्थे चन्द्रे पूर्णकलान्विते ।
गुरुणा भृगुणा वापि दृष्टे जातो नराधिपः ॥ ४९० ॥
केन्द्रस्थे लग्नपे नीचमूढारातिविवर्जिते ।
अन्यग्रहविहीने च जातो भूमिपतिर्भवेत् ॥ ४९१ ॥

सुधा—गुरु-शुक्र यदि जन्मसमय में धनभावगत हों तो जातक शत्रुजेता राजा होता है । अस्तङ्गत भी शनि स्वभवन या अपने मूलत्रिकोण में हों तो जातक विद्वान् राजा होता है । सूर्य-बुध चतुर्थ भाव में, शनि तथा चन्द्र दशम में एवं मंगल लाभ में हों तो निःसन्देह जातक राजा होता है । दशम, पञ्चम या लग्न में शनि, कुज और धनु या मीन में पूर्ण चन्द्र हो तो जातक राजा होता है । लग्नातिरिक्त केन्द्र में स्थित पूर्ण-चन्द्र गुरु या शुक्र से देखे जाँय तो जातक राजा होवे । केन्द्रस्थ लग्नेश नीचराशि या शत्रुक्षेत्र में या अस्त नहीं हो और लग्नेश के साथ अन्य कोई ग्रह भी नहीं रहें तो जातक भूमिपति होता है ।

जन्मनीज्येन्दुरवयः सुतविक्रमधर्मगाः ।
कुबेरसदृशो जातो जायते नात्र संशयः ॥ ४९२ ॥
त्रिषडायगताः पापाः लग्नेशः शुभवीक्षितः ।
तेजस्वी जायते जातो महीपतिसमो भुवि ॥ ४९३ ॥
एकोऽप्युच्चस्थितः खेटो मित्रयुक्तोऽथवेक्षितः ।
जनयेद् वसुधानाथं गुणग्रामसमन्वितम् ॥ ४९४ ॥
धनुर्मीनतुलामेषमृगलग्नगते शनौ ।
चार्वङ्गो जायते जातः पुरग्रामाग्रणीः सदा ॥ ४९५ ॥
कर्मलग्नगते चन्द्रे मीनराशिगते रवौ ।
जनुः काले सति तदा जातो हि वसुधाधिपः ॥ ४९६ ॥

सुधा—जन्मसमय में गुरु, चन्द्र तथा सूर्य क्रमशः पञ्चम, तृतीय तथा नवमस्थ हों तो जातक कुबेरसदृश होता है—इसमें सन्देह नहीं । पापग्रह मात्र तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें में और लग्नेश शुभग्रह से देखे जाँय तो जातक राजसदृश तेजस्वी होता है । एक भी उच्चस्थ ग्रह अपने मित्र के साथ या मित्र से दृष्ट हों तो गुणसमूहयुक्त राजा को पैदा करते हैं । धनु, मीन, तुला, मेष तथा मकर लग्नस्थ शनि जन्मसमय में हों तो जातक सुन्दर तथा गाँव-नगर में अग्रगामी (मुख्य = नेता) होता है । कर्मस्थान या लग्न में चन्द्रमा और मीन राशि में सूर्य हों तो जातक वसुधाधिप होता है ।

लग्नेशे पञ्चमे लग्नगते पञ्चमभावपे ।
कारकावात्मजात्माख्यौ स्वर्क्षे स्वांशे स्वतुङ्गमे ॥ ४९७ ॥
तनौ पञ्चमभावे वा शुभग्रहयुतेक्षिते ।
महाराजाभिधो योगस्तज्जो विश्रुतभूपतिः ॥ ४९८ ॥

भाग्येशः कारकश्चापि लग्ने जायागृहे सुते ।
शुभग्रहेक्षितयुतौ राजयोगकरौ स्मृतौ ॥ ४९९ ॥
लग्नेशात् कारकाद् वापि वित्ते पुत्रेऽथवा सुखे ।
शुभग्रहयुते जातोऽवश्यं हि नृपतिर्भवेत् ॥ ५०० ॥

सुधा—लग्नेश पञ्चमस्थ और पञ्चमेश लग्नगत हों, आत्मकारक तथा पुत्रकारक ग्रह अपने भवन, अपने नवांश या अपने उच्चगत हों, लग्न तथा पञ्चम भाव शुभयुक्त या शुभदृष्ट हों तो महाराजसंज्ञक योग होता है। इस योग में उत्पन्न बालक बड़ा ही विख्यात राजा होता है। भाग्येश तथा भाग्यकारक ग्रह लग्न, सप्तम या पञ्चम भावस्थ रहें और दोनों (भाग्येश तथा भाग्यकारक) पर शुभग्रह की दृष्टि या संयोग हो तो जातक राजा होता है। लग्नेश या आत्मकारक से दूसरा, पाँचवाँ तथा चौथा भाव शुभग्रहयुक्त या शुभदृष्ट हों तो जातक राजा होता है।

लग्ने धने सुखे सौम्यग्रहयुक्तेऽपि विक्रमे ।
पापग्रहयुते जातो राजा वा तत्समो भवेत् ॥ ५०१ ॥
चन्द्रः शुक्रोऽथवा जीवो बुधो वा प्रबलो भवेत् ।
स्वर्क्षगो धनभावस्थस्तदा जातो नराधिपः ॥ ५०२ ॥
स्वर्क्षतुङ्गस्थितोऽङ्गेशो लग्नं पश्येत्तथा ग्रहाः ।
नीचगा अष्टमे षष्ठे तृतीये वा नराधिपः ॥ ५०३ ॥
त्रिकेशा नीचगा अस्ता अपि वा शत्रुगेहगाः ।
लग्नेशः स्वर्क्षतुङ्गेशो लग्नदर्शी नराधिपः ॥ ५०४ ॥

सुधा—लग्न वित्त तथा सुख भाव शुभग्रह युक्त हो और तृतीय भाव पापयुक्त हों तो जातक राजा या राजसदृश होवे। चन्द्रमा, गुरु, शुक्र या बुध अपने भवनस्थ होकर धनभावगत हों तो जातक राजा होता है। लग्नेश अपने गृह या अपने उच्चस्थ होकर लग्न को देखता हो और अन्य ग्रह नीचगत या अष्टम, षष्ठ या तीसरे में हो तो भी जातक राजा होता है। त्रिकेश (षष्ठाष्टमद्वादशेश) नीच में हों या अस्त अथवा शत्रुक्षेत्रगत हों तथा अपने गृह या अपने उच्च का लग्नेश लग्न को देखता हो तो भी सुयोग (राजयोग) होता है।

प्रसूतिसमये खेटा व्ययायार्थतनुस्थिताः ।
श्रीछत्रयोगोऽस्मिन् जातो धनाढ्यः पुण्यवानपि ॥ ५०५ ॥
स्वर्क्षतुङ्गगकर्मेशो योगकृल्लग्नवीक्षकः ।
केन्द्रगाः सद्ग्रहाश्चापि राजयोगकराः स्मृताः ॥ ५०६ ॥
केन्द्रे शुभग्रहोपेते बुधेज्यभृगुनन्दने- ।
ष्वेकोऽपि स्वोच्चगो राजयोगकृज्जायते नृणाम् ॥ ५०७ ॥

सद्ग्रहैरखिलैः केन्द्रगतैस्त्र्यायारिगैस्तथा ।
असद्ग्रहैस्तर्हि जातो राजा वा तत्समो भवेत् ॥ ५०८ ॥

सुधा—जन्मसमय में सभी ग्रह ११, १२, १, २ स्थानों में रहे तो श्रीछत्रयोग होता है। इसमें उत्पन्न बालक धनी तथा पुण्यवान् होता है। स्वभवन या स्वोच्चस्थ कर्मेश यदि लग्न को देखते हो अर्थात् अपने घर या अपने उच्च के कर्मेश की लग्न पर पूर्ण दृष्टि हो और शुभग्रह केन्द्रस्थ हों तो राजयोग होता है। केन्द्र शुभग्रहयुक्त हो और बुध-गुरु-शुक्र में से एक उच्चस्थ हों तो भी राजयोग होता है। सभी शुभग्रह केन्द्रगत और सभी पापग्रह त्रिषडायगत हो तो भी जातक राजा या राजसदृश होता है।

लग्नेशो नवमे यस्य कर्मेशो लग्नगस्तथा ।
स प्रतापी नरपतिर्विख्यातोऽरिविनाशकः ॥ ५०९ ॥
राज्येशः केन्द्रकोणस्थोऽथवा धनगतो बली ।
जन्मकाले भवेद्यस्य स राजा काव्यशास्त्रवित् ॥ ५१० ॥
कर्मेशः सशुभः पुत्रभवने, पञ्चमाधिपः ।
कोदण्डे जनने यस्य नरेशः सोऽरिघातकः ॥ ५११ ॥
जनुः काले गुरुर्यस्य यानं मानेऽपि सप्तमे ।
स्वतुङ्गे च विधौ तत्र जातो दाता गुणी स्मृतः ॥ ५१२ ॥
योगेष्वेतेषु जातो हि नीचवंशगतोऽपि वै ।
जायते नृपती राजकुलजो वक्ष्यमाणतः ॥ ५१३ ॥

सुधा—लग्नेश नवम में और कर्मेश लग्न में हों तो जातक प्रतापी, शत्रुनाशक तथा विख्यात राजा होता है। बली राज्येश केन्द्र या कोणस्थ हों या धनभावगत हों तो जातक काव्यशास्त्रज्ञ राजा होवे। शुभग्रहयुक्त कर्मेश पञ्चम में और पञ्चमेश धनु में हों तो जातक शत्रुघ्न राजा होता है। जन्मकाल में यदि गुरु चतुर्थ, दशम या सप्तम में और चन्द्रमा अपने उच्च में रहें तो जातक गुणवान् राजा होता है।

उपर्युक्त योगों में नीचवंशोत्पन्न भी जातक राजा या राजसदृश होता है। राजवंशोद्भव जातक वक्ष्यमाण योगानुसार राजयोग युक्त होता है।

राजवंशीयानां कृते राजयोगाः

मृगे लग्ने शनौ चन्द्रयुते सूर्ये कुलीरगे ।
आये कुजेऽष्टमे शुक्रे राजवंशोद्भवो नृपः ॥ ५१४ ॥
कवीज्यौ तुर्यगौ, वापि जीवश्चन्द्रसमन्वितः ।
कर्मगो योगयुग्मेऽपि राजा राजकुलोद्भवः ॥ ५१५ ॥
जीवो वीक्षेत शशिनं पञ्चमे वा बली शुभः ।
जन्मकाले यदि, तदा नृपालो नृपबालकः ॥ ५१६ ॥

प्रबलो लग्नपो लग्नगतः केन्द्रगतोऽपि वा ।
राजवंशोद्भवं बालं नृपालं कुरुते ध्रुवम् ।। ५१७ ।।
मेषे रविः शशाङ्केन बलिना संयुतो यदि ।
राजवंशोद्भवो बालो नृपालः कीर्तिसंयुतः ।। ५१८ ।।

सुधा—मकर लग्न में शनि-चन्द्रमा का संयोग हो, सूर्य कर्क में, मंगल एकादश में तथा शुक्र अष्टम में हों तो राजवंशोत्पन्न जातक राजा होता है। गुरु-शुक्र चतुर्थ में या सचन्द्र गुरु कर्मस्थ हों तो दोनों स्थिति में राजवंशोत्थ जातक राजा होता है। जन्मकाल में गुरु की दृष्टि चन्द्रमा पर हो या बली शुभग्रह पञ्चमस्थ हों तो राजवंशोत्पन्न बालक राजा होता है। प्रबल लग्नेश लग्नगत या केन्द्रगत हों तो भी राजवंशोद्भव जातक राजा होता है। मेष में रवि, बली चन्द्रमा के साथ रहें तो भी राजकुलोत्पन्न जातक यशस्वी राजा होता है।

कवीज्यौ तुङ्गगौ केन्द्रकोणगौ यदि जन्मनि ।
राजवंशोद्भवो जातो नृपो द्रविणपो भवेत् ।। ५१९ ।।
नीचेतरगतो जीवो लग्नगो नृपवंशजम् ।
पूर्णचन्द्रोऽपि केन्द्रस्थो नृपालं कुरुते नरम् ।। ५२० ।।
कर्मेशः पञ्चमे वाजिगजसौख्यकरो नृणाम् ।
सर्वतोऽस्यातुला कीर्तिलता हि वितता भवेत् ।। ५२१ ।।
चन्द्राद् दशमभावेशः केन्द्रकोणद्विसंस्थितः ।
जन्मकाले यदि तदा जातो मणिगणान्वितः ।। ५२२ ।।
चन्द्राधिष्ठितराशीशः सुखालयगतो यदि ।
मुक्तामणिस्वर्णपुत्रपुण्ययुक्तो नरो भवेत् ।। ५२३ ।।
लग्ने सुखे वा दशमे समन्दश्चन्द्रमा भवेत् ।
जातो नृपकुले राजा तत्समो वा धनान्वितः ।। ५२४ ।।

सुधा—जन्मसमय में गुरु-शुक्र अपने उच्चस्थ होकर केन्द्र या कोणगत हों तो राजवंशोत्पन्न जातक द्रव्येश राजा होता है। नीचातिरिक्त स्थानस्थ गुरु यदि लग्नगत हों, पूर्णचन्द्र भी केन्द्रगत हों तो राजवंशोद्भव जातक राजा होता है। कर्मेश यदि पञ्चमस्थ हों तो जातक को हाथी, घोड़ा आदि का सुख मिलता है। उसका यश सभी जगह फैलता रहता है। चन्द्रमा से दशम भावस्वामी केन्द्र, कोण अथवा दूसरे स्थान में रहें तो जातक मणिगणों से युक्त होता है। चन्द्राधिष्ठित राशिस्वामी यदि चौथे स्थान में रहे तो जातक मुक्तामणि, सुवर्ण आदि रत्नों से परिपूर्ण होता है। लग्न, चौथे या दशमे स्थान में शनि तथा चन्द्रमा रहें तो राजवंशोत्पन्न जातक राजा होता है।

अन्ये विविधयोगाः

तत्र सफलो गजकेसरीयोगः

चन्द्राल्लग्नाच्च केन्द्रस्थे गुरौ सौम्यैर्युतेक्षिते ।
नीचास्तरिपुभिन्नस्थे योगो वै गजकेसरी ।।
तज्जो धनी गुणी राजप्रियो मेधायुतो नरः ।। ५२५ ।।

सुधा—चन्द्रमा से या लग्न से केन्द्रस्थ गुरु शत्रुक्षेत्र तथा नीच राशि से अन्यत्र स्थित अस्तङ्गत नहीं हों तो गजकेसरी योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक धनी, गुणी, राजप्रिय तथा मेधावी होता है।

सफलः पार्वतयोगः

षष्ठाष्टमे सौम्ययुक्तेऽथवा ग्रहविवर्जिते ।
केन्द्रेषु शुभयुक्तेषु योगः पार्वत ईरितः ।। ५२६ ।।
तज्जो भाग्ययुतो दानी कामी वक्ता विनोदकृत् ।
शास्त्रज्ञः पुरनेता च तेजः कीर्त्तियुतो नरः ।। ५२७ ।।

सुधा—लग्न से छठा तथा आठवाँ स्थान शुभग्रहयुक्त हों या ग्रहरहित हो, केन्द्र में शुभग्रह हों तो पार्वत योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक सौभाग्ययुक्त, दानी, कामी, वक्ता, विनोदी, शास्त्रज्ञ, ग्रामनायक, तेजस्वी तथा कीर्त्तियुक्त होता है।

सफलश्चामरयोगः

लग्नेशे स्वोच्चगे केन्द्रे चामरो गुरुवीक्षिते ।
सौम्यद्वयान्विते व्योम्नि भाग्ये लग्नेऽथवा मदे ।। ५२८ ।।
तज्जो भूपोऽथवा भूपवन्द्यो वक्ता कलाधरः ।
दीर्घायुर्विबुधो जातो जायते नात्र संशयः ।। ५२९ ।।

सुधा—लग्नेश स्वोच्चस्थ होकर केन्द्र में गुरुदृष्ट हों अथवा शुभग्रहद्वययुक्त लग्नेश दशम, नवम लग्न या सप्तम में हों तो चामरयोग होता है। चामरयोगोत्पन्न जातक राजा या राजवन्द्य, वक्ता, कलापूर्ण, दीर्घायु तथा विद्वान् होता है, इसमें सन्देह नहीं।

सफलः शङ्खयोगः

परस्परं केन्द्रगौ चेच्छत्रुपञ्चमभावपौ ।
लग्नेशः सबलः किं वा चरे कर्माङ्गपे तथा ।। ५३० ।।
भाग्येशे प्रबले, शङ्खः तज्जः पुत्रकलत्रवान् ।
दयालुः सुकृती विद्वान् दीर्घायुश्च प्रजायते ।। ५३१ ।।

सुधा—(१) लग्नेश प्रबल और षष्ठेश एवं पञ्चमेश केन्द्रस्थ हों तो शङ्खयोग;

(२) अथवा दशमेश एवं लग्नेश चरराशिस्थ हों और भाग्येश प्रबल हों तो शङ्ख-योग होता है । इन दोनों प्रकार के शङ्खयोगों में उत्पन्न जातक स्त्रीपुत्रयुक्त, दयालु, पुण्यवान्, विद्वान् तथा दीर्घायु होता है ।

सफलो भेरीयोगः

लग्नान्त्यधनजायास्थैः खेटैर्बलिनि धर्मपे ।
भेरी, वा प्रबले तत्र केन्द्रेऽङ्गेशेज्यभार्गवैः ।। ५३२ ।।
तज्जो नरपतिः पुत्रदारार्थस्वच्छकीर्त्तिमान् ।
सद्वृत्तः सद्गुणोपेतः सर्वसौख्ययुतो भवेत् ।। ५३३ ।।

सुधा—सभी ग्रह लग्न द्वादश, द्वितीय या सप्तम में स्थित हों तथा बली भाग्येश रहें तो भेरीयोग अथवा प्रबल भाग्येश रहे और लग्नेश, गुरु तथा शुक्र केन्द्रस्थ हों तो भी भेरीयोग होता है । भेरीयोगोत्पन्न जातक स्त्री-पुत्र, धन, शुभ्रयश, सद्गुणयुक्त एवं सर्वविध सौख्यसम्पन्न राजा होता है ।

सफलो मत्स्ययोगः

पापे धर्मगते पुत्रे शुभाशुभसमन्विते ।
तुर्ये वा रन्ध्रगे पापे मत्स्ययोग उदीरितः ।। ५३४ ।।
तज्जो दयालुर्गुणवान् विद्वान् बुद्धिबलान्वितः ।
यशस्वी रूपवान् कालवेत्ता सत्तापसो भवेत् ।। ५३५ ।।

सुधा—भाग्यस्थान में पापग्रह और पञ्चम में शुभ तथा पाप दोनों और चतुर्थ तथा अष्टम में पापग्रह हों तो मत्स्ययोग होता है । मत्स्ययोगोत्पन्न जातक दयालु, गुणवान्, विद्वान्, बुद्धिमान्, यशस्वी, सुरूप, कालज्ञ तथा तपस्वी होता है ।

सफलो मृदङ्गादियोगः

लग्नेशे प्रबले खेटाः स्वर्क्षोच्चे केन्द्रकोणगाः ।
मृदङ्गस्तत्र जातस्तु राजा वा राजसन्निभः ।। ५३६ ।।
उच्चस्थे सप्तमेशे तु व्योमगे धर्मकर्मणोः ।
स्वामिनोः संयुतौ जातो राजा श्रीनाथयोगजः ।। ५३७ ।।
कर्मेशे सुतगे केन्द्रे विदीने प्रबले स्वभे ।
चन्द्राद् विदिज्ये कोणे वा भवेद् भौमे तु शारदः ।। ५३८ ।।
शारदोत्थो भवेज्जातो राजमान्यो बुधः सुखी ।
दारातनयवित्ताढ्यः तपोधर्मसमन्वितः ।। ५३९ ।।

सुधा—लग्नेश प्रबल और अन्य ग्रह अपने भवन या अपने उच्चस्थ होकर केन्द्र या कोण (९।५) में हों तो मृदङ्गयोग होता है । मृदङ्गयोगोत्पन्न जातक राजा या राजसदृश होता है । उच्चस्थ सप्तमेश दशम में हों और धर्मेश-कर्मेश का संयोग रहे तो

श्रीनाथयोगज राजा होता है। अर्थात् उपर्युक्त स्थिति में श्रीनाथयोग होता है और श्रीनाथयोगज जातक राजा या राजसदृश होवे। दशमेश पञ्चम भवन या केन्द्र में हों, प्रबल बुध-सूर्य स्वभवनस्थ हों या चन्द्रमा से नवम, पञ्चम में बुध-गुरु और एकादश में मंगल हों तो शारद योग होता है। शारदयोगोत्पन्न जातक राजपूज्य, सुखी, स्त्री-पुत्रसौख्यसम्पन्न, धनी तथा धर्मशील होता है।

सफलः खड्गयोगः

लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे धनेशे भाग्यभावगे।
भाग्येशे धनगे खड्गयोगो विद्भिरुदीरितः ॥ ५४० ॥
तज्जो जातो भवेद् बुद्धिवीर्यसम्पत्तिसौख्यवान्।
शास्त्रज्ञः कुशलः कृत्ये कृतज्ञश्च विशेषतः ॥ ५४१ ॥

सुधा—लग्नेश केन्द्र या कोण (९।५)स्थ हों, धनेश भाग्यस्थान में और भाग्येश धनस्थान में हों तो खड्गयोग होता है। खड्गयोगज जातक बुद्धिबलसम्पत्तिसम्पन्न, शास्त्रज्ञ, कार्यकुशल तथा कृतज्ञ होता है।

सफलो लक्ष्मीयोगः

लग्नेशे प्रबले भाग्यनाथे स्वर्क्षोच्चगेऽथवा।
मूलत्रिकोणगे केन्द्रे लक्ष्मीयोगो बुधैः स्मृतः ॥ ५४२ ॥
लक्ष्मीयोगोद्भवो जातो रूपवान् धनवान् गुणी।
कीर्त्तिधर्मयुतो भूपोऽनेकपुत्रान्वितो भवेत् ॥ ५४३ ॥

सुधा—लग्नेश प्रबल हो, भाग्येश स्वभवन या स्वोच्चस्थ अथवा मूलत्रिकोणग होकर केन्द्रस्थ हों तो लक्ष्मीयोग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक सुरूप, धनी, गुणी, यशस्वी, धर्मिष्ठ तथा अनेक पुत्रों से परिपूर्ण होता है।

सफलः कुसुमयोगः

स्थिरे तनौ भृगौ केन्द्रे सशुभे कोणगे विधौ।
कर्मस्थे सूर्यपुत्रे तु योगः कुसुमसंज्ञकः ॥ ५४४ ॥
योगेऽस्मिन् जायमानस्तु राजा वा तत्समो भवेत्।
वदान्यो गुणभोगाढ्यो निजवंशेऽतिविश्रुतः ॥ ५४५ ॥

सुधा—स्थिर लग्न हो, शुभग्रहयुक्त शुक्र केन्द्र में या शुभयुक्त चन्द्रमा नवम-पञ्चम में और राज्यस्थान में शनि हों तो जातक राजा या राजा के समान विद्वान्, गुणी, भोगेन्द्र तथा अपने वंश में विख्यात होता है।

सफलः कलानिधियोगः

पञ्चमे वा धने जीवे भृगुज्ञसहितेक्षिते।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः प्रोक्तः कलानिधिः ॥ ५४६ ॥

कलानिधिसमुत्पन्नो राजमान्यो गुणी सुखी ।
निर्भयो नीरुजः कामी विद्यार्थपरिपूरितः ॥ ५४७ ॥

सुधा—पञ्चम या धनभावगत गुरु बुध-शुक्र से युक्त या बुध-शुक्र से दृष्ट हो या उन दोनों के क्षेत्र (वृष, मिथुन, कन्या, तुला) में हों तो कलानिधियोग होता है। कलानिधियोगोत्पन्न बालक राजमान्य, गुणवान्, सुखी, निर्भय, नीरोग, कामी, विद्या तथा धन से परिपूर्ण होता है।

सफलो लग्नाधियोगः

कामरन्ध्रगतैः सौम्यैः पापदृग्युतिवर्जितैः ।
लग्नाधियोगस्तज्जस्तु सुधी सौख्ययुतो भवेत् ॥ ५४८ ॥

सुधा—सभी शुभग्रह सप्तम या अष्टम भवनस्थ हों, वे पापग्रहों के योग या दृष्टि से रहित हों तो लग्नाधियोग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक विद्वान् तथा सुखी होता है।

सफलाः सुनफाऽनफादुरुधरा योगाः

चन्द्राद् वित्तरिष्फसंस्थैर्ग्रहैः सूर्यातिरिक्तकैः ।
सुनफा चानफा योगः क्रमाद् विबुधसम्मतः ॥ ५४९ ॥
वित्तरिष्फोभयस्थैस्तु योगो दुरुधराभिधः ।
सुनफायोगजो जातो राजा वा राजसन्निभः ॥ ५५० ॥
स्वबाहुबलवित्ताढ्यः प्रसिद्धो मतिमानपि ।
अनफासम्भवो भूपो नीरोगः सुभगः सुखी ॥ ५५१ ॥
यशस्वी शीलवान् नानाविधसौख्यसमन्वितः ।
जितारिर्दानशीलश्च वित्तवाहनसौख्ययुक् ॥ ५५२ ॥
सदाऽसौ भाग्यवान् जातो भवेद् दुरुधरोद्भवः ।

सुधा—चन्द्रमा से दूसरे स्थान में सूर्यातिरिक्त ग्रहों के रहने पर सुनफा योग और बारहवें स्थान में सूर्यातिरिक्त ग्रहों के रहने से अनफा योग होता है।

सुनफायोगोत्पन्न जातक राजा या राजा के समान अपने भुजबलोपार्जित धनयुक्त तथा बुद्धिमान् होता है। अनफायोगज जातक भी राजा, नीरोग, सुन्दर, सुखी, यशस्वी, सुशील तथा अनेकविध सौख्यों से परिपूर्ण होता है।

दुरुधरायोगोत्पन्न जातक शत्रुजेता, दानशील, धनाढ्य, वाहनयुक्त, सुखी तथा भाग्यवान् होता है।

सफलः केमद्रुमयोगः

रविं विना शशाङ्कश्चेत् वित्ते रिष्फे तथा तनोः ॥ ५५३ ॥
केन्द्रेऽपि च ग्रहाभावे योगः केमद्रुमाभिधः ।
केमद्रुमोद्भवो जातो निःस्वो विद्याविहीनितः ॥ ५५४ ॥
विविधापत्तिसंयुक्तो निन्दितो दुर्मतिश्च सः ।

सुधा—चन्द्रमा से दूसरे तथा बारहवें स्थानों में तथा लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) स्थानों में सूर्य से अतिरिक्त ग्रहों का अभाव हो तो केमद्रुमयोग होता है। केमद्रुमोत्पन्न जातक मूर्ख, दरिद्र, दुर्बुद्धि तथा सर्वथा निन्दित होता है।

केमद्रुमभङ्गयोगः

चन्द्रे भृगौ वा केन्द्रस्थे जीवदृष्टेऽथवाऽशुभे ॥ ५५५ ॥
ग्रहमध्यगतेन्दौ तु जीवदृष्टे शुभान्विते ।
अतिमित्रनिजोच्चस्वगृहे वा स्वनवांशके ॥ ५५६ ॥
चन्द्रे तनौ वा सशुभे तुङ्गगेन्दौ दिवि स्थिते ।
सर्वत्र गुरुणा दृष्टे भङ्गः केमद्रुमो भवेत् ॥ ५५७ ॥

सुधा—१. चन्द्रमा या शुक्र केन्द्रस्थ होकर गुरु से दृष्ट हों, २. अशुभद्वयमध्यगत चन्द्र शुभयुक्त एवं गुरु दृष्ट हों, ३. अतिमित्र स्वोच्च या स्वभवन या स्वनवांशस्थ चन्द्र गुरुदृष्ट हों तथा ४. शुभग्रहयुक्त लग्न हो और वृष का चन्द्रमा दशमस्थ होकर गुरुदृष्ट हों तो केमद्रुमयोग का भङ्ग हो जाता है अर्थात् केमद्रुमयोगज फल जातक को नहीं होता है।

राजयोगभङ्गकरा योगाः

भाग्यलाभकर्मनाथाः स्वस्वनीचगृहोपगाः ।
अथवा विकला राजयोगभङ्गकरा स्मृताः ॥ ५५८ ॥
राजयोगकराः खेटाः शत्रुक्षेत्रगता अपि ।
दिवाकरकरैरस्ता राजयोगविनाशकाः ॥ ५५९ ॥
जन्मभं जन्मलग्नं च ग्रहदृष्टिविवर्जितम् ।
जनुः काले यदि भवेद्रङ्को नृपकुलोद्भवः ॥ ५६० ॥
चन्द्रः परमनीचस्थो यदि जन्मनि जायते ।
राजयोगफलं तस्य निश्चितं विफलं भवेत् ॥ ५६१ ॥

सुधा—भाग्येश, लाभेश एवं राज्येश सभी अपने-अपने नीचराशिस्थ हों तो राजयोग का भङ्ग हो जाता है। राजयोगकारक ग्रह यदि शत्रुक्षेत्रगत अथवा सूर्य-सान्निध्यवशात् अस्त हों तो भी राजयोग नष्ट हो जाता है। जन्मराशि तथा जन्मलग्न दोनों पर यदि किसी ग्रह की दृष्टि नहीं हों तो भी राजयोग विनष्ट हो जाता है, प्रत्युत राजकुलोत्पन्न भी जातक रङ्क हो जाता है। चन्द्रमा यदि परमनीच (वृश्चिक के ३ अंश) पर हों तो भी राजयोगज फल जातक को नहीं होता है।

राजयोगा, नाभसाख्या अन्येऽपि बहुसंख्यकाः ।
कूटच्छत्रादिका योगा ग्रन्थेषु कथिता बुधैः ॥ ५६२ ॥
समेषां समुपादानमत्र विस्तृतिभीतितः ।
न कृतं केवलं तेभ्यो मुख्या एवात्र वर्णिताः ॥ ५६३ ॥

महापुरुषनाम्ना तु योगाः पञ्चातिविश्रुताः ।
जातकेषु तु सर्वेषु तस्मात्तान् विवृणोम्यहम् ।। ५६४ ।।

सुधा—विविध जातक-ग्रन्थों में अनेक राजयोग, नाभसयोग, कूट, छत्र आदिक योग विद्वानों के द्वारा वर्णित है । सभी योगों का उपादान विस्तार भय से इसमें नहीं किया गया है । यहाँ तो केवल मुख्य योगों का ही वर्णन मैंने किया है ।

पञ्चमहापुरुष योग तथा उसका फल सभी मुख्य जातक-ग्रन्थों में वर्णित है, अतः उन्हें भी मैं यहाँ दे रहा हूँ ।

पञ्चमहापुरुषयोगास्तेषु सफलो रुचकयोगः

स्वर्क्षतुङ्गस्थितो भौमोऽथवा मूलत्रिकोणगः ।
प्रबलः केन्द्रगस्तर्हि योगो रुचकसंज्ञकः ।। ५६५ ।।
तज्जो बलान्वितवपुः कीर्त्तिशीलसमन्वितः ।
लोहितः श्यामलः सुभ्रूर्जितारिर्धनवान् सुखी ।। ५६६ ।।
राजा वा राजसदृशः सप्तत्यब्दमितावधि ।
प्रशास्ति पृथिवीमन्ते दिवं याति मुदान्वितः ।। ५६७ ।।

सुधा—स्वभवन या स्वोच्च या अपने मूलत्रिकोणस्थ भौम यदि केन्द्रगत हों तो रुचकसंज्ञक योग होता है । रुचकयोगोत्पन्न जातक प्रबल शरीरवान्, यश तथा शीलवान्, सुन्दर भौंहों वाला, शत्रुजेता, धनी, सुखी राजा होता है या राजा के समान होता है । वह सत्तर वर्षों तक शासन करने के बाद दिवंगत होता है ।

सफलो भद्रयोगः

स्वर्क्षतुङ्गस्थिते सौम्येऽथवा मूलत्रिकोणगे ।
प्रबले केन्द्रगे भद्रसंज्ञो योगः प्रकीर्त्तितः ।। ५६८ ।।
जातो भद्रोद्भवो मानी शार्दूलप्रतिमाननः ।
प्रज्ञावित्तयशोयुक्तो नित्यं बन्धूपकारकः ।। ५६९ ।।
अशीतिमितवर्षायुर्भूपो वा भूपसन्निभः ।

सुधा—स्वभवन, स्वोच्च या मूलत्रिकोणस्थ बुध यदि केन्द्रगत हों तो भद्रसंज्ञक योग होता है । भद्रसंज्ञक योग में उत्पन्न जातक मानी, सिंहतुल्य आनन वाला, बुद्धि, वित्त तथा यशो युक्त, सदैव बन्धु-बान्धवों का उपकार करने वाला, अस्सी वर्षों तक जीवित रहने वाला राजा या राजसदृश महापुरुष होता है ।

सफलो हंसयोगः

स्वर्क्षतुङ्गस्थिते जीवेऽथवा मूलत्रिकोणगे ।। ५७० ।।
प्रबले केन्द्रगे हंससंज्ञो योग उदीरितः ।
हंसोद्भवो बुधो हंसस्वनो गौरोऽतिसुन्दरः ।। ५७१ ।।

कामी सुवृत्तमूर्धा च भूपो गाङ्गेयदेशपः ।
शताब्दायुरसन्तुष्टः स्त्रीषु केलिसमन्वितः ।। ५७२ ।।

सुधा—स्वर्क्ष (स्वभवन), स्वोच्च या अपने मूलत्रिकोणस्थित प्रबल गुरु केन्द्रगत हों तो हंससंज्ञक योग होता है । हंसयोगोत्पन्न जातक हंसतुल्य आवाज वाला, गौराङ्ग, अतिसुन्दर, कामी, गोल मस्तक वाला गाङ्गेय प्रदेश का राजा, अनेक स्त्रियों के साथ क्रीडा करने वाला, असन्तुष्ट तथा शतायु होता है ।

सफलो मालव्ययोगः

स्वर्क्षतुङ्गस्थिते शुक्रेऽथवा मूलत्रिकोणगे ।
प्रबले केन्द्रगे योगो मालव्याख्यो बुधैः स्मृतः ।। ५७३ ।।
मालव्ययोगजो जातश्चन्द्रकान्तिसमप्रभः ।
स्त्रीचेष्टो ललिताङ्गश्च सुतदारधनान्वितः ।। ५७४ ।।
तेजस्वी शास्त्रवित् शक्तिसम्पन्नश्चारुलोचनः ।
सप्तसप्ततिवर्षाणि यावत् शास्ति महीं मुदा ।। ५७५ ।।

सुधा—स्वभवन, स्वोच्च अथवा स्वमूलत्रिकोणगत प्रबल शुक्र केन्द्रगत हों तो मालव्य योग होता है । मालव्ययोगोत्पन्न जातक चन्द्रतुल्य कान्ति वाला, स्त्री की तरह चेष्टावान्, सुन्दर अङ्ग वाला, स्त्री-पुत्र-धन से परिपूर्ण, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ, प्रेम-शक्तिसम्पन्न एवं शोभनाक्ष होता हुआ सतहत्तर वर्ष तक पृथ्वी पर शासन करता है ।

स्त्रीजातकाध्यायः

लग्नेन्दुवशतो यद्यत्फलमुक्तं महर्षिभिः ।
कन्यकानां तदेवात्र मयाऽपि प्रतिपाद्यते ।। ५७६ ।।
लग्नेन्दुभ्यां तु शारीरं सौभाग्यं सप्तमादपि ।
वैधव्यं निधनस्थानात् पुत्रं पुत्राद् विचिन्तयेत् ।। ५७७ ।।
सप्तमे शुभखेटाभ्यां दृष्टे युक्तेऽपि भूपतः ।
जाया, सौम्यैकतो ज्ञेया प्रिया पत्युस्तथा मदे ।। ५७८ ।।
पापैकतो लोलनेत्राऽधमापापद्वयेन वै ।
पापत्रयेण सा हत्वा पतिं परकुलं व्रजेत् ।। ५७९ ।।
जनुः काले सप्तमस्थे रवौ त्यजति सा पतिम् ।
विधवा भूमितनये शनौ शीघ्रं जरातुरा ।। ५८० ।।

सुधा—लग्न तथा चन्द्रमा द्वारा कन्यकाओं के लिए जो-जो फल महर्षियों ने कहे हैं, मैं भी उन्हीं फलों को कहता हूँ । लग्न-चन्द्रमा पर से शरीर-सौख्यादिक का विचार, सप्तमभाव से सौभाग्य का विचार, अष्टम से वैधव्य का विचार एवं पञ्चम से पुत्र का विचार करना चाहिए । सप्तम में दो शुभग्रहों का संयोग या दृष्टि रहे तो कन्या राजमहिषी, एक शुभ ग्रह रहने से पतिप्रिया, एक पापग्रह के संयोग से

चञ्चलाक्षी और दो पापों के संयोग से अधमा तथा तीन पापग्रहों के संयोग से पति-घातक होकर वह दूसरे के वंशगामिनी होती है।

सप्तम में जन्म के समय यदि रवि हों तो पति को त्याग करने वाली, मंगल हों तो विधवा और शनि हों तो जरातुरा कन्या होती है।

पतिव्रतायोगः

शशाङ्के जन्मलग्नस्थे तृतीयस्थानगेऽपि वा।
शुभग्रहयुते दृष्टे गुरुणा पतिसम्मता।
पतिव्रता च विज्ञेया गुणज्ञा मृदुभाषिणी॥ ५८१॥

सुधा—जन्मलग्न में चन्द्रमा के होने से अथवा तीसरे स्थान पर चन्द्रमा के होने से अथवा शुभग्रहों की दृष्टि होने से अथवा गुरु (बृहस्पति) से युक्त होने से कन्या सौभाग्य युक्त, पतिव्रता तथा शुभ गुणों से युक्त होती है।

सुकन्यायोगाः

यज्जन्मनि सप्तमस्थे भृगौ सौम्यद्वयेक्षिते।
पतिप्रिया विधुमुखी शचीवत् क्षितिमण्डले॥ ५८२॥
लग्ने गुरौ भृगौ वापि कन्याराशिगते बुधे।
मदने मकरे भौमे कर्कस्थे मृगलाञ्छने॥ ५८३॥
अत्यन्तसुन्दरी बाला पत्युः प्रियतमा हि सा।
सर्वसौभाग्यसम्पन्ना पट्टराज्ञीव भूतले॥ ५८४॥
चन्द्रे कर्कस्थिते कन्यागते विधुसुते तथा।
तनौ मीनगते जीवे वृषे भृगुसुते सति॥ ५८५॥
राजकन्या सहस्राली मान्या गुणवती ध्रुवम्।
महाराजस्य पत्नी स्यात्पुण्यशीला विशेषतः॥ ५८६॥

सुधा—जिस कन्या के जन्म के समय सप्तमस्थ शुक्र दो शुभग्रहों से देखे जायँ तो पतिप्रिया चन्द्रमुखी वह कन्या इन्द्राणी की तरह भूमण्डल में विराजमान होती है। लग्न में गुरु या शुक्र हों, कन्याराशिस्थ बुध हों, सप्तम मकर में मंगल हों और कर्क में चन्द्रमा हों तो अत्यन्त सुन्दरी कन्या पतिप्रिया, सर्वसौभाग्यसम्पन्ना तथा पृथ्वी पर पट्टरानी की तरह विराजमान होती है। जिस कन्या के जन्म के समय चन्द्रमा कर्क में तथा बुध कन्या में स्थित हों, मीनलग्नस्थ गुरु और वृषस्थ शुक्र हों तो वह राजकन्या हजारों सखियों द्वारा सम्मान्य, गुणवती तथा महाराज की पुण्यवती पत्नी होती है।

कुरूपस्त्रीयोगः

विषमे लग्नचन्द्रौ चेत्पापेक्षितयुतावपि।
नराकारसमा नारी कुरूपापि गदातुरा॥ ५८७॥

सुधा—विषमराशिस्थ लग्न तथा चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट या पापयुक्त हों तो नराकार की वह कन्या कुरूपा तथा रुग्णा होती है।

सप्तमस्थग्रहफलानि

सप्तमस्थे दिवानाथे पतिप्रेमविवर्जिता।
वृषे मदनगे राकानाथे बालातिसुन्दरी ॥ ५८८ ॥
पतिप्रिया गुणवती विनीतापि प्रजायते।
कर्कराशिगते भौमेऽथवा मन्दान्विते हरौ ॥ ५८९ ॥
जनुः काले मदनगे बाला वैधव्यमाप्नुयात्।
वामाङ्गनाऽथवा सा हि नियतं कपटप्रिया ॥ ५९० ॥
बुधे तुङ्गे मदनगे सपत्नीसहिता हि सा।
पतिप्रिया परीता स्यान्मुक्तामणिगणैः सदा ॥ ५९१ ॥
गुरौ मदनगे बाला गुणज्ञा धर्मतत्परा।
पतिभक्तिपरा नित्यं शशिभे तु विशेषतः ॥ ५९२ ॥
कवौ मदनगे मीनभवने यदि सम्भवेत्।
भर्त्ता तस्या धनुर्धर्त्ता सङ्गीतरसिका स्वयम् ॥ ५९३ ॥
शनौ मदनगे तस्याः पती रोगाकुलाकुलः।
विकलः पुनरुच्चस्थे धनाढ्यो मोदसंयुतः ॥ ५९४ ॥
सप्तमे सिंहिकापुत्रे कुललाञ्छनकारिणी।
दरिद्राऽथ स्वतुङ्गस्थे नित्यं स्वामिसुखान्विता ॥ ५९५ ॥

सुधा—कन्या की कुण्डली में सप्तमस्थ सूर्य के रहने से वह पतिप्रेमरहित होती है। वृष का चन्द्रमा सप्तम में हों तो वह बालिका पतिप्रिया, गुणवती तथा विनीत होती है। कर्कराशि का मंगल या शनि सप्तमस्थ हों तो वह बालिका विधवा हो जाती है या वाराङ्गना (वेश्या) होकर सतत छल-कपट करने वाली होती है। उच्चस्थ बुध सप्तमस्थ हों तो बाला सपत्नीसहिता अर्थात् उसका पति दूसरी शादी वाला होता है। साथ ही वह बालिका मुक्तामणिगणों से विभूषित रहती है। गुरु सप्तमस्थ हों तो वह कन्या गुणवती, धर्मतत्परा एवं पतिभक्तिकारिणी होती है, कर्कस्थ गुरु में तो विशेषतः वह उपर्युक्त गुणसम्पन्न होती है। शुक्र मीनस्थ होकर सप्तम में हो तो उसका पति धनुर्धारण करने वाला और वह खुद संगीतरसिका होती है। शनि सप्तमस्थ हों तो उसका पति रोगसंकुल से व्याकुल रहता है, किन्तु उच्चस्थ शनि सप्तमस्थ हों तो वह धनाढ्य तथा प्रसन्न रहता है। राहु सप्तमस्थ हों तो वह बालिका वंश में कलङ्क लगाने वाली तथा दरिद्रा होती है। उच्चस्थ राहु में वह पतिसौख्ययुक्ता होती है।

वैधव्ययोगाः

चन्द्रात्सप्तमभावस्थाः कुजमन्दागुभास्कराः ।
तनोर्जन्माष्टममदस्थाश्च वैधव्यकारकाः ।। ५९६ ।।
पापमध्यगतौ लग्नचन्द्रौ सद्दृष्टिवर्जितौ ।
जनुः काले यदि तदा बालातिव्यभिचारिणी ।। ५९७ ।।
मेषवृश्चिकगो राहुः सपापोऽष्टमरिष्फगः ।
जनुर्यदि तदा बाढं बाला वैधव्यमाप्नुयात् ।। ५९८ ।।
मृगे तनौ सप्तमस्थौ भवेतां कुज-भास्करौ ।
बाला धनविहीनापि जारेण रमते सदा ।। ५९९ ।।
लग्ने व्यये च पाताले सप्तमे वाऽष्टमे कुजः ।
सपापस्तर्हि जारेण रमते व्यभिचारिणी ।। ६०० ।।
परस्परनवांशस्थौ भवतः कुजभार्गवौ ।
जनुः काले यदि तदाऽन्यगेहे रमतेऽङ्गना ।। ६०१ ।।
सप्तमेशोऽष्टमेशश्च परस्परगृहोपगौ ।
पापेक्षणयुतौ स्यातां बालावैधव्यकारिणौ ।। ६०२ ।।
सप्ताष्टमपती षष्ठे व्यये वा पापपीडितौ ।
असंशयं तदा बाला वैधव्यमुपयाति वै ।। ६०३ ।।

सुधा—चन्द्रमा से सप्तमस्थ मंगल, शनि तथा रवि और लग्न से अष्टम तथा सप्तमस्थ वे वैधव्यकारक होते हैं। लग्न तथा चन्द्रमा पापद्वयमध्यगत होकर शुभदृष्टि से वञ्चित रहें तो बालिका व्यभिचारशीला होती है। मेष-वृश्चिकस्थ राहु सपाप होकर अष्टम या द्वादशस्थ हों तो बाला विधवा हो जाती है। मकरलग्न और सप्तमस्थ मंगल तथा सूर्य हों तो दरिद्रा बालिका रहने पर भी जार के साथ रमणशीला होती है। लग्न द्वादश, चतुर्थ, सप्तम या अष्टमस्थ मंगल यदि सपाप हों तो भी वह जार के साथ रमण करती है। मंगल तथा शुक्र परस्पर नवांशस्थ हों तो भी बाला दूसरे के घर में रमणशीला होती है। सप्तमेश तथा अष्टमेश परस्पर एक-दूसरे के भवनस्थ हों और पापग्रह की दृष्टि तथा संयोग रहे तो बाला विधवा हो जाती है। सप्तमेश तथा अष्टमेश षष्ठ या द्वादश स्थान में पापग्रह से पीड़ित हो तो निःसन्देह बालिका विधवा हो जाती है।

अष्टमस्थग्रहफलानि

जीवेऽष्टमेऽथवा शुक्रे नष्टगर्भा मृतात्मजा ।
भौमे तु कुलटा ज्ञेया चन्द्रे स्वामिसुखोज्झिता ।। ६०४ ।।
शनौ तत्र स्थिते रुग्णपतेः पत्नी, दिनाधिपे ।
सन्तप्ता व्याधिनी राहौ रमतेऽन्यैः सदैव सा ।। ६०५ ।।

सुधा—अष्टमस्थ गुरु या शुक्र हों तो बालिका नष्टगर्भा या मृतात्मजा (जिसकी सन्तान मर जाय) हो जाती है। मंगल यदि अष्टमस्थ हों तो वह कुलटा होती है। चन्द्रमा यदि अष्टम में हों तो उसे पतिसौख्य नहीं प्राप्त होता है। शनि यदि अष्टमस्थ हों तो वह रुग्ण पति की पत्नी होती है। सूर्य यदि अष्टमस्थ हों तो वह सन्तापयुक्ता और राहु यदि अष्टमस्थ हों तो व्याधियुक्ता होने पर भी दूसरे के साथ रमण करने वाली होती है।

इति मैथिलपण्डितश्रीदेवचन्द्रझाविरचिते व्यावहारिकज्यौतिषे सर्वस्वे स्त्रीजातकाध्यायः समाप्तः।

अथायुर्दायाध्यायः

ग्रहाणां निसर्गपिण्डायुर्वर्षाणि

विंशतिर्भूर्द्वयं नन्दा धृतिर्विंशतिसंख्यकाः ।
पञ्चाशच्च निसर्गाख्या ग्रहाणां वत्सराः क्रमात् ।। १ ।।
नन्देन्दवो बाणपक्षाः शरक्ष्मा भास्करास्तथा ।
पञ्चेन्दवः कुपक्षाश्च नखाः पिण्डाभिधाः समाः ।। २ ।।
उच्चस्थानामिमे नीचस्थितानामर्धमीहितम् ।
मध्येऽनुपाततो ज्ञेया ग्रहाणां स्फुटवत्सराः ।। ३ ।।

सुधा—सूर्यादि सातों ग्रहों की निसर्गायु क्रमशः निम्नाङ्कित है। जैसे सूर्य की २० वर्ष, चन्द्रमा की १ वर्ष, मंगल की २ वर्ष, बुध की ९ वर्ष, गुरु की १८ वर्ष, शुक्र की २० वर्ष और शनि की ५० वर्ष। इसी तरह उपर्युक्त सातों ग्रहों की पिण्डायु निम्नाङ्कित है। जैसे सूर्य की १९ वर्ष, चन्द्रमा की २५ वर्ष, मंगल की १५ वर्ष, बुध की १२ वर्ष, गुरु की १५ वर्ष, शुक्र की २१ वर्ष और शनि की २० वर्ष। ये वर्ष उच्चस्थ ग्रहों के हैं। नीचस्थित ग्रहों की आयु उपर्युक्त आयु का आधा मात्र समझना चाहिए। उच्च तथा नीच के मध्यवर्त्ती ग्रहों की आयु अनुपात से समझना चाहिए।

निसर्गपिण्डायुःस्पष्टीकरणविधिः

उच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यश्चक्रात् षड्भवनो नकः ।
षड्भाधिकोऽसौ यदि चेद्रक्षणीयो यथास्थितः ।। ४ ।।
लिप्तीकृतो हतः स्वाब्दैश्चक्रलिप्ताभिरुद्धृतः ।
फलमब्दादिकं यत्तत् पैण्डये स्पष्टायुरादृतम् ।
नैसर्गिकेऽप्येष एव स्पष्टायुःसाधको विधिः ।। ५ ।।

सुधा—स्पष्ट ग्रह में उच्च को घटाने से उच्चोनग्रह यदि ६ राशि से अल्प हों तो १२ राशि में घटावें और ६ राशि से अधिक हों तो यथास्थित रखें। उस अन्तर की कला बनाकर निसर्ग या पिण्डायु के वर्ष से गुणा कर उसमें चक्रलिप्ता (२१६००) से भाग दें तो जो वर्ष, मास एवं दिन प्राप्त हों वही उस ग्रह की स्फुट पिण्डायु या स्फुट निसर्गायु होती है।

आयुषो हरणम्

उच्चे पूर्णं दलं नीचेऽन्तरे तदनुपाततः ।
लग्नमंशमितं राशितुल्यं केचिद् वदन्ति हि ।। ६ ।।
शत्रुक्षेत्रगताः सर्वे विहायावनिनन्दनम् ।
स्वत्रिभागं, दलं चास्ता हरन्ति न सितार्कजौ ।। ७ ।।

व्ययाद् वामस्थितैः पापैः सर्वार्धत्र्यंशतुर्यकाः ।
पञ्चषष्ठमिता भागाः आयुषो व्यपयान्ति वै ।। ८ ।।
सद्भिरर्धमिहोक्तानामेकर्क्षोपगतेषु यः ।
बली स्वीयं हरेदंशं नान्यः सत्यमतं त्विदम् ।। ९ ।।

सुधा—ग्रहों ही उपर्युक्त पिण्डायु अथवा निसर्गायु उच्चस्थ ग्रहों में ही कही गई है । नीचस्थ ग्रहों की आयु उपर्युक्त आयु की आधी होगी । उच्च-नीच के मध्य में अनुपात के द्वारा आयुर्ज्ञान करना चाहिए । जैसे ६ राशि (१८००) में यदि आधी आयु हो तो ग्रहोच्चान्तर में क्या ? यहाँ दोनों ओर ग्रह तथा उच्च की दूरी जानकर ही अनुपात करें । आगत लब्धि को पूर्णायु में घटावें तो उस ग्रह की स्पष्ट पिण्डायु या निसर्गायु होती है । लग्न के द्वारा जितने नवांश भुक्त हो तत्तुल्य वर्ष तथा अनुपातागत मासादि लग्नायु समझना चाहिए । किसी-किसी आचार्य ने राशितुल्य लग्नायु होती है, ऐसा कहा है । मंगल को छोड़कर शत्रक्षेत्र में प्राप्त ग्रह अपने आयु का त्रिभाग ($\frac{1}{3}$) नाश करता है, किन्तु शत्रुगृहगत भी मंगल पूर्णायु ही प्राप्त करता है । शुक्र-शनि के अतिरिक्त सभी ग्रह अस्त होने पर अपनी आयु का आधा भाग नाश करते हैं, किन्तु शुक्र-शनि अस्त होने पर भी पूर्णायु प्राप्त करते हैं ।

बारहवें में यदि पापग्रह हों तो पूरी आयु, ग्यारहवें में पापग्रह के रहने से आधी आयु, दशवें में रहने पर समस्त आयु का त्रिभाग, नवें में पाप के होने से चतुर्थांश, आठवें में पापग्रह होने से पञ्चमांश, सातवें में पाप रहे तो छठा भाग घट जाते हैं ।

शुभग्रहों के तत्तत्स्थानों में रहने से उपर्युक्त का आधा भाग ही घटेगा । जैसा कि बारहवें में आधा, ग्यारहवें में चौथाई, दशवें में षष्ठांश, नवें में अष्टमांश, आठवें में दशमांश और सातवें में द्वादशांश घटता है । यदि एक ही स्थान में दो-तीन ग्रह हों तो उनमें बलिष्ठ ग्रह का ही अंश घटेगा, न कि सभी का; ऐसा सत्याचार्य का मन्तव्य है ।

उदितावयवाढ्या ये भुक्ता नवमभागकाः ।
सार्धोदितोदिताख्यास्ते नवांशास्तैः पृथक् पृथक् ।। १० ।।
ग्रहायुर्दायगुणितात् अष्टोत्तरशतोद्धृतात् ।
लब्धं ग्रहायुषः शोध्यं सपापेऽङ्गे, शुभेक्षिते ।। ११ ।।
तद्दलं शोधयेच्छेषं पिण्डायुः स्फुटमीरितम् ।
निसर्गायुश्च खेटानां ज्ञेयमेवं मनीषिभिः ।। १२ ।।

सुधा—लग्न के जितने नवांश व्यतीत हुए हों वे उदित नवांश कहे जाते हैं । जिस नवांश में जन्म हो, उसका जितना भाग बीता हो, उस पर से त्रैराशिक के द्वारा आनीत लब्धि को उदित नवांश में जोड़ने से सार्धोदित उदित नवांश होता है । उनसे ग्रहों के अलग-अलग आयुर्दाय को गुणा कर १०८ से भाग देने पर जो वर्षादि लब्धि आवे उसे सपाप लग्न की स्थिति में ग्रहायु में घटावें । यदि लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि

रहे तो पूर्वानीत वर्षादि का आधा ही ग्रहायु में घटावें तो स्फुट पिण्डायु या स्पष्ट निसर्गायु होती है।

अथवा लग्नभुक्तांशकलाभिर्गुणिताद् ग्रहात्।
आयुर्दायादुद्धृताच्च खखर्त्तुक्ष्मासुलोचनैः ॥ १३ ॥
लब्धमन्दादिकं शोध्यमायुषो गणितागतात्।
सपापेऽङ्गे, सौम्यखेटदृष्टे त्वर्धं विशोधयेत्।
शेषं निसर्गपिण्डायुः स्फुटं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ १४ ॥

सुधा—अथवा लग्न के भुक्तांशों की कलाओं से ग्रहों की अपनी-अपनी आयु को अलग-अलग गुणा कर २१६०० से भाग दें, लब्ध जो वर्षादिक आवे उसे सपाप लग्न की स्थिति में गणितागत आयु से घटावें। लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि रहने से आगत वर्षादि का आधा ही घटावें तो शेष स्पष्ट पिण्डायु या निसर्गायु हो जाती है।

लग्नायुःसाधनम्

ग्रहाणामुदितं यद्वदायुः साध्यं तनोस्तथा।
तत्र लग्ने बलाढ्ये तु भुक्तांशा राशिवर्जिताः ॥ १५ ॥
लिप्तीकृता द्विशत्या तु हृता वर्षादिकं फलम्।
लग्नायुर्दायसंयुक्तं स्फुटं लग्नायुरादृतम् ॥ १६ ॥
लग्नराशिसमानाब्दान्मासादींश्चानुपाततः।
ज्ञात्वा तद्योगतुल्यं स्याल्लग्नायुरिति केचन।
मन्यन्ते, किन्तु पूर्वोक्तप्रकारो बहुसम्मतः ॥ १७ ॥

सुधा—जिस तरह ग्रहों की आयु (पिण्डायु, निसर्गायु) लाई जाती है उसी तरह लग्न की भी आयु लानी चाहिए। लग्न बली हो तो (अर्थात् होरास्वामी गुरुज्ञ-वीक्षितयुता के अनुसार) लग्नराशि के अतिरिक्त उसके भुक्तांश की कला बनाकर दो सौ (२००) से भाग लें तो जो वर्षादिक लब्धि आवे उसे पूर्वानीत लग्नायु में जोड़ दे तो सत्याभिमत लग्नायु होती है। किसी-किसी आचार्य ने लग्नराशितुल्य वर्ष और भुक्तांश पर से अनुपात के द्वारा मास-दिनादि लाकर दोनों के योग को ही लग्नायु कही है। किन्तु सत्याभिमत पूर्वोक्त प्रकार ही अधिक मान्य है।

अंशकायुःसाधनम्

परायुषः सप्तमांशं ग्रहायुर्जीवशर्मभिः।
प्रोक्तं, सत्यमतं भुक्तनवांशमसमं स्मृतम् ॥ १८ ॥
नादृतं शर्मभिः प्रोक्तं सत्योक्तं बहुसम्मतम्।
सत्योक्तौ ग्रहलिप्तासु शतद्वयहृतासु यत् ॥ १९ ॥
लब्धं द्वादशभिस्तष्टं शेषमब्दास्तु प्राक्तनात्।
शेषान्मासादिकं चैवं ग्रहायुर्वत्सरादिकम् ॥ २० ॥

तुङ्गवक्रोपगानां तु तदायुस्त्रिगुणं तथा।
वर्गोत्तमे नवांशे वा गृहे द्रेष्काणके निजे ॥ २१ ॥
स्थितानां तद्द्विगुणितं वेद्यं सत्याभिसम्मतम्।
विशेषोऽयं भदत्तोक्तादन्यत्प्रागुक्तिवत्स्फुटम् ॥ २२ ॥
किन्तु भांशसमं होरा वर्षं दद्याद् विशेषतः।
वीर्यान्विता भवेच्चेत् सा तदा राशिसमाब्ददा ॥ २३ ॥
लग्ने सपापे यो ह्रासो या च स्पष्टीकृतिः कृता।
पूर्वोक्तैर्वत्सरैः पूर्वैः सकलं तत् परित्यजेत् ॥ २४ ॥
सत्योपदेशो नियतं वरमन्योक्तितो भृशम्।
किन्तु तुङ्गस्वगेहादिवक्रद्रेष्काणगेषु वै ॥ २५ ॥
ग्रहाणां यद् बहुघ्नत्वं तत्तु भूरि सकृद् भवेत्।
हानिष्वपि सकृत्कार्या या स्यात्तासु महत्तरा ॥ २६ ॥

सुधा—जीवशर्मा ने परमायु (१२० वर्ष) का सप्तमांश सभी सातों ग्रहों की आयु समान रूप से कही है। उनके कथनानुसार सभी ग्रहों की आयु १७ वर्ष, १ मास, २२ दिन आदि है। किन्तु सत्याचार्य ने जिस किसी भी राशि के यत्संख्यक नवांश में ग्रह हों उसके बराबर ही वर्ष ग्रहायु होती है—ऐसा कहा है। अधिकतर आचार्यों ने सत्याचार्य के ही मत को श्लाघ्य माना है, शर्मोक्त कथन को अनादृत किया है।

सत्याचार्य के मतानुसार ग्रह के राश्यादि को कला बनाकर २०० से भाग देने पर जो लब्धि आवे उसे वर्ष, लब्धि यदि १२ से अधिक आवे तो उसमें भी १२ से भाग देकर शेष को वर्ष समझे। दो सौ से भाग देने के बाद जो शेष (प्राक्तन) बचा है उसे बारह से गुणा कर २०० से भाग देने से मास, पुनः शेष को ३० से गुणा कर २०० से भाग देने पर दिन, पुनः शेष को ६० से गुणा और २०० से भाग देने पर घटी और अन्ततः आगत शेष को ६० से गुणा कर और २०० से भाग देने पर पल होते हैं। इस तरह प्राप्त वर्षादिक ग्रहायु सत्याभिमत है।

सत्याचार्यानुसार ग्रह यदि अपने उच्च में अथवा वक्रावस्था में रहें तो आगत आयु को त्रिगुण, अपने वर्गोत्तम या नवांश या स्वगृह अथवा अपने द्रेष्काण में हो तो आयात आयु को द्विगुण करना चाहिए।

सत्याचार्यानुसार लग्न भुक्तनवांशतुल्य आयुःप्रद होता है। यदि लग्न बलवान् हो तो वह भुक्तराशितुल्य वर्ष आयु देता है। उनके मत में सार्धोदितोदितोक्त (क्रूरोदय) रीति से अपहरण तथा पिण्डायु एवं निसर्गायु से आयु की स्पष्टी क्रिया नहीं करनी चाहिए। सत्याचार्य के मत में आयु का द्वैगुण्य या त्रैगुण्य जीवशर्मादि कथन से विशेष है, अन्य बातें समान ही हैं। होरा (लग्न) यदि बलवती रहती तो नवांशतुल्य वर्षप्रद होती है। सपाप लग्न में जो ह्रास या ग्रहों के वर्षों के द्वारा जो स्पष्टीकरण किया गया है वह भी सत्यमतानुसार परित्याज्य है। सत्योपदेश अन्य

आचार्यों के कथनापेक्षया अवश्य श्रेष्ठ है। किन्तु उच्च वक्र स्वगेहादि में ग्रहों के रहने से जो द्वैगुण्य या त्रैगुण्य कहा गया है, वह यदि असकृत् प्राप्त हो तो एकमात्र (बृहत्तर) ही करना, न कि बार-बार। इसी तरह यदि ह्रास भी अनेकत्र प्राप्त हो तो एकमात्र महत्तर ह्रास करना चाहिए।

रश्मिजायुः

उच्चगेषु दिनेशादिग्रहेषु परररश्मयः।
दशाङ्कशरबाणाद्रिवसुबाणमिताः क्रमात् ॥ २७ ॥
उच्चोनं खेचरं षड्भादल्पं चक्राद् विशोधयेत्।
कलीकृतं स्वकीयोच्चरश्मिभिर्गुणयेत्ततः ॥ २८ ॥
भजेत्तच्चक्रलिप्ताभिर्लब्धं वर्षादिकं फलम्।
रश्मिजातं ग्रहाणां स्यादायुर्विज्ञजनोदितम् ॥ २९ ॥

सुधा—सूर्यादि ग्रह यदि उच्चस्थ हों तो उनकी परम रश्मि क्रमशः १०।९।५।५।७।८।५ ये हैं। ग्रह में उच्च को घटाने से ६ राशियों से अल्प शेष में, उसे १२ राशियों में घटावें, शेष की कला बनाकर अपनी-अपनी उच्च रश्मि से गुणा कर चक्र-लिप्ता (२१६००) से भाग दें तो वर्षादिक लब्धि ही ग्रहों की रश्मिज आयु होती है।

रश्मेर्हरणम्

तुङ्गवक्रोपगे नैजगृहे वाति सुहृद्गृहे।
ग्रहे द्विगुणिता वक्रावसानेऽष्टमभागकैः ॥ ३० ॥
हीना, रिपुगृहस्थे तु द्वादशांशविवर्जिताः।
अस्तङ्गते दलोनास्ते हित्वा भार्गवसूर्यजौ।
रश्मयो, रश्मियोगो हि रश्मिजायुर्बुधैः स्मृतम् ॥ ३१ ॥

सुधा—ग्रह यदि अपने उच्च, अपने घर या अपने अधिमित्र गृह में हों या वक्री हों तो आनीत रश्मि को द्विगुणित करें। वक्रावसान से यदि ग्रह हों तो अष्टमांश घटा दें, शत्रुक्षेत्रस्थ हों तो द्वादशांश घटा दें, अस्तंगत हों तो शनि-शुक्रातिरिक्त ग्रहों में आधा घटा दें तो आगत रश्मियों का योग ही रश्मिज आयु होती है—ऐसा अभिज्ञों ने कहा है।

आयुषां ग्राह्याग्राह्यत्वनिर्णयः

लग्नेशे प्रबले सौम्यदृष्टेंऽशायुरभीप्सितम्।
सूर्ये बलिष्ठे पिण्डायुर्निसर्गायुर्विधौ स्मृतम् ॥ ३२ ॥
द्वयोस्तुल्यबलत्वे तु योगार्धं कथितं बुधैः।
त्रयाणां बलसाम्ये तद्योगत्र्यंशमुदीरितम् ॥ ३३ ॥

सूर्ये तुङ्गस्थिते चान्ये बलिष्ठाः केन्द्रकोणगाः ।
एवमुच्चस्थितैः खेटैर्योगे वा शशहंसके ।। ३४ ।।
योगे केमद्रुमे वापि बलिष्ठे शशलाञ्छने ।
राजयोगेषु सर्वेषु पैण्डचमाह पराशरः ।। ३५ ।।
गुरौ लग्नस्थिते कर्मगते भानौ विधौ सुखे ।
सप्तमे वा, शुभैः केन्द्रत्रिकोणोपचयस्थितैः ।। ३६ ।।
आपोक्लिमगतैः पापैरपि पिण्डायुरादृतम् ।
बलिष्ठे सर्वतो भौमेऽष्टवर्गायुस्तथा विधोः ।। ३७ ।।
पुत्रे रश्मिजमाचार्ये सुराणां तु दशाभिधम् ।
शुक्रे वलिष्ठे चक्रायुः सामुदायं शनौ स्मृतम् ।
एवमाचार्यमुख्यानां बहूनामस्ति सम्मतम् ।। ३८ ।।

सुधा—अनेकविध पिण्डायु, निसर्गायु, अंशायु आदि आयुर्दायों में कहाँ किसका ग्रहण करना चाहिए इसका विस्तृत विवरण यहाँ दिया गया है ।

सामान्यतः लग्नेश सहित सातों ग्रहों में सर्वाधिक प्रबल ग्रहानुसार ही आयुर्दाय ग्राह्य होता है । जैसे प्रबल लग्नेश पर शुभग्रह की दृष्टि रहें तो अंशायु ग्राह्य है । सूर्य बलिष्ठ रहें तो पिण्डायु, चन्द्रमा बलिष्ठ हों तो निसर्गायु । दो ग्रह समान बल वाले हों तो दोनों आयुर्दायों का योगार्ध, यदि तीन ग्रह समान बल वाले हों तो तीनों के योगत्र्यंश ग्राह्य होता है ।

सूर्य उच्चस्थ हो और अन्य ग्रह भी केन्द्रकोणस्थ होकर प्रबल हों अथवा उच्चस्थ अधिकतर ग्रह हो या शशहंससंज्ञक योग हों, केमद्रुमयोग में भी चन्द्रमा प्रबल हों या सभी राजयोगों में पिण्डायु ही ग्राह्य है—ऐसा पराशर ने कहा है । गुरु लग्नस्थ हों या सूर्य राज्यस्थानगत हो या चन्द्रमा चौथे वा सातवें स्थान में हों, साथ ही शुभ-ग्रह केन्द्र या नवम, पञ्चम या उपचयस्थान में हों और पापग्रह यदि आपोक्लिमस्थ हों तो पिण्डायु ही ग्राह्य है ।

सभी ग्रहों में यदि मंगल बलिष्ठ हो तो अष्टवर्गायु, बुध वलिष्ठ हो तो रश्मिजायु, गुरु बलिष्ठ हो तो दशायु, शुक्र बलिष्ठ हों तो चक्रायु और शनि वलिष्ठ हों तो सामुदायायु ग्राह्य हैं—ऐसा बहुत से आचार्यों का मन्तव्य है ।

जैमिनिमहर्षिमतायुर्विचारः

आयुः पितृदिनेशाभ्यामित्यादि दशसूत्रकैः ।
महर्षिजैमिनिप्रोक्तमायुरेवं विचिन्तयेत् ।। ३९ ।।
चरे लग्नेशाष्टमेशौ वा स्थिरद्विस्वभावयोः ।
दीर्घायुर्जातको ज्ञेयो मध्यायुस्तौ चरे स्थिरे ।। ४० ।।

किं वा तौ द्विस्वभावे, हीनायुर्यदि तौ स्थिरे।
अथवैकश्चरेऽन्यस्तु द्विस्वभावे भवेद्यदि ॥ ४१ ॥

सुधा—दीर्घायुयोग—(१) लग्नेश, अष्टमेश जहाँ कहीं भी चरराशि में हों तो जातक दीर्घायु होता है। (२) अथवा लग्नेश, अष्टमेश दोनों में से कोई स्थिर में तथा दूसरा द्विस्वभाव में हों तो भी जातक दीर्घायु होता है।

मध्यायुयोग—(१) लग्नेश, अष्टमेश दोनों चर-स्थिर में अर्थात् कोई एक चर में और दूसरा स्थिर में; जैसे लग्नेश चर में और अष्टमेश स्थिर में अथवा लग्नेश स्थिर में और अष्टमेश चर में हों तो मध्यायुयोग होता है। (२) अथवा लग्नेश, अष्टमेश दोनों द्विस्वभाव में हो तो भी मध्यायुयोग होता है।

हीनायुयोग—(१) लग्नेश, अष्टमेश दोनों यदि स्थिर में हों तो हीनायु। (२) एक चर में दूसरा द्विस्वभाव में हों तो भी हीनायु समझना चाहिए।

स्पष्टार्थ चक्र

	१	२	३
दीर्घायुः	चरे लग्नेशः चरेऽष्टमेशः	स्थिरे लग्नेशः द्विस्वभावेऽष्टमेशः	स्थिरेऽष्टमेशः द्विस्व० लग्नेशः
मध्यायुः	चरे लग्नेशः स्थिरे अष्टमेशः	स्थिरे लग्नेशः चरेऽष्टमेशः	लग्नेशः द्विस्व० अष्टमेशः द्विस्व०
हीनायुः	चरे लग्नेशः द्विस्व० अष्टमेशः	चरेऽष्टमेशः द्विस्व० लग्नेश	लग्नेशः स्थिरे अष्टमेशः स्थिरे

प्रकारान्तरेणायुर्विचारः

यथा लग्नाष्टमेशाभ्यां विचारः कृत आयुषः।
तथा मन्देन्दुतो वापि लग्नेन्दुभ्यां विचारयेत् ॥ ४२ ॥

सुधा—जिस तरह लग्नेश-अष्टमेश पर से आयुर्विचार किया गया है उसी तरह शनि-चन्द्रमा या लग्न-चन्द्रमा पर से आयुर्विचार करना चाहिए।

विशेष—मन्द पद से शनि तथा लग्न दोनों का ग्रहण होता है, अतः उपर्युक्त अर्थ बहुसम्मत अर्थ किया गया है।

कई एक ने मन्द पद से शनि मात्र का, कई दूसरों ने मन्द पद से लग्न मात्र का ही ग्रहण किया है, जो अग्रिम सूत्र से खण्डित हो जाता है।

तृतीयप्रकारेणायुर्विचारः

लग्नेशाष्टमनाथाभ्यामायुः प्रोक्तं यथा पुरा।
तथा होराजनुर्लग्नवशादपि निभालयेत् ॥ ४३ ॥
एवमुक्तप्रकारेषु दीर्घमध्याल्पनिर्णयः।
प्रकारद्वयसंवादात्कार्यो भिन्नेषु च त्रिषु ॥ ४४ ॥

होराजनुर्लग्नतो यद्ग्राह्यमायुस्तदेव वै।
चन्द्रे लग्ने सप्तमे वा लग्नेन्दुभ्यां तदन्यथा।
स्थिते चन्द्रे शनीन्दुभ्यामायुर्दायं विचिन्तयेत्॥ ४५॥

सुधा—लग्नेश-अष्टमेश के द्वारा जिस तरह पहले आयुर्विचार किया गया है उसी तरह लग्न तथा होरालग्न पर से भी आयुर्विचार करना चाहिए। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारत्रय में दीर्घायु, मध्यायु तथा अल्पायु का निर्णय संवाद से करना चाहिए। अर्थात् दो प्रकार से जो आवे उसे ही मानना चाहिए। यदि तीनों प्रकार से आनीत आयु भिन्न-भिन्न हो तो तृतीय प्रकार लग्न होरा लग्न से आनीत आयु ही ग्राह्य है।

चन्द्रमा लग्न या सप्तम में रहें तो लग्न-चन्द्रमा पर से और लग्न सप्तम के अतिरिक्त स्थान में वे हों तो शनि-चन्द्रमा पर से आयुर्दाय लाना चाहिए।

जैसा कि इस सम्बन्ध में वृद्धवचन इस प्रकार है—

'लग्नेशादष्टमेशाच्च योगैकः कथितो द्विज।
होरालग्नविलग्नाभ्यां योगमन्यं विचिन्तयेत्॥
तृतीयं शनिचन्द्राभ्यां चिन्तनीयं सदा द्विज।
लग्नेन्दौ मदने वापि चिन्तयेल्लग्नचन्द्रतः'॥

दीर्घमध्याल्पायुर्योगानाहुर्वृद्धाः

दीर्घे योगत्रयेणैवं नखचन्द्र(१२०)समाब्दकाः।
योगद्वयेन वस्वाशाः (१०८) योगैकेन रसाङ्ककाः (९६)॥४६॥
मध्ये योगत्रयेणैवं खाष्ट(८०)संख्याब्दकाः स्मृताः।
द्व्यगा (७२) योगद्वयेनात्र योगैकेनाब्धिषड्मिताः (६४)॥ ४७॥
अल्पे योगत्रयेणात्र द्वात्रिंशन्मित(३२)वत्सराः।
योगद्वयेन षट्त्रिंशत् (३६) योगैकेन च खाब्धयः (४०)॥ ४८॥

सुधा—दीर्घायु के तीन भेद १२०, १०८, ९६ हैं।
मध्यायु के तीन भेद ८०, ७२, ६४ हैं।
अल्पायु के तीन भेद ४०, ३६, ३२ हैं।
दीर्घायु : एकयोगे (९६), योगद्वये (१०८), योगत्रये १२०।
मध्यायु : एकयोगे (६४), योगद्वये (७२), योगत्रये (८०)।
अल्पायु : योगत्रये (३२), योगद्वये (३६), एकयोगे (४०)।

अथ स्पष्टायुः साधनप्रकारः

योगकारकतत्त्वानां युतिरंशादिका च या।
हृता कारकसंख्याभिर्गुणिता प्राप्तखण्डकैः॥ ४९॥
अंशादिकं फलं, तच्च द्वादशघ्नं दिनादिकम्।
भुक्तमायुर्विशोध्यं तत्सिद्धायुर्मानतः स्फुटम्॥ ५०॥

सुधा—योगकारक ग्रहों के अंशादिक योग में योगकारकों की संख्या से भाग दें, पुनः यथाप्राप्त खण्डों से गुणा कर अंशादिक गुणनफल को द्वादशघ्न करने पर (१२ से गुणा करने पर) दिनादिक भुक्त आयु समझें। उसे मास-वर्ष बनाकर पूर्व-सिद्ध (दीर्घ-मध्य-अल्प) आयु में घटावें तो स्पष्ट आयु हो जाती है।

अर्थात् योगकारक ग्रह (जैसे कि—१. लग्नेश-अष्टमेश, २. शनि-चन्द्रमा या लग्न-चन्द्रमा, ३. जन्मलग्न तथा होरालग्न) जितने हों उनके अंशादिकों के योग में योगकारक ग्रहों की संख्या से भाग लें, अर्थात् एक योग से सिद्ध आयुर्दाय हो तो दो से, दो योगों से सिद्ध में चार से और तीन योगों से सिद्ध में छः से भाग लें। इस तरह जो अंशादिक लब्धि हो उसको यथाप्राप्त खण्ड से गुणा करने से जो अंशादिक गुणनफल हो उसे बारह से गुणा करें तो दिनादिक भुक्त आयु होती है। इस भुक्त आयु को सिद्ध दीर्घ-मध्य-अल्प आयु में घटावें तो शेष स्पष्ट आयु होती है।

जैसे किसी कल्पित कुण्डली में कल्पित अंशादिक योगकारक ग्रह निम्नाङ्कित हैं—

लग्न = २५।२३।५३
होरालग्न = ११।२१।५५
शनि = ११।१५।१२
चन्द्र = १४।१८।१६
____
योग—६१।२९।१६

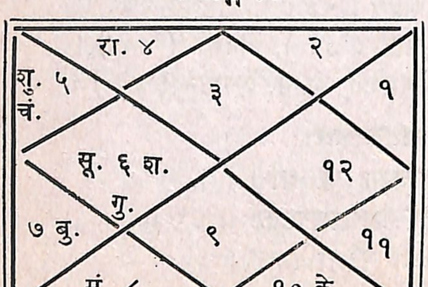
इसमें योगकारक संख्या ४ से भाग देने पर लब्ध अंशादि = १५°।२२'।१९"। इसे दो प्रकार से मध्यायु होने के कारण दूसरे खण्ड ३६ से गुणा किया तो गुणनफल = ५५'३।२३'।२४"। इसे १२ से गुणा करने पर गुणनफल = ६६४०।४०।४८ = दिनादिक भुक्त आयु। इसमें ३० से भाग देने पर २२१।१०।४०।४८ = मासादिक आयु। पुनः वर्ष बनाने के लिए १२ से भाग देने पर १८ वर्ष ५ मा० १० दि० ४० घ० ४८ प०

= व० मा० दि० घ० प०
　१८।५।१०।४०।४८ । इसे दो योग सम्बन्धी मध्यायु—वर्ष ७२ में घटाने पर

७२—(१८।५।१०।४०।४८) = व० मा० दि० घ० प०
　　　　　　　　　　　　　५३।६।१९।१९।१२ । यही स्पष्ट आयु हुई।

अब प्रस्तुत उदाहरण, जिसे मैं आरम्भ से ही लेकर चला आ रहा हूँ, को लीजिए—

जन्माङ्गचक्र



लग्नेशो बुधश्चरे अष्टमेशो गुरुर्द्विस्वभावे	हीनायुः
शनिर्द्विस्वभावे चन्द्रः स्थिरे	दीर्घायुः
लग्नं द्विस्वभावे होरालग्नं द्विस्वभावे	मध्यायुः

यहाँ तीनों प्रकार से तीन तरह की भिन्न-भिन्न आयु सिद्ध हुई। अतः लग्न और होरालग्न के द्वारा आनीत मध्यायु ही मान्य होगी।

लग्न = २।२८।११।१५

होरालग्न = ११।१४।०।४१

अतः अंशादिक योगकारक वे दोनों—

लग्न = २८।११।१५

होरालग्न = १४।०।४१

योग = ४२।११।५६

इसमें योगकारक की संख्या दो से भाग देने पर = २१।५'।५८"। इसे यथाप्राप्त प्रथम खण्ड ३२ से गुणा करने पर = ६७५।१०।५६। पुनः इसे १२ से गुणा करने पर = ८१०२।११।१२ = दिनादिक भुक्त आयु हुई। इसमें ३० से भाग देने पर = २७०।२। ११।१२। = मासादिक भुक्तायु। पुनः १२ से भाग देने पर वर्षादिक भुक्तायु = २२। ६।२। इसे एकयोगसम्बद्ध मध्यायु वर्ष ६४ में घटाने पर ६४–२२।६।२ = ४१।५। २० अर्थात् ४१ वर्ष, ५ मास, २ दिन = स्पष्टायु।

महर्षि जैमिनि के मतानुसार आनीत यह आयु अधिक नहीं है, परन्तु बृहत्पाराशर होराशास्त्र के निम्न उद्धरण के अनुसार इसे दीर्घायु, बुद्धिमान्, धनी तथा राजवल्लभ होना चाहिए—

'केन्द्रत्रिकोणगोऽङ्गेशो बुधो जीवोऽथवा भृगुः।
दीर्घायुर्मतिमान् जातो धनवान् राजवल्लभः'॥

वस्तुतः आयुर्विचार बहुत जटिल तथा मतवैविध्यों से परिपूर्ण है। अतः निश्चयात्मक आयु का निर्णय करना इसलिए कठिन है कि दीर्घायु भी जातक दुर्वृत्ति से अल्पायु हो सकता है और अल्पायुं भी वह प्राणायामादि सत्कार्य से दीर्घायु हो जाता है। आयुर्वृद्धि के लिए प्राणायाम या महामृत्युञ्जय जप अधिक श्रेयस्कर होता है। ४० वर्ष की अवस्था से इस जातक के लिए सपादलक्षप्रमित महामृत्युञ्जय अधिक श्रेयस्कर होगा।

विमर्श—आयुर्विचार परम जटिल होता है, उसमें भी जैमिनि-प्रोक्त आयुर्विचार और भी दुरूह है। पिण्डायु, निसर्गायु, अंशायु, लग्नायु आदि जितने भी प्रभेद हैं, सभी प्रायः पराशरादिक महर्षि द्वारा कथित होने के कारण यथा तथा सम्मान्य होता है। किन्तु इसमें कोई उपपत्ति (युक्ति) नहीं है। वस्तुतः फलित ज्यौतिष मात्र उपपत्तिहीन होने पर भी फलादेश की सत्यता से ही सम्मान्य होता है। आयुर्दायों का जो भी प्रभेद मैंने इस ग्रन्थ में दिया है वे सभी जातकपारिजात या बृहत्पाराशरशास्त्रोक्त हैं, फिर भी उपर्युक्त नियमानुसार आनीत आयु प्रामाणिक या सत्य ही सिद्ध होगी— इसमें मुझे सन्देह है, क्योंकि आयु सद्वृद्धि तथा दुर्वृत्ति से बढ़ती-घटती है। आयुर्विचार करने से पहले पराशरोक्त निम्नलिखित पद्य अवश्य ध्यातव्य हैं—

'अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ॥
तत्राप्याद्यव्ययस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम् ।
तदीशितुस्तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः ॥
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम् ।
तेषामसम्भवे साक्षाद् व्ययाधीशदशास्वपि ॥
अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः ।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च ॥
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित् ।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने ॥
मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः ।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः' ॥

इन पद्यों के ही आशयों से प्रतीत होता है कि पराशर जैसे महर्षि का भी मृत्यु के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक मन्तव्य नहीं है ।

अथ दशान्तर्दशाध्यायः

नक्षत्रवशतो दशापतिज्ञानम्

कृत्तिकाभात्तु जन्मर्क्षावधि वै विगणय्य तत् ।
नवभिश्च हरेच्छेषैः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ५१ ॥
कुजाभुगुरुमन्दज्ञकेतुशुक्रदशा भवेत् ।
तदब्दास्तु रसा आशाः सप्ताष्टादशषोडश ।
नवेन्दवः सप्तचन्द्राः सप्ताथ नखसम्मिताः ॥ ५२ ॥

सुधा—कृत्तिका नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर उसमें नौ से भाग दें । एकादि शेष में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र की दशा होती है । इन सूर्यादि नवग्रहों के दशावर्ष क्रमशः—

६।१०।७।१८।१६।१९।१७।७।२० हैं ।

स्पष्टार्थ चक्र

नक्षत्र	कृ. उ. फा. उ. षा.	रो. ह. श्र.	मृ. चि. ध.	आ. स्वा. श.	पु. वि. पू.भा.	पुष्य. अनु. उ.भा.	आ० ज्ये० रे०	म० मू० अ०	पू० पू० भ०
दशेश	सू०	चं०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

प्रस्तुत उदाहरण में जन्मनक्षत्र पूर्वफाल्गुनी के भयात = ५१।१६ = ३०७६ पलानि ।

भभोग = ६४।४'३ = ३८८३ पलानि ।

पलात्मक भयात को शुक्र की महादशा वर्ष २० से गुणा करने तथा पलात्मक भभोग से भाग देने पर $\frac{३०७६ \times २०}{३८८३}$ = १५।१०।३ = शुक्र महादशा के भुक्त वर्षादि । इसे २० वर्ष में घटाने पर २०—१५।१०।३ = ४ वर्ष, १ मास, २७ दिन = शुक्र का भोग्य वर्षादि ।

अथ विंशोत्तरीमहादशाचक्रम्

ग्रहाः	शु०	सू०	चं०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०
वर्ष	४	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७
मास	१	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	२७	०	०	०	०	०	०	०	०
त्रयोगत	व०	व०	व०	व०	व०	व०	व०	व०	व०
वर्ष	४	१०	२०	२७	४५	६१	८०	९७	१०४
मास	१	१	१	१	१	१	१	१	१
दिन	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
संवत्	संवत्	संवत	संवत	संवत्	संवत्	संवत्	संवत	संवत	संवत्
२०३७	२०४१	२०४७	२०५७	२०६४	२०८८	२०९८	२११७	२१३४	२०४१
५	७	७	७	७	७	७	७	७	७
१९	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६

अन्तर्दशानयनविधिः

दशा दशाब्दगुणिता विहृता दशसंख्यया ।
लब्धं मासादिकं यत्तद् ज्ञेयमन्तर्दशाभिधम् ।। ५३ ।।
तदेवं वर्षमासाद्यमानीय दिविचारिणाम् ।
नवानामपि चक्रेषु विन्यसेल्लक्ष्यसिद्धये ।। ५४ ।।

सुधा—किसी ग्रह की दशावर्ष को अपने या अन्य ग्रह की दशावर्ष से गुणा कर दश संख्या से भाग दें तो मासादिक जो लब्धि आवे वही एक ग्रह की महादशा में दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा होती है । इस तरह आनीत मासादिक अन्तर्दशा को वर्ष, मास, दिन बनाकर निम्नाङ्कित चक्रों में अग्रिम लक्ष्यसिद्धि के लिए विन्यस्त करें ।

जैसे कि बुध की महादशा में सूर्यादि नवों ग्रहों की अन्तर्दशा लानी हैं तो बुध की महादशा वर्ष १७ को सूर्य की महादशा वर्ष ६ से गुणा कर दश से भाग लें तो जो मासादिक लब्धि = १०।६ अर्थात् दश मास तथा ६ दिन बुध की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा या सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा होगी ।

इस तरह सभी नवों ग्रहों के अन्तर्दशा-मान लाकर चक्रों में विन्यस्त करके नीचे दिखला रहा हूँ।

जैसे सूर्य की महादशा में सूर्यादि ग्रहों की अन्तर्दशा—

ग्रह	सू०	चं०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मास	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
दिन	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

इसी तरह चन्द्रादि सभी आठों ग्रहों की महादशा में सबों का अन्तर्दशा-मान लाकर चक्रनिष्ठ करके लिखना चाहिए। जैसा कि जैमिनिसूत्र या अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध है। वही यहाँ भी दे देना है।

दशाफलाध्यायः

दशा बहुविधा प्रोक्ता महर्षिप्रवरैः पुरा।
तासां फलं बृहत्पाराशरादिग्रन्थतो दिशेत् ॥ ५५ ॥
विंशोत्तर्याश्च योगिन्या मान्यमस्ति दशाफलम्।
विंशोत्तर्यनुसारेण फलं तस्माद् ब्रवीम्यहम् ॥ ६५ ॥
आद्यद्रेष्काणगे खेटे दशारम्भेऽथ मध्यगे।
दशामध्ये, तृतीयस्थे दशान्ते फलमादिशेत् ॥ ५७ ॥
दशेशे तु तनौ सौम्यग्रहयुक्तेऽथवेक्षिते।
स्वर्क्षतुङ्गसुहृद्भे वा शोभनं स्याद्दशाफलम् ॥ ५८ ॥
त्रिकस्थे नीचभे वास्तमिते रिपुगृहस्थिते।
अशोभनं फलं ज्ञेयमिति सामान्यलक्षणम् ॥ ५९ ॥

सुधा—महर्षियों ने अनेकविध दशाओं का प्रतिपादन किया है। उन दशाओं का फलादेश बृहत्पाराशरादि ग्रन्थों के द्वारा करना चाहिए। चूँकि विंशोत्तरी योगिनी-दशाओं का फल व्यवहार में मान्य है, अतः मैं विंशोत्तरी के अनुसार दशाफल बतलाता हूँ।

दशेश यदि प्रथम द्रेष्काणस्थ हों तो दशा के आरम्भ में, द्वितीय द्रेष्काणस्थ हों तो दशा के मध्य में और तृतीय द्रेष्काणस्थ हों तो दशावसान में दशाफल विशेष रूप से देता है।

दशेश यदि लग्न स्वभवन, स्वोच्च या मित्रगृह में हों तो शोभन दशाफल और वही यदि त्रिक नीचराशि या अस्तंगत अथवा शत्रुक्षेत्रगत हों तो अशोभन दशाफल होता है। यह सभी ग्रहों के लिए सामान्य लक्षण है।

प्राचीनोक्तसङ्क्षिप्तदशाफलम्

अथ वक्ष्ये विशेषेण दशा कष्टप्रदा नृणाम् ।
षष्ठाष्टमव्ययेशानां दशा कष्टप्रदायिनी ।। ६० ।।
मारकेशेन षष्ठेशे युक्ते लग्नाधिपे तथा ।
तस्य भुक्तौ ज्वरप्राप्तिः प्राहुः कालविदो जनाः ।। ६१ ।।
पापयुक्तस्य खेटस्य दशा हानिकरी स्मृता ।
शुभयुक्तस्य खेटस्य दशा द्रव्यप्रदा भवेत् ।। ६२ ।।
पञ्चमेशदशायां तु धर्मपस्य दशा तु या ।
अतीव शुभदा प्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ।। ६३ ।।
पञ्चमेशेन युक्तस्य ग्रहस्य शुभदा दशा ।
तथा धर्मपयुक्तस्य दशा परमशोभना ।। ६४ ।।
पापः पापदशां प्राप्तो बलवान् मृत्युदायकः ।
बलहीनो वित्तनाशं क्लेशं वा कुरुते ध्रुवम् ।। ६५ ।।
सुरार्चनेन दानेन साधूनां सङ्गमेन च ।
सुश्रूषया च विप्राणामपमृत्युर्विनश्यति ।। ६६ ।।

सुधा—अब विशेष करके उन ग्रहदशाओं का वर्णन किया जा रहा है, जो मनुष्यों के लिए कष्टकारक होती हैं। जन्मलग्न से छठे, आठवें तथा बारहवें स्थानों के स्वामियों की दशाएँ कष्टदायक होती हैं। जब मारकेश से छठे स्थान का स्वामी युक्त हो तथा वह लग्न का स्वामी भी हो तब उस ग्रह के भोगकाल में मनुष्य ज्वररोगी होता है, ऐसा ज्योतिषियों का मत है। पापयुक्त ग्रहों (सूर्य, मंगल, शनि आदि) की दशा हानिकारक होती है। इसके विपरीत शुभयुक्त ग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) की दशा धन-धान्य देने वाली होती है। पाँचवें स्थान में स्थित ग्रह के स्वामी की दशा में धर्म (नवें) स्थान के स्वामी की जो दशा होती है, वह अत्यन्त शुभकारक होती है, ऐसा ज्योतिषविद्या जानने वाले विद्वानों ने कहा है। पाँचवें स्थान के स्वामी से युक्त ग्रह की दशा भी शुभफलदायक होती है। इसी प्रकार धर्मस्थान के स्वामी से युक्त ग्रह की दशा भी अत्यन्त शुभ होती है। पापग्रह की दशा को प्राप्त पापग्रह निश्चय ही मृत्युकारक होता है, यदि वह ग्रह बलहीन हो तो धननाश अथवा निश्चय ही कष्टदायक होता है। इसकी शान्ति के लिए देवता की आराधना, ब्राह्मणों को दान देना, साधु-महात्माओं की उपासना तथा ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिए। ऐसा करने से अकालमृत्यु आदि कष्टों का शमन होता है।

सूर्यदशाफलम्

रवौ बलयुते मूलत्रिकोणे स्वगृहेऽथवा ।
स्वोच्चे केन्द्रत्रिकोणे वा भाग्यराज्याधिपैर्युते ।। ६७ ।।

तद्दाये राजसम्मानं धनलाभादिकं महत् ।
सुतयानधनाधीशैर्युक्ते पुत्रादिजं सुखम् ।। ६८ ।।
सर्वं सौख्यप्रदं ज्ञेयं सबलार्कदशाफलम् ।
नीचे त्रिके सपापे च दुर्बले स तमोग्रहे ।। ६९ ।।
अशोभनं फलं राजदण्डो धनपितृक्षयः ।
उच्चाद्युक्तग्रहस्थस्य सबलार्कस्य सत्फलम् ।। ७० ।।
नीचादिक्षेत्रगार्कस्य दशाफलमसत् स्मृतम् ।
दोषशान्त्यै रवे रत्नधारणं जपपूजनम् ।। ७१ ।।

सुधा—(जन्म के समय) बलिष्ठ सूर्य अपने मूलत्रिकोण, स्वभवन या अपने उच्च राशि या केन्द्र या त्रिकोण में भाग्येश एवं राज्येश के साथ हों तो उनकी दशा में राजसम्मान एवं प्रचुर धनलाभ होता है । उन्हें पञ्चम, चतुर्थ तथा द्वितीय के अधिप के साथ रहने पर क्रमशः पुत्र, वाहन तथा धनसम्पत्ति का सौख्य प्राप्त होता है ।

नीच राशि तथा त्रिक (६।८।१२) आदि दुःस्थान स्थित दुर्बल सपाप या राहु-केतु के साथ सूर्य हों तो उसकी दशा में राजदण्ड, धनक्षय, पितृक्षय आदि अशुभ फल होता है ।

अर्थात् उच्चाद्युक्तस्थानस्थ सबल सूर्य की दशा सत्फलदायक और नीचादि-स्थानस्थ निर्बल सूर्य की दशा असत्फलकारक होती है । शान्त्यर्थ माणिक्य-धारण तथा सूर्यमन्त्रजप एवं पूजन करें ।

चन्द्रदशाफलम्

उच्चस्वगृहकेन्द्रादि लाभगेन्दौ शुभान्विते ।
सबले कर्मभाग्येशसुखेशैर्बलिभिर्युते ।। ७२ ।।
तद्दाये सर्वसौभाग्यसमृद्धिर्विविधं सुखम् ।
धनस्थानगते चन्द्रे स्वक्षेत्रे वा स्वतुङ्गगे ।। ७३ ।।
धनलाभादिकं भाग्यवृद्धिं च महतीं दिशेत् ।
क्षीणेन्दौ नीचगेन्दौ वा दुर्बले पापसंयुते ।। ७४ ।।
त्रिकस्थेऽपि च तद्दाये देहजाड्यं मनोरुजा ।
राजकोपो वित्तनाशो मनस्तापो विशेषतः ।। ७५ ।।
दुःस्थे बलयुते चन्द्रे दुश्चिक्ये वा तथाविधे ।
क्वचित्सौख्यं क्वचिज्जाड्यं शान्त्या कल्याणमादिशेत् ।। ७६ ।।

सुधा—(जन्म के समय) अपने उच्च, स्वभवन केन्द्र या त्रिकोण (९।५) तथा लाभस्थानस्थ शुभयुक्त सबलचन्द्र बली राज्येश, भाग्येश या बली सुखेश के साथ हों तो चन्द्रमा की दशा में सभी तरह की समृद्धियाँ तथा अनेकविध सौख्य प्राप्त होते हैं । धनभावगत चन्द्र अपने क्षेत्र (कर्क) या अपने उच्च (वृष) में स्थित

हों (जैसा कि मिथुन तथा मेष लग्न में सम्भव है) तो धन-धान्यादि का विशेष लाभ तथा भाग्यवृद्धि भी विशिष्ट प्रकार की होती है।

यदि निर्बल चन्द्र क्षीण या नीचस्थ होकर पापयुक्त हों या त्रिकस्थ हों तो उनकी दशा अनिष्टकर होती है। अर्थात् क्षीणचन्द्र या नीचगत अथवा त्रिकस्थ निर्बल चन्द्रमा की दशा में शारीरिक पीड़ा, मानसिक क्लेश, राजकोप एवं धनक्षय होते हैं। वहीं दुष्टस्थानस्थ चन्द्र सबल हों या तृतीयस्थ चन्द्रमा भी प्रबल रहे तो कभी सुख, कभी जड़ता (शारीरिक जड़ता) होती है। शान्ति से सर्वत्र कल्याण होता है।

मङ्गलदशाफलम्

स्वर्क्षे मूलत्रिकोणे वा स्वोच्चे केन्द्रत्रिकोणगे।
लाभेऽथवा धने पूर्णबलाढ्ये शुभवीक्षिते ॥ ७७ ॥
कुजे सति हि तद्दाये दशाफलमनुत्तमम्।
तद्दाये भूमिधान्यादि वाहनाप्तिश्च निश्चिता ॥ ७८ ॥
अन्यच्च विविधं सौख्यं सम्मानं राजतो भृशम्।
दुश्चिक्ये सबले भौमे वित्तलाभः पराक्रमात् ॥ ७९ ॥
शत्रुक्षयः कलत्रादिसुखं च खलु निश्चितम्।
दशारम्भे सुखं किन्तु दशान्ते कष्टमादिशेत् ॥ ८० ॥
नीचत्रिकादिदुःस्थानस्थिते निर्बलभूमिजे।
पापग्रहेक्षितयुते दशाफलमनिष्टदम् ॥ ८१ ॥

सुधा—(जन्म के समय) स्वभवन, मूलत्रिकोण, स्वोच्च या केन्द्रत्रिकोण में स्थित मंगल यदि शुभग्रहयुक्त या शुभदृष्ट हों तो मंगल की दशा अनुत्तम, जिससे उत्तम नहीं हो अर्थात् उत्कृष्ट होती है। ऐसे मंगल की दशा में भूमि-धान्यादि सम्पत्ति तथा वाहनादि की प्राप्ति होती है। अन्य भी अनेकविध सौख्य तथा राजसम्मान प्राप्त होता है। यदि प्रबल भौम तीसरे स्थान में रहें तो पराक्रम से वित्तलाभ होता है। शत्रुक्षय तथा कलत्रादि सुख भी प्राप्त होते हैं। मंगल की दशारम्भ में तो सुख किन्तु दशान्त में कष्ट होता है।

नीचादि दुःस्थान स्थित मंगल की दशा तो सर्वथा अनिष्टकर होती है।

राहुदशाफलम्

उच्चादिस्थानगे राहौ शुभग्रहयुतेक्षिते।
केन्द्रे त्रिकोणे लाभे वा दुश्चिक्ये शुभसंयुते ॥ ८२ ॥
योगकारकखेटाढ्ये शुभदं तद्दशाफलम्।
तद्दाये सर्वसम्पत्तिर्वाहनं नूतनं गृहम् ॥ ८३ ॥
धर्माभिचिन्तनं वापि सम्पत्तिश्च सुखावहा।
सम्मानं राजतो देशे विदेशेऽपि च सम्भवम् ॥ ८४ ॥

किन्तु नीचेऽथवा रन्ध्रे व्यये पापयुतेक्षिते ।
मारकग्रहसंयुक्ते स्थानभ्रंशो मनोरुजा ।। ८५ ।।
धनधान्यादिसम्पत्तिक्षयः क्लेशो दशागमे ।
दशामध्ये सुखं किञ्चित् दशान्ते कष्टमादिशेत् ।। ८६ ।।

सुधा—(जन्म के समय) उच्च, स्वभवन, मूलत्रिकोण, केन्द्र, त्रिकोण, लाभ-स्थान या तृतीय स्थान में स्थित राहु शुभग्रहयुक्त या शुभदृष्ट हों तथा राजयोगकारक ग्रह के साथ रहें तो उसकी दशा शुभप्रद होती है । ऐसे राहु की दशा में सर्वविध सम्पत्ति, वाहन, नूतन भवन, धर्मचिन्तन तथा सुखप्रद सम्पदाएँ होती हैं । देश तथा विदेशों में राजसम्मान भी सम्भव होता है ।

किन्तु वही राहु नीचराशि, अष्टम या द्वादश में पापयुक्त या पापदृष्ट हों तथा मारकग्रह से सम्बद्ध हों तो धन-धान्यादि सम्पत्तिक्षय, स्थानभ्रंश, मनोव्यथा आदि अनिष्ट फल होते हैं । राहु की दशा में दशारम्भ में कष्ट, दशामध्य में थोड़ा-सा सुख, पुनः अन्त में क्लेश होता है ।

गुरुदशाफलम्

गुरौ स्वोच्चे स्वगेहे वा तुङ्गांशे स्वांशगेऽथवा ।
केन्द्रे त्रिकोणद्वयगे लाभे वा संस्थिते सति ।। ८७ ।।
तद्दाये राजसम्मानं धनाप्तिरमितं सुखम् ।
वाहनाम्बरभूषादिप्राप्तिर्यज्ञादि सत्क्रिया ।। ८८ ।।
सतां संसर्गतोऽजस्रं कीर्त्तनश्रवणादिकम् ।
सर्वं सौख्यकरं सर्वाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ।। ८९ ।।
नीचे रिष्फाष्टमस्थाने स्थिते वास्तङ्गते गुरौ ।
तद्दाये स्थानविभ्रंशो मनस्तापश्च भीरपि ।
दशारम्भे भवेत्क्लेशः परतः सुखमीरितम् ।। ९० ।।

सुधा—(जन्म के समय) गुरु अपने उच्च, अपने गृह, उच्चांश या अपना नवांश, केन्द्र-त्रिकोण, मूलत्रिकोण तथा लाभस्थान में से कहीं स्थित हों तो अपनी दशा के समय राजसम्मान, धनलाभ, अमित सुख, वाहन, वस्त्रभूषादि, यज्ञादि सत्क्रिया, सन्तों के सम्पर्क से नित्य कीर्त्तन, श्रवण आदि सभी सुखप्रद स्थितिकारक होते हैं । गुरु की दशा में सभी सुखावह अभीष्ट सिद्धि होती है । वही गुरु यदि नीच-राशि (मकर) अष्टम या द्वादश स्थान में स्थित हों या सूर्य-सान्निध्य से अस्तंगत हों तो उनका दशाकाल स्थानभ्रंश कर एवं मनस्तापप्रद होता है । उस समय भय बना रहता है ।

गुरु दशारम्भ में कष्टकर, परतः सुखद कहे गये हैं ।

शनिदशाफलम्

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मित्रगेहे वा भाग्यलाभगे ।
मूलत्रिकोणे तुङ्गांशे दुश्चिक्ये स्वांशगेऽपि वा ।। ९१ ।।
केन्द्रत्रिकोणगे मन्दे शुभग्रहयुतेक्षिते ।
मीनस्थे कार्मुकस्थे वा योगकारकसंयुते ।। ९२ ।।
तद्दाये राजसम्मानं गजाश्वाम्बरभूषणम् ।
सत्कीर्त्तिर्धर्मलाभश्च राज्यलाभोऽपि सम्भवः ।। ९३ ।।
शनौ त्रिकगते नीचस्थिते वा शत्रुगेहगे ।
अस्तङ्गते वा तद्दाये स्थानभ्रंशो महद्भयम् ।। ९४ ।।
पित्रोर्विनाशः शस्त्रादिपीडीबन्धनमेव च ।
सदसत्स्थानवशतः शुभाऽशुभफलं शनेः ।। ९५ ।।

सुधा—(जन्म के समय) स्वोच्च, स्वभवन, मित्रगृह, भाग्यस्थान या लाभस्थान, मूलत्रिकोण, उच्चांश, तृतीय स्थान अथवा स्वनवांश में कहीं भी स्थित शनि शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हों या केन्द्र-त्रिकोण मीन या धनु का शनि योगकारक ग्रह से संयुक्त हों तो शनि की दशा के समय राजा द्वारा सम्मान, हाथी, घोड़ा, वस्त्रभूषण, शुभ्रयश एवं धर्मलाभ तथा राज्यलाभ भी सम्भव होता है। वही शनि त्रिक (६।८।१२) नीचराशि या शत्रुक्षेत्र या सूर्य-सान्निध्य से अस्तङ्गत हों तो उसकी दशा में स्थानभ्रंश, भय, माता-पिता का विनाश तथा शस्त्रादि द्वारा पीड़ा एवं बन्धन भी सम्भव होता है।

इस तरह शनि के सत्स्थानस्थ होने पर शुभफल एवं असत्स्थानस्थ होने पर अशुभफल, जो ऊपर कहे गये हैं, होते हैं।

बुधदशाफलम्

स्वक्षेत्रे निजतुङ्गे वा केन्द्रे कोणे सुहृद्गृहे ।
लाभे वा संस्थिते सौम्ये दशाफलमनुत्तमम् ।। ९६ ।।
धनधान्यादिसम्पत्तिलाभो नैरुज्यमेव च ।
राजप्रीतिर्गुणाधिक्यं पुत्रदारादिजं सुखम् ।। ९७ ।।
ज्ञानवृद्धिः शुभ्रकीर्त्तिर्व्यापाराद्धि धनागमः ।
दुःस्थानस्थे बुधे पापग्रहयुक्तेऽथवेक्षिते ।। ९८ ।।
तद्दाये स्यान्मनोरोगो राजद्वेषोऽथ बान्धवैः ।
विरोधो नृपचौरादिभीतिर्वार्तार्त्तिरेव च ।
मूत्रकृच्छ्ररुजः पाण्डुरोगस्य च महद्भयम् ।। ९९ ।।

सुधा—(जन्म के समय) बुध यदि स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, कोण (९।५), मित्रगृह या लाभस्थान में स्थित हों तो दशाफल अनुत्तम (जिससे बढ़कर उत्तम नहीं

हो) अत्युत्तम होता है। ऐसे बुध की दशा में धन-धान्यादि सम्पत्ति की प्राप्ति, शरीर में नैरुज्य, राजा का प्रेम, गुणों की अधिकता, पुत्र-स्त्रीसौख्य, ज्ञानवृद्धि, शुभ्र यशः-प्राप्ति तथा व्यापार से धनागम होता है।

दुष्टस्थान (नीच, त्रिक, शत्रुक्षेत्र) में स्थित पापग्रहयुक्त या पापदृष्ट बुध की दशा में मानसिक रोग, राजा से द्वेष, अपने बान्धवों से विरोध, राजा, चौर आदि से (अग्नि, सर्प) भय, वातपीडा, मूत्रकृच्छ्र तथा पाण्डु रोगों का अत्यन्त भय कहना चाहिए।

केतुदशाफलम्

केन्द्रे कोणे स्वतुङ्गे वा लाभे शुभयुतेक्षिते।
दुश्चिक्ये षष्ठगे केतौ दशाफलमनुत्तमम् ॥ १०० ॥
वाहनं पुत्रदारादिसुखं लाभश्चतुष्पदाम्।
देशान्तरप्रयाणञ्च तद्दाये सुखमद्भुतम् ॥ १०१ ॥
दशादौ राजयोगाः स्युर्दशान्तेऽटनमीहितम्।
दशामध्ये भयं प्रोक्तमिति विज्ञैः सुनिश्चितम् ॥ १०२ ॥
रन्ध्रे धने व्यये पापयुक्ते वा पापवीक्षिते।
केतौ स्थानच्युती रोगव्याधिकोपो मनोरुजा।
बन्धनं बन्धुनाशश्च शान्त्या सर्वत्र शं दिशेत् ॥ १०३ ॥

सुधा—केतु (जन्मसमय में) केन्द्र, कोण (९।५), अपने उच्च, लाभस्थान, तृतीय या षष्ठस्थ होकर शुभग्रह से युक्त या शुभदृष्ट हों तो उनका दशाफल अत्युत्तम होता है। उस समय वाहन, पुत्रदारादि सौख्य, पशु-धनलाभ, देशान्तर यात्रा आदि से अद्भुत सौख्य प्राप्त होता है। दशा के आरम्भ में राजयोग भी प्राप्त होता है और दशान्त में यत्र-तत्र भटकना पड़ता है। दशामध्य में भय होता है, जैसा कि अभिज्ञों का कहना है। वही केतु यदि अष्टम, द्वादश या द्वितीय स्थान में पापग्रहयुक्त या पाप-दृष्ट हों तो उनकी दशा अनिष्टकर होती है। उन अनिष्टों में स्थानभ्रंश, मानसिक वेदना, रोग-व्याधि का प्रकोप, बन्धन तथा बन्धुनाश आते हैं।

शान्ति से सर्वत्र कल्याण का होना सम्भव है।

शुक्रदशाफलम्

स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रस्थे त्रिकोणे वा शुभान्विते।
शुक्रे सर्वं शुभं ज्ञेयं तद्दशायां विशेषतः ॥ १०४ ॥
वाहनाम्बरभूषादिप्राप्तिर्मिष्टान्नभोजनम्।
गजाश्वादिपशूनां तु लाभो मित्रेष्टसङ्गमः ॥ १०५ ॥
विवाहोत्सवकर्माणि गृहे लक्ष्मी कटाक्षयुक्।
धर्मकर्माधिपत्येन लग्ने तुर्ये समाश्रिते ॥ १०६ ॥

तद्वाये तु महत्सौख्यं देशग्रामाधिपत्यजम् ।
जलाशयसुरागारनिर्माणं कीर्त्तिसम्पदः ।। १०७ ।।
नीचे त्रिकगते शुक्रे पापग्रहयुतेक्षिते ।
बन्धुभिः सह विद्वेषो दारपुत्रादिपीडनम् ।। १०८ ।।
व्यवसाये पराहानिर्वियोगो निजबान्धवैः ।
मारकाधिपतौ तस्मिन् कष्टं शारीरिकं महत् ।
तद्दोषपरिहाराय दद्याद् गां महिषीं तथा ।। १०९ ।।

सुधा—(जन्म के समय) अपने उच्च, स्वक्षेत्र, केन्द्र या त्रिकोण में स्थित शुक्र शुभग्रहयुक्त हों तो उनका दशाफल शुभद होता है । ऐसे शुक्र की दशा में वाहन, वस्त्र-भूषण की प्राप्ति, मिष्टान्नभोजन, हाथी, घोड़ा आदि पशुओं का लाभ, घर में विवाहोत्सवादि कार्य तथा महालक्ष्मी का निवास होता है ।

धर्मेश कर्मेश होकर शुक्र यदि लग्न या चतुर्थ स्थान में हो तो उनकी दशा में ग्राम या देश के आधिपत्य जन्य महासुख प्राप्त होता है । तालाब, मन्दिर आदि का निर्माण तथा यशःसम्पत्ति भी प्राप्त होती है ।

नीच, त्रिक(६।८।१२)गत शुक्र पापग्रह से युक्त या दृष्ट हों तो उनकी दशा में बन्धुओं से विद्वेष, स्त्री-पुत्र आदि को कष्ट, व्यापार में काफी घाटा और अपने इष्ट बन्धुओं से बिछुड़न भी होता है ।

मारकेश (२।७ के अधिप) होकर शुक्र हों तो स्वयमेव शारीरिक कष्ट होता है । दोषशान्ति के लिए गाय, भैंस का दान तथा रुद्रजप करना चाहिए ।

इति झोपाह्वमैथिलपण्डितश्रीमद्देवचन्द्रशर्मविरचिते व्यावहारिक-ज्यौतिषे सर्वस्वे दशाध्यायः समाप्तः ।

अथान्तर्दशाफलाध्यायः

रवेर्महादशायां सूर्यान्तर्दशाफलम्

स्वर्क्षे तुङ्गेऽथवा केन्द्रे त्रिकोणे वा स्थिते रवौ ।
तद्दाये तस्य भुक्तौ च सर्वसम्पत्तिमान्नरः ।। १ ।।
नीचादावशुभस्थाने स्थितेऽर्के दुर्गतिर्भवेत् ।
मारकाधिपतौ तस्मिन्नपमृत्युभयं दिशेत् ।
माणिक्यस्य धृतिर्दोषशान्त्यै तज्जपपूजनम् ।। २ ।।

सुधा—(जन्म के समय) स्वभवन, स्वोच्च, केन्द्र या त्रिकोण में स्थित रवि यदि हों तो उनकी दशा और उन्हीं की अन्तर्दशाकाल में मनुष्य सर्वसम्पत्तिमान् होता है । यदि नीच, त्रिक आदि दुःस्थान स्थित सूर्य हों तो उसे दुर्गति होती है । यदि मारकेश सूर्य हों तो अपमृत्यु का भय कहना चाहिए । दोषशान्ति के लिए माणिक्यरत्न-धारण तथा सूर्य का जप-पूजन करना चाहिए ।

सूर्यस्य महादशायां चन्द्रान्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते चन्द्रे तुङ्गस्थे स्वर्क्षगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणगे वापि समृद्धिः सर्वसम्पदाम् ।। ३ ।।
क्षीणे सपापके तस्मिन् नीचराशिगतेऽपि वा ।
विनाशः सम्पदां रोगचौरादिनृपपीडनम् ।। ४ ।।
दायेशाल्लाभभाग्यस्थे केन्द्रे वा शुभखेचरे ।
राज्याप्तिश्च महासौख्यं सर्वथा सुखवर्धनम् ।। ५ ।।
दायेशात्त्रिकगे चन्द्रे कृच्छ्रादुदरपूरणम् ।
मारकाधिपतौ तत्रापमृत्युरपि सम्भवेत् ।
मौक्तिकस्य धृतिर्दोषशान्त्यै रुद्राभिषेचनम् ।। ६ ।।

सुधा—जन्म के समय चन्द्रमा यदि उच्च, स्वभवन, केन्द्र या त्रिकोण में हों तो सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा आने पर सर्वसम्पत्तियों की समृद्धि होती है । यदि सपाप चन्द्र क्षीण रहें तो सम्पत्तियों का विनाश तथा रोग, चौर तथा राजा के द्वारा पीडन कहना चाहिए । दायेश (दशेश) से भाग्य या लाभ स्थान में या केन्द्र में शुभग्रह हों तो राज्याप्ति तथा सर्वथा सुखानुभव होता है । दायेश (दशेश) से त्रिक या अन्य दुःस्थानस्थ चन्द्रमा हों तो किसी तरह उदर-पूरण वह कर सके । मारकेश (२।७ के अधिप) चन्द्रमा हों तो अपमृत्यु की भी सम्भावना होती है । दोषशान्त्यर्थ मोती का धारण तथा पार्थिवशिवलिङ्गपूजन, रुद्राभिषेक करना श्रेयस्कर होगा ।

सूर्यस्य महादशायां भौमान्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते भौमे स्वक्षेत्रे स्वोच्चगेऽथवा ।
केन्द्रत्रिकोणगे वापि सर्वसौभाग्यवर्धनम् ॥ ७ ॥
लग्नाधिपेन वा भाग्यलाभनाथेन संयुते ।
बहुसेनाधिपत्यं च निर्दिशेद् वदतां वरः ॥ ८ ॥
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे पापयुक्तेऽथवेक्षिते ।
सर्वापत्तिस्तथा काराप्रवेशोऽपि च सम्भवः ॥ ९ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजा ।
दोषशान्त्यै विद्रुमस्य धारणं मङ्गलव्रतम् ॥ १० ॥

सुधा—सूर्य की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा आने पर यदि मंगल अपने क्षेत्र, अपने उच्च, केन्द्र या त्रिकोण में रहें तो अन्तर्दशा में सर्वसौभाग्यवर्धन होता है। यदि मंगल लग्नेश, भाग्येश या लाभेश के साथ (जन्म के समय) रहें तो अन्तर्दशा-काल में सेनाधिपत्य कहना चाहिए।

वही मंगल दायेश (दशेश) से आठवें या बारहवें स्थान में पापयुक्त या पापदृष्ट हों तो सर्वविध आपदाएँ तथा जेल जाना भी सम्भव होता है। मंगल यदि द्वितीय या सप्तम का अधिप रहे तो उनकी अन्तर्दशा में शारीरिक क्लेश तथा मानसिक रोग की सम्भावना होती है।

दोषशान्ति के लिए मूंगा का धारण तथा मंगलवारी (मंगल व्रत) करना श्रेयस्कर होगा।

सूर्यस्य महादशायां राहोरन्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते राहौ लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
आदौ धनक्षयश्चौरव्रणभीः स्त्रीसुतार्त्तयः ॥ ११ ॥
परतो विविधं सौख्यं दायेशाच्छुभराशिगे ।
लग्नादुपचयस्थेऽपि सम्मानं राजतस्तथा ॥ १२ ॥
दारपुत्रसुखावाप्तिः सौभाग्यं सर्वतो मुखम् ।
दायेशाद्रन्ध्ररिष्फस्थे स्थानभ्रंशोऽपि बन्धनम् ॥ १३ ॥
सूर्ये लग्नाद् द्वितीयेशे राहौ सप्तमगे सति ।
रवेर्दाये त्वगोरन्तर्दशा चेतोऽपहारिणी ॥ १४ ॥
असन्तुलं मानसिकं तदा ज्ञेयं विशेषतः ।
गोमेदधारणं राहोर्जपपूजनमाचरेत् ।
महामृत्युञ्जयाख्यस्य जपस्यास्ति विशेषतः ॥ १५ ॥

सुधा—सूर्य की महादशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर केन्द्र-त्रिकोणस्थ राहु

में आरम्भ में धनक्षय, चोर, व्रण का भय, स्त्री-पुत्र को कष्ट होते हैं। अनन्तर अनेकविध सौख्य होता है।

दायेश (दशेश = सूर्य) से शुभराशिस्थ या लग्न से उपचयस्थानगत राहु में राजसम्मान, स्त्री-पुत्रादि से सुखप्राप्ति तथा सर्वविध सौभाग्य उदित होता है।

दशेश (सूर्य) से अष्टम या द्वादशस्थ राहु हों तो स्थानच्युति, कारागमन दुष्फल होते हैं। द्वितीयेश सूर्य की दशा में सप्तमस्थ राहु की अन्तर्दशा आने पर चित्त अस्थिर होता है, प्रत्युत मानसिक असन्तुल हो जाता है। ऐसी स्थिति में गोमेद का धारण तथा राहु का जपपूजन, सर्वाधिक श्रेयस्कर महामृत्युञ्जयजप होता है।

सूर्यस्य महादशायां गुर्वन्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते जीवे स्वोच्चकेन्द्रत्रिकोणगे।
स्वगृहेवाऽर्थसंवृद्धिः नूतनाम्बरभूषणम् ॥ १६ ॥
गृहे मङ्गलकार्याणि प्रियेष्टजनभाषणम्।
दायेशाच्छुभराशिस्थे विशेषाद् भाग्यवर्धनम् ॥ १७ ॥
धर्मकर्माधिपत्ये तु राज्याप्तिरपि सम्भवा।
दायेशाद्रन्ध्ररिपुगे नीचे वा पापसंयुते ॥ १८ ॥
स्वदेहे दारपुत्रादि देहेऽपि क्लेशमादिशेत्।
स्वर्णदानं गवीदानं कार्यं तच्छान्तये बुधः ॥ १९ ॥

सुधा—सूर्य की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर, गुरु यदि अपने उच्च, केन्द्र या त्रिकोण अथवा स्वगृहस्थ हों तो अर्थसमृद्धि, नूतन वस्त्रभूषण, घर में मंगलमय कार्य, प्रिय-इष्टजन का भाषण आदि होते हैं।

दायेश (सूर्य) से शुभराशिगत जीव हों तो विशेष रूप से भाग्यवृद्धि होती है। धर्मकर्माधिपत्य यदि गुरु में हों तो राज्यलाभ भी सम्भव होता है।

दायेश (सूर्य) से षष्ठ, अष्टम या नीच में पापग्रह युक्त या पापदृष्ट गुरु हों तो अपने तथा स्त्री-पुत्रादि के शरीर में क्लेश कहना चाहिए।

शान्ति के लिए स्वर्णदान तथा गोदान श्रेयस्कर होता है।

सूर्यस्य महादशायां शन्यन्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽथवा।
मित्रगेहे स्थिते, गेहे सत्कार्यं स्याच्छुभावहम् ॥ २० ॥
शत्रुक्षयो महत्सौख्यं नानावस्त्रधनागमः।
दायेशाद् व्ययरन्ध्रस्थे पापग्रहयुतेक्षिते ॥ २१ ॥
वातव्याधिर्वित्तनाशो बन्धनं विग्रहो जनैः।
भुक्त्यादौ हि सुहृद्धानिर्मध्ये स्तोकसुखं वदेत् ॥ २२ ॥

भुक्त्यन्तेऽपि भवेत्क्लेशो वियोगः पितृमातृजः ।
द्वितीयद्यूननाथत्वे ह्यपमृत्युभयं दिशेत् ।
मृत्युञ्जयजपं छागदानं शान्त्यै समीहितम् ।। २३ ।।

सुधा—सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आने पर शनि यदि अपने उच्च स्वगृह, मित्रक्षेत्र में हों तो शत्रुक्षय, घर में शुभावह सत्कार्य, नाना वस्त्र तथा धनादि का शुभागम होता है । दायेश (सूर्य) से अष्टम अथवा द्वादशस्थ शनि पापग्रह युक्त या पापदृष्ट हों तो वातव्याधि, धनक्षय, बन्धन तथा लोगों से विरोध होता है । अन्तर्दशा के आरम्भ में मित्रहानि, मध्य में थोड़ा-सा सुख और अन्त में भी क्लेश तथा मातृ-पितृवियोग होता है । शनि यदि मारकेश हों तो अपमृत्यु की भी सम्भावना होती है । शान्ति के लिए मृत्युञ्जयजप तथा छागदान करना चाहिए ।

सूर्यस्य महादशायां बुधान्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते ज्ञे तु स्वोच्चे केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वर्क्षगे वा शुभैर्युक्ते पुत्रदारादिजं सुखम् ।। २४ ।।
पुण्यकर्मफलासक्तं गृहसद्धर्मसंयुतम् ।
धनधान्यसमृद्धञ्च वैवाहिकसुखान्वितम् ।। २५ ।।
दायेशाच्छुभराशिस्थे ससौम्ये ज्ञे महत्सुखम् ।
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये नीचस्थितेऽपि वा ।। २६ ।।
पुत्रदारस्वदेहेषु जाड्यं क्लेशोऽप्यनेकधा ।
भुक्तादावपि दुःखाप्तिः सुखं मध्ये मनाक् स्मृतम् ।। २७ ।।
अन्ते राजभयं, द्यूनद्वितीयेशे बुधे सति ।
ज्वरादिजनिता पीडा जायते क्लेशकारिणी ।
शान्तये राजतं दानमन्नदानं च विश्रुतम् ।। २८ ।।

सुधा—सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर बुध यदि अपने उच्च, केन्द्र-त्रिकोण, स्वभवन में शुभयुक्त रहें तो स्त्री-पुत्रादिसौख्य तथा धन-धान्यसमृद्ध-गृह पुण्यकर्मफल तथा सद्धर्म से परिपूर्ण रहता है । घर में वैवाहिक सुख भी होता है ।

दशेश (सूर्य) से त्रिकोणादि शुभस्थान में शुभग्रहयुक्त बुध रहें तो और भी अपार सौख्य की प्राप्ति होती है । साथ ही दायेश (सूर्य) से छठे, आठवें, बारहवें या नीच भवन में बुध रहें तो अन्तर्दशाकाल में अपने तथा स्त्री-पुत्रादि के शरीर में जड़ता एवं अनेकविध कष्ट कहना चाहिए । अन्तर्दशा के आदि में भी क्लेश, मध्य में जरा-सा सुख और अन्त में राजभय सम्भव होता है । यदि बुध मारकेश (२।७) के अधिप हों तो ज्वरजनित पीड़ा विशेष कष्टदात्री होती है ।

शान्त्यर्थ चाँदी तथा अन्न का दान श्रेयस्कर होता है ।

सूर्यस्य महादशायां केत्वन्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते केतौ वित्तनाशो मनोव्यथा ।
पीडादेहे राजकोपः स्वजनोपद्रवस्तथा ।। २९ ।।
लग्नेशसहिते तस्मिन् भुक्त्यादौ हि धनागमः ।
मध्ये क्लेशोऽधिकतरो जायते नात्र संशयः ।। ३० ।।
लग्नादुपचयस्थे तु योगकारकसंयुते ।
पुत्रदारादिसत्सौख्यं शुभकर्मफलोद्गमः ।। ३१ ।।
यशोवृद्धिरकस्माच्च प्रियवस्तुसमागमः ।
द्वितीये द्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं दिशेत् ।
मृत्युञ्जयजपं शान्त्यै छागदानं च कारयेत् ।। ३२ ।।

सुधा—सूर्य की महादशा में केत्वन्तर्दशा आने पर अर्थनाश, मानसिक कष्ट, शारीरिक पीड़ा, राजकोप तथा अपने व्यक्तियों के द्वारा उपद्रव होते हैं।

केतु यदि लग्नेश के साथ रहें तो अन्तर्दशारम्भ में धनागम किन्तु अन्तर्दशा के मध्य में अधिक कष्ट सम्भव होता है।

लग्न से उपचयस्थ (३।६।११।१०) स्थान में केतु हों और योगकारक ग्रह से युक्त हों तो पुत्र-स्त्रीजन्य सौख्य, पुण्यकर्मजन्य फल की प्राप्ति, यशोवृद्धि तथा अकस्मात् प्रियवस्तु की प्राप्ति होती है।

द्वितीय द्यूननाथ केतु हों तो अपमृत्यु का भय कहना चाहिए। ऐसी स्थिति में मृत्युञ्जयजप तथा छागदान शान्ति के लिए श्रेयस्कर होता है।

सूर्यस्य महादशायां शुक्रान्तर्दशाफलम्

सूर्यस्यान्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे केन्द्रत्रिकोणगे ।
राज्यलाभो महोत्साहो बहुधान्यधनागमः ।। ३३ ।।
गृहे कल्याणकार्याणि रत्नाद्यैः पूरितं गृहम् ।
सुखं भाग्योदयान्नित्यं समृद्धिः सर्वसम्पदाम् ।। ३४ ।।
षष्ठाष्टमव्ययगते शुक्रे बलविवर्जिते ।
सपापे राजकोपश्च दारपुत्रधनक्षयः ।। ३५ ।।
भुक्त्यन्ते कीर्तिनाशश्च स्थानभ्रंशोऽपि सम्भवेत् ।
भुक्त्यादौ तु समो, मध्ये लाभः शुभकरो नृणाम् ।। ३६ ।।
रन्ध्ररिष्फयुते द्यूननाथे भृगुसुते सति ।
अपमृत्युभयं, शान्त्यै मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।। ३७ ।।

सुधा—सूर्य की महादशान्तर्गत शुक्र की अन्तर्दशा आने पर अपने उच्च केन्द्र, त्रिकोण या स्वभवन में यदि शुक्र हो तो राज्यलाभ, महोत्साह, प्रचुर धन-धान्य का

आगमन, घर में मंगलमय कार्य तथा रत्नों से परिपूर्ण घर कहना चाहिए। ऐसे समय में सौभाग्योदय के कारण नित्य सम्पदाओं की समृद्धि होती है।

बलरहित शुक्र षष्ठ, अष्टम या द्वादश(त्रिक)गत होकर पापयुक्त हों तो राजकोप, पुत्र-स्त्री तथा धन का विनाश कहें।

अन्तर्दशा के आरम्भ में साधारण स्थिति, मध्य में लाभ तथा अन्तर्दशान्त में स्थानभ्रंश एवं यशोनाश होता है। सप्तमेश शुक्र अष्टम या द्वादशस्थ हों तो अपमृत्यु का भय होता है, जिसकी शान्ति के लिए मृत्युञ्जयजप करना श्रेयस्कर होता है।

चन्द्राद्यष्टानां दशासु सर्वेषामन्तर्दशाफलानि

एवं चन्द्रादिकाष्टानां भुक्तौ तत्तद् ग्रहक्रमात्।
अन्तर्दशाफलान्याहुर्बुधास्तानि ब्रवीम्यहम्॥ ३८॥
स्वोच्चे स्वर्क्षेऽथवा केन्द्रत्रिकोणे शुभदृग्युते।
ग्रहेऽन्तर्भुक्तिजानि स्युः फलानि विमलानि वै॥ ३९॥
सौख्यं महत्समृद्धिश्च धनधान्यादिसम्पदाम्।
गृहं रत्नादिभिः पूर्णं तूर्णं शत्रुक्षयो भवेत्॥ ४०॥
गृहे कल्याणकार्याणि सम्मानं राजतो भृशम्।
भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते वृद्धिः स्याद् भाग्यलाभयोः॥ ४१॥
दायेशाच्छुभराशिस्थे शुभग्रहयुतेक्षिते।
यशोवृद्धी राज्यलाभो नित्यं मिष्टान्नभोजनम्॥ ४२॥
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा।
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे सपापे नीचगेऽथवा॥ ४३॥
स्थानभ्रंशो वित्तनाशो दारपुत्रक्षयोऽपि च।
द्वितीये द्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजा॥ ४४॥
रिपुरिष्फसमायुक्तेऽपमृत्युरपि सम्भवेत्।
तत्तद्रत्नधृतिं शान्त्यै ग्रहार्चनजपं तथा।
मृत्युञ्जयजपं विज्ञो विशेषान्ननु कारयेत्॥ ४५॥
इयमेव स्थितिः सर्वग्रहान्तरदशागमे।
भुक्तौ चन्द्रादिखेटानां तत्तदन्तर्दशागमे॥ ४६॥
फलानि ग्रन्थविस्तारभयान्नहि पृथक् पृथक्।
गदितानि विदां प्रीत्यै सङ्क्षेपो नातिविस्तरः॥ ४७॥

सुधा—इस प्रकार चन्द्रादिक आठों (च. मं. रा. गु. श. बु. के. शु.) ग्रहों की दशा में तत्तद् ग्रहक्रम से जैसा कि चन्द्रमा की दशा में चन्द्रादि नवों ग्रहों की अन्तर्दशा, मंगल की दशा में मंगलादि नवों ग्रहों की अन्तर्दशा का फल प्राचीनों ने जो कहा है उसे मैं भी बतला रहा हूँ।

किसी ग्रह की दशा में जिसकी अन्तर्दशाफल जिज्ञास्य हो वह यदि अपने उच्च, स्वभवन, केन्द्र या त्रिकोण में शुभग्रहयुक्त या शुभदृष्ट होकर जन्मसमय में स्थित हो तो अन्तर्दशा-फल बहुत ही उत्कृष्ट होता है अर्थात् अन्तर्दशा के समय महत्तम सौख्य, धन-धान्यादि सम्पत्ति की पूर्ण समृद्धि, रत्नादिकों से परिपूर्ण घर, शत्रुक्षय, घर में विवाहादि मंगलकार्य, राजा से सम्मान आदि शुभप्रद फल होते हैं। वही ग्रह यदि भाग्येश या लाभेश के साथ रहें तो क्रमशः भाग्यवृद्धि तथा लाभाधिक्य होता है।

दायेश से शुभराशि (त्रिकोण आदि) में शुभग्रहयुक्त या शुभदृष्ट वह ग्रह हों तो यशोवृद्धि, राज्यलाभ तथा नित्य मिष्टान्न भोजन सम्भव होता है। महाराजप्रसाद से सभी अभीष्ट सिद्ध होते हैं, जिससे आत्मतोष होता है।

दायेश से छठे, आठवें या नीच में सपाप वह ग्रह रहें तो स्थानच्युति, धनक्षय तथा स्त्री-पुत्रादि का भी विनाश सम्भव होता है। वही ग्रह मारकेश (२.७ के अधिप) हो तो शारीरिक क्लेश तथा मनोव्यथा होती है। वही मारकेश लग्न से छठे या अष्टम स्थान में हों तो अपमृत्यु का भी भय कहना चाहिए। ग्रहशान्ति के लिए तत्तद् रत्नधारण तथा महामृत्युञ्जयजप अधिक श्रेयस्कर होता है। यही स्थिति सभी ग्रहों की दशा में तत्तदन्तर्दशा आने पर रहती है। चन्द्रादि ग्रहों की दशा में तत्तद् ग्रहों का अन्तर्दशाफल अलग-अलग बतलाने पर बहत्तर तरह के होंगे, जो लगभग एक ही सामान्य नियम पर आधारित है। विस्तारभय से मैंने उस मार्ग का अवलम्बन छोड़ दिया है। अतिविस्तार की अपेक्षया संक्षेप में लिखना ही उपयुक्त होता है।

योगिनीदशानयनम्

जन्मर्क्षं वह्निसंयुक्तं वसुभिश्चोद्धृतं ततः।
योगिन्यो मङ्गलाद्याः स्युरेकवृद्ध्या दशा स्मृता ॥ १ ॥
मङ्गला पिङ्गला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा सङ्कटेति योगिन्यष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ २ ॥

सुधा—जन्मनक्षत्र में तीन जोड़कर आठ से भाग दें तो शेष से मंगला से संकटा तक दशाओं का बोध होता है। एकादि शेष में मङ्गलादिक योगिनियों की दशा होगी। दशा-वर्ष एक वृद्धि से जानना चाहिए। जैसे—मङ्गला का १ वर्ष, पिङ्गला का २ वर्ष, धान्या का ३ वर्ष, भ्रामरी का ४ वर्ष, भद्रिका का ५ वर्ष, उल्का का ६ वर्ष, सिद्धा का ७ वर्ष, सङ्कटा का ८ वर्ष।

प्रस्तुत उदाहरण में जन्मनक्षत्र पूर्वफल्गुनी है, जो अश्विनी से ग्यारहवाँ नक्षत्र है। इसमें तीन जोड़ने से ११ + ३ = १४। इसमें आठ से भाग देने पर शेष ६ बचे। अतः जातक का जन्म उल्का दशा में हुआ। उल्का का मान ६ वर्ष है। अतः उसका भुक्त-भोग्यवर्ष जानने के लिए पलात्मक भयात को ६ से गुणा कर पलात्मक भभोग से भाग देने से भुक्तवर्षादि हुए। उसे उल्का के दशावर्ष ६ में घटाने पर भोग्यवर्षादि हो जायेंगे।

जैसे—पलात्मक भयात = ३०७६ और पलात्मक भभोग = ३८८३ ।

क्योंकि भयात = ५१ द० १६ प० तथा भभोग = ६४ द० ४३ प० अतः उल्का का भुक्तवर्षादि = $\frac{६ \times ३०७६}{३८८३}$

व.मा.दि. ४।९।१। इसे ६ वर्ष में घटाने पर उल्का का भोग्यवर्षादि = व.मा.दि. १।२।२९

अथ योगिनीमहादशाचक्रम्

योगिन्यः	उ०	सि०	सं०	मं०	पिं०	धा०	भ्रा०	भ०
वर्ष	१	७	८	१	२	३	४	५
मास	२	०	०	०	०	०	०	०
दिन	२९	०	०	०	०	०	०	०
वयोगत	व०	व०	व०	व०	व०	व०	व०	व०
वर्ष	१	८	१६	१७	१९	२२	२६	३१
मास	२	२	२	२	२	२	२	२
दिन	२९	२८	२९	२९	२९	२९	२९	२९
संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्	संवत्
२०३७	२०३८	२०४५	२०५३	२०५४	२०५६	२०५९	२०६३	२०६८
सूर्यरा. ५	८	८	८	८	८	८	८	८
सूर्यअं. १९	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८

विमर्श—चतुष्कन्धात्मक यह व्यावहारिक ज्यौतिषसर्वस्व वस्तुतः व्यवहार के लिए परमोपयोगी है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं । इस ग्रन्थ के चारों स्कन्धस्थ विषय अनेक ग्रन्थों से संकलित कर सरलतम अनुष्टुप् छन्दों में मैंने निबद्ध किया है । इन चारों स्कन्धों में प्रस्तुत जातकस्कन्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं विशाल है, यद्यपि इसे काफी संक्षिप्त किया गया है ।

इस स्कन्ध का अधिकतर विषय बृहत्पाराशर होराशास्त्र, जातकपारिजात आदि ग्रन्थों से संकलित है । इसमें उन्हीं विषयों का संकलन किया गया है जिन्हें कुण्डली के निर्माण में अत्यावश्यक समझा जाता है । कुण्डली के निर्माण में स्पष्टग्रह, द्वादशभाव-साधन, भावकुण्डली, सप्तवर्ग या दशवर्ग साधन, भावफल, राजयोग, आयुर्विचार, विंशोत्तरी तथा योगिनीदशानयन तत्फलादेश आवश्यक होते हैं । इन्हीं विषयों को बृहत्पाराशर होराशास्त्र, जातकपारिजात, भावकुतूहल, भावप्रकाश, जैमिनिसूत्र आदि ग्रन्थों को आधार मानकर इस स्कन्ध की रचना की गई है । दशान्तर्दशाफल भी होराशास्त्रानुसार ही देने का प्रयास किया गया है । इसमें यदि समस्त अन्तर्दशाफल दिये जाते तो यह विशाल स्कन्ध निरर्थक बन जाता, जो लक्ष्य से सर्वथा बहिर्भूत सिद्ध होता । सभी नवों ग्रहों की दशा में सभी के अन्तर्दशाफल एक्यासी तरह के होते ।

वस्तुतः सभी ग्रहों के अन्तर्दशाफल एक ही सामान्य नियमानुसार होते है; जैसा कि

सूर्य की महादशा में सूर्यादि नवों ग्रहों का अन्तर्दशाफल देकर स्पष्ट कर दिया गया है। सभी नवों ग्रहों का दशाफल इस स्कन्ध में दिये ही गये हैं, किन्तु अन्तर्दशाफल कथन में संक्षेप किया गया है। इसका कारण यही है कि सभी अन्तर्दशाफलों के लिए एक ही नियम तथा एक ही परिवेष है। उसी परिवेष में फलादेश होने के कारण तथा विस्तार-भय से मुझे संक्षेप करना पड़ा है। फिर भी 'चन्द्राद्यष्टानां दशासु सर्वेषामन्तर्दशाफलानि' शीर्षक दश पद्यों में फलादेश करने की कुञ्जी मैंने दे दी है।

दशाफलदर्पण तथा बृहत्पाराशर होराशास्त्र के दशाध्याय को देखने से दशाओं की विविधता स्पष्ट देखी जा सकती है। किन्तु विंशोत्तरी तथा योगिनी दशा या अन्तर्दशाओं तथा तत्फलादेश करने का प्रचलन कुण्डली के निर्माण में बहुतायत से देखा जाता है। योगिनियाँ—'मङ्गला, पिङ्गला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा तथा संकटा'—ये आठ हैं। भयात-भभोग के आधार पर ही योगिनीदशा का भी भुक्तवर्षादि लाकर अपने दशावर्ष में घटाने से भोग्यदशा वर्षादि होते हैं। उसके बाद विंशोत्तरी-दशाचक्र की तरह दशाचक्र तथा वयोगत आदि का परिज्ञान किया जाता है। दशाचक्र देखने से ही वर्त्तमान समय में किस योगिनी की दशा है और उसका फल कैसा है—इसका भी ज्ञान किया जाता है। योगिनीदशान्तर्दशाफल के लिए योगिनी-जातक नाम की एक लघुपुस्तिका भी प्रकाशित किसी ने की है। वस्तुतः योगिनी-दशाओं का फल तो योगिनी के नामसदृश ही समझना चाहिए। जैसे मंगला, धान्या, भद्रिका तथा सिद्धा दशाओं का फल शुभद किन्तु पिंगला, भ्रामरी, उल्का तथा संकटा का फल अनिष्टप्रद होते हैं।

इस स्कन्ध का परम महत्त्वपूर्ण भाग आयुर्विचार है। भिन्न-भिन्न आचार्यों या महर्षियों के विचारों में काफी पार्थक्य है। जैमिनिमहर्षि प्रोक्त आयुर्विचार मान्य ही नहीं प्रत्युत जटिल भी है। परञ्च उसकी सत्यता निःसंदिग्ध नहीं कही जा सकती। कारण आयु स्थिर नहीं होती है, अतः निश्चयात्मक आयु का निर्णय कठिन होता है। क्योंकि प्राणायामादि सत्कार्यों से आयु बढ़ती है और असत्कार्यों—विशेषतः मद्यपान आदि से आयु का ह्रास होता है। आयुर्वृद्धि के लिए सपादलक्षप्रमित महामृत्युञ्जय-जप अधिक श्रेयस्कर बतलाया गया है।

इति मिथिलाञ्चलस्थमधुबनीमण्डलान्तर्गतनगवासग्रामवास्तव्येन मधुबनीस्थेन मैथिलपण्डितश्रीदेवचन्द्रझाशर्मणा विरचिते व्यावहारिकज्यौतिष-सर्वस्वे जातकस्कन्धः समाप्तः।

प्रकीर्णकस्कन्धः

तत्राब्दप्रवेशसम्बद्धविषयाः

तत्र कदाऽब्दप्रवेश इति कथनम्

जन्मकालिकसूर्येण यदा तात्कालिको रविः ।
समस्तदैवाब्दवेशः सौरादब्दमितिर्यतः ॥ १ ॥

सुधा—चूंकि वर्षमान सौरमान से ही लिया जाता है, अतः जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य के समान जब तात्कालिक सूर्य हों उसी समय वर्षप्रवेश समझना चाहिए । अर्थात् जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य एवं वर्षप्रवेशकालिक स्पष्ट सूर्य समान ही होते हैं ।

ताजिकनीलकण्ठीकार नीलकण्ठ ने भी इस प्रकार कहा है—

'तत्कालेऽर्को जन्मकालरविणा स्याद्यदा समः ।
तदा वर्षप्रवेशः स्यात् सौरादब्दमितिर्यतः' ॥

अथाब्दप्रवेशे वारादिसाधनम्

गताब्दाः पादसंयुक्ता एकविंशतिसङ्गुणात् ।
गताब्दात् शून्यवेदाप्तघटीयुक्तास्ततो जनुः ॥ २ ॥
वारादिसंयुताः सप्तनष्टेऽब्दे तद् विनिर्दिशेत् ।
अब्दप्रवेशसमये भावस्पष्टखगादिकम् ।
जातकोक्तदिशा ज्ञेया फलं ताजिकसम्मतम् ॥ ३ ॥

सुधा—गताब्द में उसके चतुर्थांश जोड़ दें, इक्कीस से गुणित गताब्द में खवेद (४०) से भाग देने से जो घटी-पल प्राप्त हो उसे जोड़कर पुनः जन्मकालिक वारादि जोड़ने तथा सात से भाग देने पर शेष वर्षप्रवेशकालिक वारादि होते हैं ।

वर्षप्रवेश समय में द्वादश भाव तथा स्पष्ट ग्रह जातकोक्त रीति से जानें और ताजिकोक्त फलज्ञान भी करें ।

उदाहरण—जैसा कि शुभ संवत् १९५७ चैत्र कृष्ण नवमी रविवार को सूर्योदय से ४४।३५ घटी-पल पर उत्पन्न किसी का १९९३ संवत्सर में वर्षप्रवेश समय जानना है । चूंकि जन्मकालिक सूर्य = ११।१२।२२।१७ है, अतः १९९३ संवत् में जब स्पष्टार्क जन्मकालिक सूर्य के समान होंगे तभी ३७वाँ वर्षप्रवेश समय होगा ।

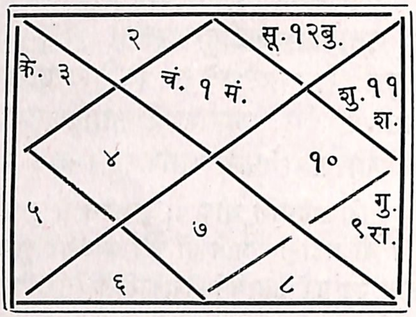
संवत् १९९३ में संवत् १९५७ घटाने से शेष = ३६ = गत वर्ष । इसमें उपर्युक्त 'गताब्दाः पादसंयुक्ताः' आदि के अनुसार गताब्द का चतुर्थांश $\frac{३६}{४}$ = ९।०।० गत वर्ष में जोड़ने से ४५।०।० हुआ । पुनः गत वर्ष को २१ से गुणा कर चालीस से भाग

देने पर $\frac{३६ \times २१}{४०} = \frac{७५६}{४०}$ = १८ घटी, ५४ पल । इसे पूर्वानीत ४५।०।० में जोड़ने से ४५।१८।५४। इसमें जन्मकालिक दिनादि इष्टकाल जोड़ने से ४५।१८।५४+१।४४।३५=४७।३।२९ हुआ । इसमें ७ से भाग देने पर शेष=५।३।२९=वर्षप्रवेश का दिनादि इष्टकाल अर्थात् दिन के स्थान में ५ रहने से रव्यादि पञ्चम गुरुवार को ३ घटी तथा २९ पर ३७वाँ वर्षप्रवेश होगा । जातकोक्त रीति से स्पष्ट ग्रहानयन करने पर वर्षप्रवेशकालिक स्पष्ट ग्रह निम्नाङ्कित होते हैं ।

सूर्य ११।१२।२२।१७, गति ५९'।२६''
चन्द्र ०।२०।४९।२, गति ८५०'।४९''
मंगल ०।०।५३।३१, गति ४४'।१९''
बुध ११।३।१७।९, गति ११०'।१७''
गुरु ८।२।५९।५१, गति ३।५
शुक्र १०।१८।२५।५९, गति ७३'।५६''
शनि १०।२०।४६।२९, गति ७'।४३''
राहु-केतु २।१७।२८।५९, गति ३'।११''

इस समय का स्पष्टग्रह तथा भावज्ञान जातकोक्त रीति से करना चाहिए ।

तात्कालिक स्पष्टग्रहानुसार वर्षलग्नकुण्डली



अथ मुथहाऽऽनयनम्

प्रत्यब्दं मुथहा यस्मादेकराशिं भुनक्त्यतः ।
गतवर्षयुतं जन्मलग्नं द्वादश तष्टितम् ॥ ४ ॥
भमुखा मुथहा ज्ञेया विज्ञैः सैवेन्थिहा स्मृता ।
अतोऽनुपाततस्तस्याः पञ्चलिप्ताऽऽह्निकी गतिः ॥ ५ ॥

सुधा—चूंकि मुथहा (ग्रह-विशेष) एक वर्ष में एक राशि का भोग करती है अतः जन्मलग्न में गतवर्ष जोड़कर बारह से तष्टित करें तो राश्यादिक मुथहा होगी । वही विज्ञों के द्वारा इन्थिहा भी कहलाती है ।

अनुपाततः उसकी दैनिक गति पाँच कला है ।

अब्दप्रवेशे ग्रहाणां मित्रादिविचारः

द्वित्रिकस्थानगः खेटात्समः पञ्चत्रिनन्दगः ।
लाभगश्च सुहृत्प्रोक्तः केन्द्रगो रिपुरुच्यते ॥ ६ ॥

सुधा—किसी ग्रह से दूसरे तथा त्रिक (६।८।१२) स्थानगत ग्रह सम, पाँच, तीन, नौ तथा ग्यारह स्थान में स्थित ग्रह मित्र और केन्द्र(१।४।७।१०)स्थानस्थ ग्रह शत्रु कहे जाते हैं ।

अब्दप्रवेशे ग्रहाणां दृष्टिविचारः

नवपञ्चमगा दृष्टिः प्रत्यक्षस्नेहदा तथा ।
मेलापकाभिधा पादहीना कार्यस्य साधिका ॥ ७ ॥
गुप्तस्नेहकरी त्वन्या तृतीयभवगा क्रमात् ।
त्र्यंशोना दशलिप्ता च सर्वकार्यार्थसाधिका ॥ ८ ॥
गुप्तवैरा पादमात्राऽपरा स्यात् खचतुर्थयोः ।
अन्योऽन्यं सप्तमे वैकराशौ प्रत्यक्षवैरिणी ॥ ९ ॥
दुष्टं दृक् त्रितयं चैतत् क्षुताख्यं कार्यनाशकम् ।
दृश्यद्रष्ट्रन्तरे दीप्तभागाल्पे गदितं फलम् ।
विज्ञैर्विशेषतो ज्ञेयं खं ग्रामादिकलिप्रदम् ॥ १० ॥

सुधा—(१) अपने-अपने स्थानों से ९।५ पर ग्रहों की दृष्टि प्रत्यक्ष स्नेहप्रद, सर्वकार्यसाधक, मेलापकसंज्ञक होती है । वह दृष्टि पौदोन (३ चरण वाली) होती है ।

(२) तीन तथा ग्यारह स्थानों पर क्रमशः त्र्यंशोन (०।४०) तथा दश कला (०।१०) प्रमित दृष्टि भी सर्वकार्यसाधक, गुप्तरूप से स्नेह करने वाली होती है ।

(३) गुप्तवैरा (प्रच्छन्न रूप से शत्रुता करने वाली) चरणमात्र दृष्टि अपने स्थान से चतुर्थ एवं दशम स्थान पर होती है ।

(४) परस्पर सप्तम एक ही स्थान पर की दृष्टि प्रत्यक्ष शत्रुता करने वाली होती है ।

उपर्युक्त दृष्टियों में गुप्तवैरा, परस्पर सप्तम तथा एक स्थान वाली ये तीनों क्षुत-संज्ञक होती हैं, जो समस्त कार्य को नष्ट करने वाली हैं ।

द्रष्टा तथा दृश्य में दीप्तांश से अल्प अन्तर रहने से उपर्युक्त एवं संग्राम तथा कलह फल होते हैं ।

नीलकण्ठीकार ने भी यही बात कही है—

'दृष्टिं स्यान्नवपञ्चमे बलवती प्रत्यक्षतः स्नेहदा
पादोनाऽखिलकार्यसाधनकरी मेलापकाख्योच्यते ।
गुप्तस्नेहकरी तृतीयभवने कार्यस्य सिद्धिप्रदा
त्र्यंशोना कथिता तृतीयभवने षड्भावदृष्टिर्भवे ॥

दृष्टिः पादमिता चतुर्थदशमे गुप्तारिभावा स्मृता-
ऽन्योन्यं सप्तमभे तथैकभवने प्रत्यक्षवैराऽखिला ।
दुष्टं दृक् त्रितयं क्षुताह्वयमिदं कार्यस्य विध्वंसदं
सङ्ग्रामादिकलिप्रदं दश इमाः स्युर्दीप्तभागान्तरे' ॥

अथ वर्षेशाधिकारिणः

जन्मलग्नपतिर्वर्षलग्नपो मुथहेश्वरः ।
त्रिराशिपः सूर्यराशिपतिरह्नि निशि स्मृतः ॥ ११ ॥
चन्द्रराशीश्वरश्चेति वर्षेशस्याधिकारिणः ।
एषु योऽतिबली लग्नमीक्षमाणः स वर्षपः ॥ १२ ॥

सुधा—जन्मलग्नेश, वर्षलग्नेश, मुथहेश, त्रिराशीश तथा दिन में सूर्यराशीश और रात्रि में चन्द्रराशीश—ये पाँच वर्षेश के अधिकारी होते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रबल जो लग्न को देखते हों वही वर्षेश होते हैं।

लग्नं नाभीक्षमाणोऽसौ बली सन्नपि नाब्दपः ।
निर्बलोऽपि भवेद् वर्षाधीश्वरो लग्नवीक्षकः ॥ १३ ॥
बलसाम्ये दृगाधिक्यात्तनौ वर्षेश्वरः स्मृतः ।
दृक्साम्ये वा निर्बलत्वे वर्षेशो मुथहेश्वरः ॥ १४ ॥

सुधा—लग्न को नहीं देखने वाले बली भी उपर्युक्त अधिकारी वर्षेश नहीं होते, प्रत्युत लग्न को देखने वाले निर्बल भी अधिकारी वर्षेश होते हैं। लग्न को देखने वाले अधिकारियों में यदि बल साम्य हो तो लग्न पर जिसकी दृष्टि विशेष हो वही वर्षेश होता है। यदि दृष्टि की भी समता हो अथवा पाँचों अधिकारी हीनबल हों तो मुथहेश्वर वर्षेश हों—ऐसा आचार्यों का मत है।

दृष्टयभावे तु पञ्चानां तनौ वीर्याधिको विभुः ।
बलसाम्ये दिने सूर्यराशिपो निशि वर्षपः ॥ १५ ॥
चन्द्रराशीश्वरश्चेति केषांश्चिद् विदुषां मतम् ।
लग्नं नाभीक्षमाणानां बलसाम्ये तु येन वै ॥ १६ ॥
इत्थशालो हि चन्द्रस्य भवेद् वर्षाधिपो हि सः ।
अन्यथा खेऽह्नि सूर्यस्य चन्द्रस्य निशि राशिपौ ।
वर्षेशौ क्रमशो ज्ञेयौ बहूनामिति सम्मतम् ॥ १७ ॥

सुधा—लग्न पर पाँचों अधिकारियों में से किसी की दृष्टि न हो तो सर्वाधिक बली ही वर्षेश होते हैं। यदि बल में समता हो तो दिन में सूर्यराशीश और रात्रि में चन्द्रराशीश वर्षेश हों—ऐसा कई आचार्यों का कथन है।

लग्न को नहीं देखने वाले पाँचों अधिकारियों में यदि बलसाम्य हों तो जिस ग्रह के साथ चन्द्रमा का इत्थशाल हो वही वर्षेश होंगे। अन्यथा अर्थात् चन्द्रमा को किसी

के साथ इत्थशाल नहीं हों तो दिन में सूर्यराशीश और रात में चन्द्रराशीश वर्षेश हों—यह बहुसम्मत विचार है।

वर्षेशनिर्णयार्थं त्रिराशिपतिज्ञानम्

सूर्यशुक्रार्किभृगवो जीवेन्दुबुधभूमिजाः।
क्रमान्मेषाच्चतुर्लग्ने दिनौ रात्रौ त्रिराशिपाः ॥ १८ ॥
सिंहाच्चतुर्षु लग्नेषु वैपरीत्येन ते स्मृताः।
धनुरादिषु शेषेषु शनिभौमेज्यकेन्दवः।
त्रिराशिपतयो विज्ञैर्ज्ञेया रात्रौ दिनेऽपि च ॥ १९ ॥

सुधा—सूर्य, शुक्र, शनि तथा शुक्र एवं गुरु, चन्द्र, बुध तथा मंगल मेषादि चार वर्षलग्नों में क्रमशः दिन तथा रात्रि में त्रिराशिपति होते हैं। अर्थात् दिन में मेषादि चार वर्षलग्नों में सूर्य, शुक्र, शनि तथा शुक्र त्रिराशिपति होते हैं और गुरु, चन्द्र, बुध तथा मंगल रात में त्रिराशीश होते हैं।

सिंहादि चार वर्षलग्नों में वैपरीत्य से त्रिराशीश समझना चाहिए। अर्थात् सिंहादि चार वर्षलग्न हों तो गुरु, चन्द्र, बुध तथा भौम दिन में त्रिराशिपति होते हैं और सूर्य, शुक्र, शनि तथा शुक्र रात में त्रिराशीश होते हैं।

अवशिष्ट धनु आदि चार वर्षलग्न दिन या रात कभी भी हों तो क्रमशः शनि, मंगल, गुरु तथा चन्द्रमा त्रिराशीश होते हैं।

स्पष्टार्थचक्र

राशयः	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी
दिवालग्ने	सू	शु	श	शु	गु	चं	बु	मं	श	मं	गु	च
रात्रिलग्ने	गु	चं	बु	मं	सू	शु	श	शु	श	मं	गु	च

ग्रहाणां दीप्तांशाः

सूर्यादीनां तु दीप्तांशास्तिथ्यर्काष्टनगाङ्ककाः।
शैला नन्दाश्च विज्ञेया बुधैर्वर्षप्रवेशजाः ॥ २० ॥

सुधा—सूर्यादि सातों ग्रहों के दीप्तांश क्रमशः १५, १२, ८, ७, ९, ७, ९ ये हैं। नीलकण्ठाचार्य ने भी अपनी नीलकण्ठी में 'तिथ्यर्काष्टनगाङ्कशैलखचराः सूर्यादि दीप्तांशकाः' कहा है।

इत्थशालयोगलक्षणम्

अल्पभागैः स्थितः शीघ्रो मन्दमग्रस्थितं यदि।
सम्मुखस्थं निजं तेजो दद्यात्तर्हीत्थशालकः ॥ २१ ॥
शीघ्रोऽसौ विकलामात्राहीनो वा मन्दगामिना।
समस्तर्हीत्थशालोऽसौ पूर्णः साधारणोऽन्यथा ॥ २२ ॥

सुधा—यदि शीघ्रगति ग्रह के भुक्तांश अल्प हो और अपने सम्मुख अधिक अंश पर स्थित मन्दगति ग्रह को अपना तेज देता हो अर्थात् अपने दीप्तांश के भीतर देखता हो तो इत्थशाल नामक योग होता है। मन्दगति ग्रह के समान या एक-आध विकला न्यून शीघ्रगति ग्रह हों तो वह इत्थशाल पूर्ण अन्यथा सामान्य कहलाता है।

नीलकण्ठीकार ने भी यही बात इस प्रकार कही है—

'शीघ्रोऽल्पभागैर्घनभागमन्देऽग्रस्थे निजं तेज उपाददीत।
स्यादित्थशालोऽयमथो विलिप्तालिप्तार्धहीनो यदि पूर्ण एषः'॥

पञ्चवर्गीयबलसाधनोपयोगि हद्दाधिपतयः

हद्दा द्रेष्काणभवननवांशोच्चवशाद् भवेत्।
पञ्चवर्गबलं ज्ञातमिति हद्दापतिं ब्रुवे॥ २३॥
मेषे हद्दाधिपा अङ्गतर्काष्टशरपञ्चभिः।
भागैर्हि क्रमशो जीवास्फुजिज्ज्ञारशनैश्चराः॥ २४॥
वृषेऽष्टरसनागेषुवह्नयो हि क्रमेण वै।
शुक्रज्ञेज्यार्किभौमानां हद्दांशाः कथिता बुधैः॥ २५॥
मिथुने रसषट्पञ्चनगाङ्गप्रमितांशकैः।
हद्दाधिपतयः सौम्यास्फुजिज्जीवकुजार्कपः॥ २६॥
कर्केऽद्रितर्कषट्सप्ताब्धिभिर्भागैः क्रमादिह।
हद्दाधिपतयो भौमशुक्रज्ञेज्यशनैश्चराः॥ २७॥
सिंहेऽङ्गभूतसप्ताङ्गरसभागैः क्रमाद् बुधैः।
हद्दाधिपा हि देवेज्यभृगुमन्दज्ञभूसुताः॥ २८॥
स्त्रियां नगदशाब्ध्यद्रिनेत्रप्रमितभागकैः।
हद्दाधिपा ज्ञशुक्रेज्यकुजार्कप उदीरिताः॥ २९॥
तुले रसगजाद्रचद्रिनेत्रभागैरनुक्रमात्।
शनिसौम्येज्यशुक्रारा हद्दाधिपतयो मताः॥ ३०॥
वृश्चिके नगवेदाष्टपञ्चषड्भागकैः क्रमात्।
हद्दाधिपा भौमशुक्रसौम्येज्यशनयः स्मृताः॥ ३१॥
चापे रवीषु वेदेषु वेदप्रमितभागकैः।
हद्दाधिपतयो जीवास्फुजिज्ज्ञक्षितिजार्कपः॥ ३२॥
नगाद्रिवसुवेदाब्धिभागैः सौम्येज्यभार्गवाः।
शनिभौमौ च मकरे हद्दाधिपतयः स्मृताः॥ ३३॥
कुम्भे नगाङ्गसप्तेषुशरैः शुक्रज्ञवाक्पति-।
क्षितिजार्कसुता वेद्या हद्दाधिपतयो बुधैः॥ ३४॥
मीने सितेज्यसौम्यारशनयः क्रमशो बुधैः।
अर्काब्धिवह्निनन्दाक्षिभागैर्हद्दाधिपा मताः॥ ३५॥

सुधा—पञ्चवर्गबल हद्दा, द्रेष्काण, गृह, नवांश तथा उच्चबल से ज्ञात होता है, अतः हद्दाधिपति बतलाता हूँ।

मेष में आदिम ६ अंश के गुरु, उसके बाद ६ अंश के शुक्र, फिर ८ अंश के बुध, फिर ५ अंश के मंगल और अन्तिम ५ अंश के शनि हद्देश होते हैं। इसी तरह वृषादि राशि में भी समझना चाहिए। स्पष्टार्थ अग्रस्थ चक्र देखें—

स्पष्टार्थं हद्दाधिपतिचक्रम्

मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०
६ गु	८ शु	६ बु	७ मं	६ गु	७ बु	६ श	७ मं	१२ गु	७ बु	७ शु	१२ शु
६ शु	६ बु	६ शु	६ शु	५ श	१० शु	८ बु	४ शु	५ शु	७ गु	६ गु	४ गु
८ बु	८ गु	५ गु	६ बु	७ श	४ गु	७ गु	८ बु	४ बु	८ शु	७ बु	३ बु
५ मं	५ श	७ मं	७ गु	६ बु	७ मं	७ शु	५ गु	५ मं	४ श	५ मं	९ मं
५ श	३ मं	६ श	४ श	६ म	२ श	२ मं	६ श	४ श	४ मं	५ श	२ श

स्वस्वाधिकारे पञ्चवर्गीयबलानि

त्रिंशत्स्वभे स्वतुङ्गे तु विंशतिर्हद्दसंज्ञके।
पञ्चेन्दवो दृकाणेखं नवांशे पञ्चसम्मिताः।
बलयोगमितिर्वेदैर्भक्ता विंशोपकाः स्मृताः॥ ३६॥

सुधा—अपनी राशि (स्वगृह) में तीस (३०), अपने उच्च में बीस (२०), हद्दा में १५ (पन्द्रह), अपने दृक्काण में १० (दश) और अपने नवांश में ५ (पाँच) बल होते हैं। बलों के योग में चार से भाग देने पर विंशोपक बल समझना चाहिए।

जैसे उदाहरणस्थ वर्षप्रवेशकालिक स्पष्टग्रहानुसार—

(१) गृहबल—यदि सूर्य का पञ्चवर्गबल बनाना हो तो पूर्वोक्त स्पष्ट सूर्य के अनुसार सूर्य गुरु की राशि मीन में हैं। गुरु सूर्य के शत्रु हैं, अतः गृहबल का चतुर्थांश (७।३०) सूर्य का गृहबल हुआ।

(२) हद्दाबल—मीन राशि के १२° अंश के बाद १३वें अंश में सूर्य हैं, बारह अंश के बाद ४ अंश तक गुरु का हद्दा है। अतः शत्रुहद्दास्थ सूर्य के रहने के कारण हद्दाबल का चतुर्थांश = ३।४५ सूर्य का हद्दाबल हुआ।

(३) द्रेष्काणबल—मीन राशि के द्वितीय द्रेष्काणस्थ सूर्य हैं। मीन में द्वितीय द्रेष्काण का स्वामी गुरु ही हैं, अतः शत्रु के द्रेष्काणस्थ होने के कारण द्रेष्काणबल का चतुर्थांश २।३० मात्र सूर्य का द्रेष्काणबल हुआ।

(४) नवांशबल—मीन के चतुर्थ नवमांश में सूर्य हैं। मीन में चतुर्थ नवमांश तुला अर्थात् शुक्र का है। शुक्र सूर्य के सम हैं, अतः नवांशबल का आधा २।३० मात्र सूर्य का नवांशबल हुआ।

(५) उच्चबल—ग्रहों में अपने-अपने नीच राश्यंश को घटायें, ६ राशि से अधिक शेष होने पर उसे १२ राशि में घटाकर शेष को अंशात्मक बनाकर नौ से

भाग देने पर उच्चबल होता है। इस तरह सूर्य का उच्चबल = १६।५५ है, अतः सूर्य का पञ्चवर्गी बल—

गृहबल = ७।३०
हद्दाबल = ३।४५
द्रेष्काणबल = २।३०
नवांशवल = २।३०
उच्चबल = १६।५५

योग = ३३।१०

इसका चतुर्थांश = ८।१७ = विंशोपकबल। यह पञ्चाधिक तथा दशाल्प है, अतः सूर्य मध्यबली हुए।

विशेष—यहाँ ग्रहों का मित्र-सम-शत्रु का विचार अब्दप्रवेशीय नियमानुसार समझना चाहिए—

'द्वित्रिकस्थानगः खेटात् समः पञ्चत्रिनन्दगः।
लाभगश्च सुहृत्प्रोक्तः केन्द्रगो रिपुरुच्यते'॥

इस तरह सभी ग्रहों का साधित पञ्चवर्गी बल निम्नाङ्कित है—

ग्रह	सू०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
गृह	७।३०	७।३०	३०।०	७।३०	३०।०	७।३०	३०।०
हद्दा	३।४५	३।४५	११।१५	७।३०	१५।०	११।१५	११।१५
द्रे०	२।३०	७।३०	१०।०	५।०	२।३०	५।०	५।०
नवां०	२।३०	२।३०	५।०	२।३०	३।४५	३।४५	३।४५
उच्च०	१६।५५	१८।९	१३।१	११।८	३।३३	१५।४३	६।३४
योग	३३।१०	३९।२४	६९।१६	२३।४८	५४।४८	४३।१३	५६।३४
विंशो०	८।१७	९।५४	१७।१९	५।५७	१२।४२	१०।४८	१४।८
	मध्यबली	मध्यबली	बली	मध्यबली	बली	बली	बली

शराल्प = हीनबली/शराधिक, किन्तु दशाल्प = मध्यबल, दशाधिक = बली ग्रह होते हैं; यथा—

'शराल्पो बलहीनस्तु मध्यवीर्यः शराधिकः।
बली दशाधिको ज्ञेयः पञ्चवर्गीबले ग्रहः'॥

अथाब्दमध्येऽरिष्टबोधकं त्रिपताकिचक्रम्

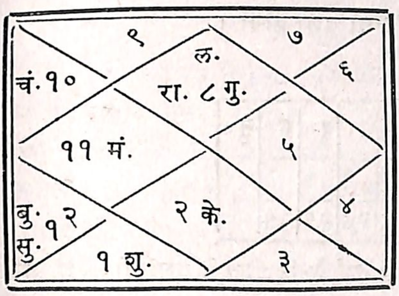
तिस्रः पूर्वापरास्तिस्रो दक्षिणोत्तरगास्तथा।
रेखा विलिख्य कोणेभ्योऽन्योन्यरेखोत्थवेधतः॥ ३७॥
त्रिपताकात्मकं चक्रं विविधारिष्टबोधकम्।
पूर्वापरामध्यवर्ति रेखाग्रे वर्षलग्नकम्॥ ३८॥

विन्यस्य विलिखेद्राशीन् द्वादशापि ततोऽग्रगान् ।
सैके गताब्दे नवभिर्भक्ते शेषसमे गृहे ।। ३९ ।।
जनुश्चन्द्रान्न्यसेच्चन्द्रं पुनः सैके गताब्दके ।
चतुर्भक्ते शेषतुल्ये स्वस्वस्थानात् समान् ग्रहान् ।। ४० ।।
एवं राहोश्चन्द्रवेधेऽरिष्टं, चन्द्रेऽथ केतुना ।
शनिनापि भवेद्रोगो वेधे कौजे तनौ व्यथा ।
चन्द्रे शुभग्रहैर्विद्धे विविधं सौख्यमादिशेत् ।। ४१ ।।

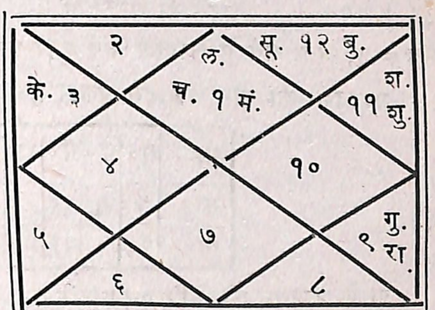
सुधा—तीन पूर्वापर तथा तीन दक्षिणोत्तर रेखाओं को खींचकर परस्पर कोण से तीन-तीन रेखाओं से विद्ध करने से त्रिपताकिचक्र बनता है। उसमें पूर्वापर रेखाओं के बीच वाली रेखाग्र पर वर्षलग्न को लिखकर क्रमशः बारहों राशियों को लिखें। फिर गतवर्ष संख्या में एक जोड़कर नौ का भाग देने से जो शेष बचे, जन्मकालिक चन्द्रराशि से उतने (शेषतुल्य) स्थान में चन्द्रमा को लिखें। पुनः सैकगतवर्ष संख्या में चार से भाग देकर जो शेष हो, जन्मकालिक अपने आश्रित स्थानों से उतने (शेष-तुल्य) स्थान में अन्य ग्रहों को लिखें। इस प्रकार राहु चन्द्रमा में वेध होने से अरिष्ट, केतु और शनि से चन्द्र वेध होने पर रोग, मंगल से चन्द्रवेध होने पर शारीरिक पीड़ा और शुभग्रह से वेध होने पर वर्षभर विविध सौख्य कहना चाहिए।

जैसे पूर्वदत्त उदाहरण में जन्मलग्नकुण्डली तथा वर्षलग्नकुण्डली इस प्रकार हैं—

जन्माङ्गचक्र

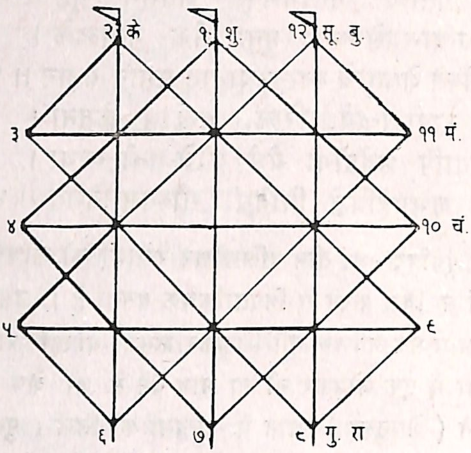


वर्षलग्नकुण्डली



प्रस्तुत उदाहरण में वर्षसंख्या = ३६ है। एक जोड़ने से ३६ + १ = ३७। इसमें ९ से भाग देने पर शेष = १। अतः जन्मकालिक राशि में ही चन्द्रमा हुए और उसी सैकगत वर्षसंख्या में ४ से भाग देने पर शेष = १। अतः शेष समग्रह भी जन्मकालिक स्थान में ही हुए। यहाँ चन्द्रमा को केवल शुक्र से वेध है, अतः वर्षफल सौख्यपूर्ण होगा।

त्रिपताकि चक्र इस प्रकार होगा—



मुद्दादशानयनम्

जन्मर्क्षसंख्यया युक्ता गताब्दा दृग्विहीनिताः ।
नवभिश्च हृताः शेषादाचंक्वादिदशाः स्मृताः ।। ४२ ।।

सुधा—जन्मनक्षत्र संख्या में गताब्द जोड़ दें, दो घटाकर नौ से भाग दें तो शेष पर से आ० चं० कु० रा० जी० श० बु० के० शु० की क्रमशः दशा होती है ।

जैसे यहाँ जन्मनक्षत्र उत्तराषाढ़ की संख्या २१ में गतवर्ष संख्या ३६ जोड़ने से ३६ + २१ = ५७ । इसमें दो घटाने से ५७ — २ = ५५ । पुनः नौ से भाग देने पर शेष = १, अतः सूर्य से आरम्भ कर मुद्दा या मुग्धा दशा होगी ।

मुद्दादशा का मान चक्र इस प्रकार है—

ग्रह	सू०	चं०	मं०	रा.	गु०	श०	बु०	के०	शु०
मा०	०	१	०	१	१	१	१	०	२
दि०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०

इसके आनयन की विधि इस प्रकार है—जैसे सूर्य के विंशोत्तरी दशावर्ष = ६, अतः $\frac{६ \times १}{१२०} = \frac{१}{२०}$ इसे १२ से गुणा करने पर $\frac{३}{५}$, पुनः ३० से गुणा करने पर $\frac{३ \times ३०}{५}$ = १८ = दिन । इसी तरह चन्द्रादि ग्रहों का भी मुद्दादशानयन जानना चाहिए ।

वर्षेशसूर्यफलम्

रवौ वर्षाधिपे पूर्णबलाढ्ये राज्यसत्सुखम् ।
पुत्रार्थजनितं चापि यशः शुभ्रं रिपुक्षयः ।। ४३ ।।

वर्षेशे मध्यबलिनि मध्यमं सकलं फलम् ।
स्वजनेन विवादश्च स्थानभ्रंशो नृपाद्भयम् ।। ४४ ।।
शरीरे कृशता चापि मुथशीलः शुभैर्न चेत् ।
निर्बलेऽब्दपतौ तस्मिन् धनक्षयशुचोऽरिभीः ।
लोकापवादजनितं दुःखं पुत्रसुहृद्भयम् ।। ४५ ।।

सुधा—वर्षेश सूर्य पूर्णबली हों तो राज्यसुख, पुत्र-धनजनित सौख्य, शुभ्रयश एवं शत्रुक्षय आदि अनेक सत्फल होते हैं । वर्षेश मध्यबली हों तो सभी उपर्युक्त फल मध्यमाकारक होते हैं । साथ ही वर्षेश को शुभग्रह से इत्थशाल यदि नहीं हों तो आत्मीय जनों से विवाद, स्थानच्युति, राजभय एवं शारीरिक दुर्बलता होती है । वर्षेश यदि निर्बल हों तो धनक्षय, शोक, शत्रुभय एवं लोकापवादजन्य दुःख तथा पुत्र-मित्र को भय कहना चाहिए ।

वर्षेशचन्द्रफलम्

शशाङ्केऽब्दपतौ पूर्णबलाढ्ये विविधं सुखम् ।
वित्तपुत्रकलत्रादिजनितं राजसौहृदम् ।। ४६ ।।
वस्त्राभरणगन्धादिप्राप्तिर्लाभश्च सम्पदाम् ।
वर्षेशे मध्यबलिनि मध्यमं सकलं फलम् ।। ४७ ।।
शत्रुता सुतमित्राद्यैः कार्श्यं शारीरिकं तथा ।
यदीशराफः पापेन तदेदं फलमादिशेत् ।। ४८ ।।
निर्बलेऽब्दपतौ शीतकफाद्यामयचौर्यभीः ।
स्वजनैर्विग्रहश्चापि क्लेशो मृत्युसमो भवेत् ।। ४९ ।।

सुधा—वर्षेश चन्द्रमा पूर्णबलयुक्त हों तो अनेकविध सौख्य होते हैं । धन-पुत्र-कलत्रजनित सौख्य, राजा से मित्रता, वस्त्र-आभूषण-गन्धादि तथा विविध सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है । मध्यबली वर्षेश हों तो सभी उपर्युक्त फल मध्यमरूप से कहें । पापग्रह से वर्षेश को ईशराफ हो तो पुत्र-मित्र आदियों से शत्रुता, शारीरिक दुर्बलता आदि होते हैं । निर्बल वर्षेश में शैत्य कफादि रोग तथा चोरी का भय कहें । अपने जनों से विरोध तथा मृत्युतुल्य क्लेश का अनुभव भी कहना चाहिए ।

वर्षेशभौमफलम्

भौमे पूर्णबलोपेतेऽब्दपे कीर्त्तिरिपुक्षयौ ।
सेनापतित्वमाप्तिश्च कुलोचितपदस्य च ।। ५० ।।
मित्रपुत्रार्थवित्तादिजनितं सुखमुत्तमम् ।
मध्येऽब्दपेऽवनिसुते रक्तस्रावोऽस्त्रतो हतिः ।। ५१ ।।

प्रभुत्वं स्वजने मध्यं पूर्वोक्तं फलमादिशेत् ।
हीनेऽब्दपेऽवनिसुते भयं शत्रोस्तथाग्नितः ।। ५२ ।।
कार्यध्वंसो रोगभीतिर्विदेशगमनं क्षयः ।
किञ्चैतत्सकलं जीवदृष्टयभावेऽब्दपे भवेत् ।
जीवदृष्टेऽशुभं सर्वमल्पतो निर्दिशेद् बुधः ।। ५३ ।।

सुधा—पूर्णबलयुक्त मंगल यदि वर्षेश हों तो यश, शत्रुक्षय, सेनापतित्व तथा वंशपरम्परागत पदप्राप्ति एवं मित्र-पुत्र-धनादिजनित उत्तम सुख की प्राप्ति होती है। मध्यबली मंगल यदि वर्षेश हों तो रक्तस्राव एवं अस्त्र से आघात होते हैं। अपने जन में मुख्यता तथा पूर्वोक्त फल मध्यम रूप से कहना चाहिए।

हीनबल मंगल यदि वर्षेश हों तो शत्रु तथा अग्नि से भय, कार्यध्वंस, रोगभय, विदेशगमन तथा विनाश आदि अशुभ फल होते हैं। किन्तु ये अशुभ फल वर्षेश पर गुरु की दृष्टि नहीं रहने पर ही कहना चाहिए। गुरुदृष्टि रहने पर उपर्युक्त अशुभ फल अल्पमात्रा में कहना चाहिए।

वर्षेशबुधफलम्

सौम्येऽब्दपे बलवति शास्त्रार्थे विजयोऽपि च ।
ज्ञानं कलागणितजं गुरुत्वं च नृपाश्रयः ।। ५४ ।।
राजमन्त्रित्वमथवा धनाप्तिस्तु विशेषतः ।
मध्यवीर्ये शशिसुते मध्यमं फलमादिशेत् ।। ५५ ।।
शुभग्रहेत्थशालेन पुत्रमित्रसुखं तथा ।
वाणिज्यवर्त्तनादौ च लाभः परिभवोऽन्यथा ।। ५६ ।।
सौम्येऽब्दपेऽधमबले बलबुद्धिक्षयो भृशम् ।
धनक्षयोऽपि निक्षेपाद् विपद्धानिश्च सर्वथा ।। ५७ ।।

सुधा—बली बुध वर्षेश हो तो शास्त्रार्थ में विजय, कला-गणितजन्य ज्ञान की वृद्धि, गुरुता एवं राजाश्रय या राजमन्त्रित्व, विशेषतः धनलाभ कहना चाहिए। बुध वर्षेश होकर मध्यबली हों तो उपर्युक्त फल मध्यमरूप का कहना चाहिए। शुभग्रह से वर्षेश को इत्थशाल यदि हों तो पुत्र-मित्रसौख्य एवं वाणिज्य-व्यवहार से लाभ कहें। अन्यथा इत्थशाल के अभाव और इशराफ की सत्ता में परिभव (सर्वथा विनाश) कहें।

अधम बली बुध वर्षेश हों तो बल-बुद्धि-धर्मक्षय एवं निक्षेप से विपत्ति तथा सर्वथा हानि होती है।

वर्षेशगुरुफलम्

गुरौ बलयुतेऽब्देशे परिवारसुखं धनम् ।
धर्मी गुणग्रहिलता लाभो राजाश्रयान्निधेः ।। ५८ ।।

विश्वास्यत्वं गुरुत्वं च विक्रमाप्ती रिपुक्षयः ।
मध्यवीर्ये सुरगुरौ मध्यमं सकलं फलम् ।। ५९ ।।
राजसङ्गोऽपि विज्ञानशास्त्रज्ञत्वं च निर्दिशेत् ।
असद्ग्रहेणेशराफे दारिद्र्यं धनसङ्क्षयः ।। ६० ।।
कलत्रपीडनं चापि निखिलं त्वशुभं फलम् ।
जीवेऽब्देशेऽधमबले धर्मार्थसुखसङ्क्षयः ।। ६१ ।।
सुतमित्रकलत्रेभ्यो विरोधः कफरोगभीः ।
लोकापवादाद् वैकल्यं रिपुभीः कलहीजनैः ।। ६२ ।।

सुधा—प्रबल गुरु यदि वर्षेश हों तो परिवारसुख, धन-धर्मप्राप्ति, गुणग्राहिता और राजाश्रय से निधि की प्राप्ति कहें। ऐसे समय में मनुष्य को गुरुत्व एवं विश्वास्यत्व, पराक्रम की प्राप्ति तथा शत्रुक्षय होते हैं।

मध्यबली गुरु यदि वर्षेश हों तो सभी फल मध्यम रूप के होते हैं। किन्तु राजा के साथ संसर्ग, विज्ञानशास्त्रज्ञता भी होती है। पापग्रह से यदि वर्षेश को ईशराफ योग हो तो दरिद्रता, धनक्षय, स्त्रीपीड़ा आदि अनिष्ट फल होते हैं। गुरु निर्बल होकर वर्षेश हों तो धर्म-अर्थ-सुख—सबों का विनाश, पुत्र, मित्र एवं स्त्री से विरोध, कफ-रोगप्रकोप, लोकापवाद से विकलता, शत्रुभय तथा लोगों से विरोध होता है।

वर्षेशशुक्रफलम्

बलाढ्ये भार्गवेऽब्देशे नैरुज्यं मिष्टभोजनम् ।
राजाश्रयाद्धनं सौख्यं भोगतोषविलासिताः ।। ६३ ।।
मध्यवीर्ये कवावब्दपतौ मध्यं फलं स्मृतम् ।
गुप्तदुःखं स्तोकवृत्तिः पापेक्षितयुतेऽब्दपे ।। ६४ ।।
विपदोऽर्थक्षयो भूरि सकलं त्वशुभं दिशेत् ।
दुर्बलेऽब्दपतौ शुक्रे वृत्तिच्छेदो मनोव्यथा ।। ६५ ।।
लोकोपहासविपदः कष्टादन्नाशनं भवेत् ।
द्वेषः कलत्रपुत्राद्यैः वैकल्यं न सुखं क्वचित् ।। ६६ ।।

सुधा—वर्षेश शुक्र पूर्णबली हों तो नैरुज्य, प्रतिदिन मिष्टान्नभोजन, राजाश्रय के कारण धनलाभ, भोग, सन्तोष एवं विलासिताजन्य सौख्य की प्राप्ति होती है। मध्यबली शुक्र यदि वर्षेश हों तो सभी फल मध्यम रूप के होते हैं। वर्षेश पर पापग्रह की दृष्टि या पापग्रह का संयोग रहे तो गुप्त क्लेश, अल्पवृत्ति, अन्य विपदाएँ, धनक्षय आदि सभी अनिष्ट फल होते हैं। निर्बल वर्षेश शुक्र के होने से जीविका का विच्छेद, मानसिक व्यथा, लोकोपहासजन्य विपत्तियाँ, किसी तरह कष्ट से भोजनवृत्ति, पुत्र-कलत्रादि से द्वेष के कारण विकलता, किन्तु कहीं भी सुखप्राप्ति नहीं होती है।

वर्षेशशनिफलम्

शनौ बलिनि वर्षेशे भूमिवेश्मार्थसञ्चयः ।
कुलोचितपदप्राप्तिस्तडागारामजं सुखम् ॥ ६७ ॥
यवनाधीशसम्मानमङ्गपुष्टिश्च सौख्यदा ।
मध्यवीर्ये शनौ वर्षपतौ मध्यं फलं स्मृतम् ॥ ६८ ॥
पापेक्षणयुतेऽब्देशे कृच्छ्रादन्नाशनं भवेत् ।
मन्दे हीनबले तत्रार्थक्षयो विपदोऽरिभीः ॥ ६९ ॥
स्त्रीपुत्रमित्रजनतो वैरं कष्टात्कदन्नभाक् ।
शुभग्रहेणेत्थशाले सौख्यमीषत् स्मृतं बुधैः ॥ ७० ॥

सुधा—वर्षेश शनि प्रबल रहें तो भूमि, गृह तथा धन प्राप्ति होवे। उसे वर्ष के भीतर ही कुलोचित पदप्राप्ति तथा तालाब, बगीचा आदि का सौख्य भी प्राप्त होता है। यवनाधीश (राजा) से सम्मान, सुपुष्ट अङ्ग आदि से सौख्य होते हैं। मध्यवीर्य वर्षेश शनि में समस्त फल मध्यमरूप का होवे। वर्षेश पर पापग्रह की दृष्टि या पाप का संयोग रहे तो कठिनता से उसे भोजन प्राप्त हो। हीनबल वर्षेश शनि रहें तो धनक्षय, अनेक विपदाएँ तथा शत्रु से भय प्राप्त होता है। स्त्री-पुत्र-मित्रजनों से उसे शत्रुता हो जाती है और बड़ी कठिनता से उसे भोजन प्राप्त होता है। किन्तु शुभग्रह से इत्थशाल रहने पर थोड़ा-सा सौख्य प्राप्त होता है।

सामान्यतो ग्रहाणां वर्षेशफलानि

बलाढ्येऽब्दपतौ सर्वं फलं सौख्यप्रदं स्मृतम् ।
शुभग्रहेणेत्थशाले विशेषात्फलमुत्तमम् ॥ ७१ ॥
मध्यवीर्ये तु वर्षेशे मध्यमं सकलं फलम् ।
पापग्रहेणेशराफे मध्यान्मध्यं तु तत्स्मृतम् ॥ ७२ ॥
वर्षेशेऽल्पबले सर्वं फलं कष्टप्रदं नृणाम् ।
स्त्रीपुत्रमित्रजनितं क्लेशकृन्न शुभप्रदम् ॥ ७३ ॥

सुधा—सामान्य रूप से सभी ग्रहों के वर्षेशजन्य फल इस प्रकार कहना चाहिए—वर्षेश बली हों तो सभी फल सौम्यप्रद होते हैं। साथ ही शुभग्रह से वर्षेश को इत्थशाल होने पर और उत्तम फल होते हैं। मध्यवीर्य वर्षेश में सभी फल मध्याकार होते हैं। पापग्रह के साथ ईशराफ योग हो तो मध्यम से भी मध्यम फल कहना चाहिए। वर्षेश अल्पबल हो तो सभी फल कष्टकर होते हैं। स्त्री-पुत्र-मित्रजनित क्लेशकारी वे किसी भी तरह शुभकारी नहीं होते हैं। यही है सभी ग्रहों के वर्षेश फल का संक्षिप्त सारांश।

मुथहेशफलानि

मुथहा स्वामिसत्खेटदृष्टचा सौख्यप्रदा स्मृता ।
पापक्षुतदृशा रोगभीतिदा न शुभप्रदा ॥ ७४ ॥

वर्षलग्नात् सुखास्तान्त्यरिपुरन्ध्रगताऽशुभा ।
भाग्यराज्यायगाराज्यसुखदाऽन्यत्र मध्यमा ॥ ७५ ॥

सुधा—मुथहा अपने स्वामी या शुभग्रह की दृष्टि से सुखप्रद होती है तथा पापग्रह की शुभदृष्टि से रोगभयकारिणी सर्वथा अशुभ होती है ।

वर्षलग्न से ४।७।१२।६।८ स्थानस्थ वह अशुभ और ९।१०।११ स्थानस्थ राज्य-सुखप्रद होती है । अन्यत्र चार स्थानस्थ वह मध्यफलद होती है ।

द्वादशभावगतमुथहाफलानि

लग्नगा मुथहा शत्रुक्षयकर्त्री शुभा सदा ।
राजप्रीतिकरी देहपुष्टिवित्तसुखप्रदा ॥ ७६ ॥
धनगा धनदा बन्धुसम्मानं नृपसंश्रयम् ।
बलपुष्टिसुखं मिष्टभोजनं च प्रयच्छति ॥ ७७ ॥
तृतीयस्थानगा देहवित्तकीर्त्तिसुखप्रदा ।
लोकोपकारकर्त्री च देवद्विजनृपाश्रया ॥ ७८ ॥
तुर्यगा शत्रुभीदेहपीडा स्वजनवैरदा ।
जलापवादरोगादिवृद्धिदुःखप्रदा भवेत् ॥ ७९ ॥
पञ्चमस्था तु सद्बुद्धिसुतवित्तसुखप्रदा ।
देवद्विजनृपप्रीत्या प्रतापर्धिप्रदेन्थिहा ॥ ८० ॥
षष्ठस्था शत्रुरुग्भीतिप्रदा कीर्त्त्यर्थहारिणी ।
तस्कराद्राजतश्चापि भीतिर्दुर्बुद्धिवृद्धिदा ॥ ८१ ॥

सुधा—लग्नस्थ मुथहा शत्रुक्षयकारिणी तथा सर्वदैव शुभप्रद, राजा से प्रेमकारिणी, शारीरिक पुष्टि तथा धनज सुखप्रद होती है । धनभावस्थ मुथहा धनदात्री, बन्धु-बान्धवों द्वारा सम्मान, राजाश्रय, बलपुष्टिवर्धक तथा प्रतिदिन मिष्टान्नभोजनदात्री होती है । तृतीयस्थानगा वह दैहिक, आर्थिक सौख्य के साथ कीर्त्तिप्रद होती है । वह देवता, ब्राह्मण, राजा के आश्रयदात्री तथा लोकोपकारकर्त्री होती है । चतुर्थस्थानगा मुथहा शत्रुभय, शारीरिक कष्ट तथा आत्मीय जनों से शत्रुता कराने वाली एवं जनापवाद, रोग आदि की वृद्धि से क्लेशकारिणी होती है । पञ्चमस्था वह सद्बुद्धि, पुत्र तथा धन सौख्यप्रद होती है । वह देवता, ब्राह्मण एवं राजा के प्रेम से प्रताप बढ़ाने वाली होती है; वही इन्थिहा भी कहलाती है । षष्ठस्थ मुथहा शत्रु-रोगजन्य भय देने वाली, धन तथा यश की विनाशक, चोर तथा राजा से भय एवं दुर्बुद्धि बढ़ाने वाली होती है ।

द्यूनगा मुथहा धर्मधनध्वंसकरी सदा ।
बन्धुस्त्रीस्ववपुःक्लेशकारिणी शत्रुभीतिदा ॥ ८२ ॥
मृतिस्था धर्मधनयोर्नाशकृद्रोगकारिणी ।
शत्रोस्तस्करतश्चापि भीतिदा व्यसनप्रदा ॥ ८३ ॥

भाग्यगा धनदा राज्ञः पुत्रस्त्रीसौख्यवर्धिनी ।
यशोदा द्विजदेवार्चा भाग्योदयकरी स्मृता ।। ८४ ।।
कर्मस्था राजसम्मानयशोवृद्धिपदाप्तिदा ।
विविधार्थप्रदा कर्मसिद्धिदा सुरभक्तिदा ।। ८५ ।।
लाभगा मुथहा राजाश्रयतो धनदा तथा ।
नैरुज्यभाग्यसन्मित्रपुत्रसौख्यप्रदा स्मृता ।। ८६ ।।
व्ययगा दुर्जनैः सङ्गकारिणी रोगकृत्तनौ ।
धर्मार्थक्षयकर्त्री चासिद्धिदा व्ययशालिनी ।। ८७ ।।

सुधा—सप्तमभावस्थ मुथहा सतत धर्म-धननाशक होती है । वह बन्धुगण, स्त्री तथा अपने शरीर में कष्ट देने वाली एवं शत्रुकृत भय देने वाली होती है । अष्टम स्थित मुथहा धन-धर्मनाशकर्त्री तथा रोगवर्धिनी होती है । वह शत्रु तथा चोर से भय देने वाली तथा दुर्व्यसनप्रद होती है । भाग्य(नवम)स्थ मुथहा राजा के द्वारा धनदात्री, पुत्र-स्त्रीजन्य सुख बढ़ाने वाली, यशोदात्री, देव, ब्राह्मण, पूजन तथा भाग्य बढ़ाने वाली होती है । दशमभावस्थ मुथहा राजसम्मान, यशोवृद्धि एवं स्वकुलोचित पद देने वाली होती है । वह विविध सम्पत्ति देने वाली, कार्यसिद्धिकर्त्री तथा देवभक्तिप्रदा होती है ।

लाभस्थ मुथहा राजाश्रय से धनप्रदा, नैरुज्य, भाग्य, सन्मित्र एवं पुत्रसौख्यप्रदा होती है । व्ययभावस्थ मुथहा दुर्जनों के साथ सङ्ग कराने वाली, रोगकर्त्री, धर्म-धनक्षयकर्त्री, सभी कार्यों में असिद्धिकारिणी तथा खर्चा कराने वाली होती है ।

विशेष—'पापदृष्टः क्षुतदृशा यो भावस्तत्र मुथहा ।
यदि तद्भावजं नश्येत् शुभं त्वशुभमेधते' ।।

जो भाव पापग्रहदृष्ट हो, उसमें यदि मुथहा रहे तो भावज शुभफल नष्ट हो जाता है और अशुभफल बढ़ता है ।

गोचरफलविचारे जन्मराश्यादिगतसूर्यफलम्

जनूराशिस्थिते सूर्ये गमनं तु जनुर्मतः ।
द्वितीयस्थे भयं, लक्ष्मीस्तृतीयस्थेऽथ तुर्यगे ।। ८८ ।।
व्यसनं, पञ्चमस्थे तु दैन्यं शत्रुक्षयोऽरिगे ।
सप्तमस्थे तु सम्मानमष्टमस्थेऽति वेदना ।। ८९ ।।
नवमस्थे क्षयः कान्तेः सिद्धिर्दशमगे पुनः ।
एकादशस्थिते लाभो व्ययः स्याद्द्वादशस्थिते ।। ९० ।।

सुधा—सञ्चारवश जन्मराशि में सूर्य के आने पर गमन (यात्रा), जन्मराशि से दूसरे में सूर्य के आने से भय, तीसरे में आने पर लक्ष्मीप्राप्ति, चतुर्थस्थ होने पर व्यसन, पञ्चमस्थ होने पर दीनता, षष्ठस्थ होने पर शत्रुक्षय, सप्तमस्थ होने पर

सम्मान, अष्टमस्थ होने पर कष्ट, नवमस्थ होने पर कान्तिक्षय, दशमस्थ होने पर सिद्धि, एकादशस्थ में लाभ और द्वादशस्थ में व्यय होता है।

जन्मराश्यादिगतचन्द्रस्य फलम्

जन्मराशिगते चन्द्रे भवेदुत्तमभोजनम्।
जन्मराशेर्द्वितीयस्थे क्षयोऽर्थस्य तृतीयगे॥ ९१॥
धनलाभश्चतुर्थस्थे कुक्षौ पीडा हि विश्रुता।
पञ्चमस्थे कार्यनाशो लाभः षष्ठस्थिते सति॥ ९२॥
सप्तमस्थे धनप्राप्तिरष्टमस्थे भवेद्रुजा।
राजभीर्नवमस्थे स्याद्दशमस्थे सुखं स्मृतम्।
एकादशस्थिते लाभो द्वादशस्थे शुचां भयम्॥ ९३॥

सुधा—जन्मराशिगत चन्द्र में उत्तम भोजन, जन्मराशि से दूसरे में चन्द्र के रहने से धनक्षय, तृतीयस्थ चन्द्र में धनलाभ, चतुर्थस्थ चन्द्र में उदरपीड़ा, पञ्चमस्थ चन्द्र में कार्यनाश, षष्ठस्थ चन्द्र में लाभ, सप्तमस्थ चन्द्र में धनप्राप्ति, अष्टमस्थ चन्द्र में रोग, नवमस्थ चन्द्र में राजभय, दशमस्थ चन्द्र में सुखद, एकादशस्थ चन्द्र में भी लाभ तथा द्वादशस्थ चन्द्र में शोकभय कहना चाहिए।

जन्मराश्यादिगतभौमफलम्

जन्मराश्यादिगे भौमे भीतिक्षतिधनाप्तयः।
शत्रुवृद्धिः क्षयोऽर्थस्य धनाप्तिर्धनसङ्क्षयः।
शस्त्रघातोऽथ रुक्शोको लाभो व्यय इति क्रमात्॥ ९४॥

सुधा—जन्मराशिस्थ भौम में भय, जन्मराशि से दूसरे में मंगल के आने से क्षति, तीसरे में आने से धनलाभ, चौथे में आने से शत्रुवृद्धि, पाँचवें में आने पर अर्थक्षय, छठे में आने से धनलाभ, सातवें में आने पर धनक्षय, आठवें में आने पर शस्त्रघात, नवें में आने पर रोग, दशवें में होने से शोक, ग्यारहवें में होने पर लाभ और बारहवें में होने से अपव्यय होता है।

जन्मराश्यादिगतबुधफलम्

जन्मराश्यादिगे सौम्ये बन्धनं सुधनं ततः।
शत्रुभीरर्थसम्प्राप्तिर्देहे पीडा स्थितिः क्रमात्॥ ९५॥
पीडनं धनसम्प्राप्तिः खिन्नता सौख्यमुत्तमम्।
धनमेकादशस्थे तु व्ययस्थे धनसङ्क्षयः॥ ९६॥

सुधा—जन्मराशि तथा जन्मराशि से दूसरे, तीसरे आदि बुध में क्रमशः बन्धन, सुधन, शत्रुभय, धनप्राप्ति, शारीरिक पीड़ा, स्थैर्य, पीड़ा, धनप्राप्ति, खिन्नता, उत्तमसुख, धनलाभ तथा द्वादशस्थ बुध में धनक्षय—ये फल होते हैं।

जन्मराश्यादिगतगुरुफलम्

जन्मराशिस्थिते जीवे भयं तस्माद् द्वितीयगे ।
धनाप्तिस्तत्तृतीयादौ पीडनं शत्रुवर्धनम् ।। ९७ ।।
सौख्यं शोको राजमानं रोगः सौख्यं च दीनता ।
एकादशस्थे सम्मानं व्ययस्थे दन्तपीडनम् ।। ९८ ।।

सुधा—जन्मराशिगत गुरु में भय, जन्मराशि से दूसरे में यदि गुरु हों तो धनप्राप्ति, तीसरे में पीड़ा, चौथे में गुरु के आने से शत्रुवृद्धि, पाँचवें में सुख, छठे में आने पर शोक, सप्तमस्थ गुरु में राजसम्मान, अष्टमस्थ गुरु में रोग, नवमस्थ गुरु में सौख्य, दशमस्थ गुरु हों तो दैन्य, एकादशस्थ में सम्मान तथा द्वादशस्थ गुरु में दाँत में पीड़ा—ये जन्मराश्यादिगत गुरु में क्रमशः फल होते हैं ।

जन्मराश्यादिगतशुक्रफलम्

जन्मराशिगते शुक्रे शत्रुक्षय उदीरितः ।
द्वितीयादौ धनप्राप्तिः सौख्यं वित्तं तथात्मजे ।। ९९ ।।
प्रीतिर्वृद्धिश्च शत्रूणां शोकोऽर्थाप्तिः सुवस्त्रजा ।
सुखं पीडा धनप्राप्तिः धनाप्तिः क्रमशः फलम् ।। १०० ।।

सुधा—जन्मराशिगत शुक्र का फल शत्रुक्षय कहा गया है । द्वितीयादि में अर्थात् जन्मराशि से दूसरे में धनप्राप्ति, तीसरे में सुख, चौथे में धनलाभ, पाँचवें में पुत्रप्रेम, छठे में शत्रुवृद्धि, सातवें में शोक, आठवें में धनप्राप्ति, नवें में वस्त्रज सुख, दशवें में पीड़ा, ग्यारहवें तथा बारहवें में धनलाभ—क्रमशः ये फल हैं ।

जन्मराश्यादिगतशनिफलम्

जनूराशिस्थिते मन्दे बुद्धिभ्रंशो द्वितीयगे ।
क्लेशस्तृतीयगे सौख्यं, शत्रुवृद्धिश्चतुर्थगे ।। १०१ ।।
पञ्चमस्थे जनूराशेः पुत्रात्कष्टं तु षष्ठगे ।
सौख्यवृद्धिः सप्तमस्थे दोषः पीडाऽष्टमे स्थिते ।। १०२ ।।
हानिर्नवमगे ज्ञेया दारिद्र्यं दशमस्थिते ।
एकादशगतेऽर्थाप्तिर्नानाऽनर्थो व्ययस्थिते ।। १०३ ।।
व्ययादित्रितये मन्दे सार्धसप्तमिताब्दके ।
नानाकष्टं कायजातं मानसञ्चातिदारुणम् ।। १०४ ।।

सुधा—जन्मराशिगत शनि में बुद्धिभ्रंश, जन्मराशि से दूसरे में शनि के रहने से क्लेश, तीसरे में रहने पर सुख, चौथे में रहने पर शत्रुवृद्धि, पञ्चम में होने पर पुत्र द्वारा कष्ट, षष्ठस्थ शनि में सुखसमृद्धि, सप्तमस्थ शनि में दोष, अष्टमगत शनि में

शारीरिक या मानसिक पीड़ा, नवमगत शनि में क्षति, दशमस्थ शनि में निर्धनता, ग्यारहवें शनि में अर्थप्राप्ति तथा व्ययगत शनि में अनेकविध अनर्थकर होते हैं।

व्ययादि त्रितय अर्थात् बारहवें, जन्मराशि तथा जन्मराशि से दूसरे—इन तीनों में शनि के रहने से साढ़ेसाती शनि कहलाते हैं। चूँकि शनि एक राशि में ढाई वर्ष रहते हैं अतः तीनों राशि में साढ़े सात वर्ष रहने के कारण ही साढ़े साती शनि कहलाते हैं। साढ़े साती शनि में शारीरिक एवं मानसिक अनेकविध कष्ट होते हैं।

जन्मराश्यादिगततमोग्रहफलम्

जन्मराश्यादिगे राहौ केतौ वा क्रमशः फलम्।
हानिर्नैःस्वं धनप्राप्तिः वैरं शोको धनार्जनम्॥ १०५॥
वादः पीडा पापवृद्धिर्वैरं सौख्यं धनक्षयः।
इत्येवं जन्मराशेस्तु राहौ द्वादशराशिगे।
केतौ वा विबुधैः प्रोक्तं फलं गोचरसम्भवम्॥ १०६॥

सुधा—जन्मराश्यादि द्वादशराशिगत राहु अथवा केतु में निम्नाङ्कित फल होते हैं—

जन्मराशिगत तमोग्रह में हानि, जन्मराशि से दूसरे में तमोग्रह के रहने से दरिद्रता, तीसरे में रहने से धनप्राप्ति, चौथे में रहने पर शत्रुता, पाँचवें में रहने से शोक, छठे में रहने पर धनोपार्जन, सप्तम में रहने से कलह, आठवें में रहने से पीड़ा, नवम में रहने पर पापवृद्धि, दशवें में रहने पर वैर, ग्यारहवें में रहने से सौख्य तथा बारहवें में रहने से धनक्षय—ये फल होते हैं।

इस तरह जन्मराशि से बारहों राशिगत तमोग्रह के रहने से उपर्युक्त फल गोचर-फल कहलाता है।

मारकेशद्वयदृशा सन्नद्धान्यतरान्तरैः।
किं वाष्टमेशजाभुक्तिर्मारकान्तरसंश्रिता॥ १०७॥
अथवा तद्द्वयदशा शनिराह्वन्तराश्रिता।
त्रिषडायेशसम्बद्धा वापि नैव शुभप्रदा॥ १०८॥
तत्तद्दुर्ग्रहभुक्तौ वा गोचरेणापि दुःस्थितौ।
ग्रहाणां मन्त्रजापं तु चतुर्गुणितसंख्यकम्॥ १०९॥
तत्तद्ग्रहोक्तरत्नानां धारणं च शुभप्रदम्।
दानीयवस्तु दानं च कारयेन्नियतं बुधः॥ ११०॥

सुधा—दोनों मारकेश की दशा में अन्यतर मारकेश की अन्तर्दशा प्राप्त हो या अष्टमेश की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा प्राप्त हो या उन दोनों की महादशा में शनि-राहु की अन्तर्दशा आवे या त्रिषडायेश की महादशा में उपर्युक्त असद्ग्रह की अन्तर्दशा या उन मारकेशादि असद्ग्रह की महादशा में त्रिषडायेश की अन्तर्दशा शुभ-प्रद नहीं होती है।

दुर्ग्रह की महादशा तथा अन्तर्दशा एवम् गोचर विचार से भी दुःस्थिति रहने पर दुर्ग्रहों के मन्त्रजप (चतुर्गुणित संख्या में) तथा तत्तद् ग्रहों का रत्नधारण शुभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त तत्तद् ग्रहों के लिए दानीय वस्तुओं का दान करा देना चाहिए।

ग्रहाणां रत्नानि तद्धारणविधिश्च

रवे रत्नं तु माणिक्यं मौक्तिकं शशिनस्तथा।
विद्रुमं भूमिजातस्य बौधं मरकतं स्मृतम् ॥ १११ ॥
पुष्परागो गुरोः शौक्रं वज्रं नीलं शनेर्मतम्।
राहोर्गोमेदकं प्रोक्तं केतोर्वैदूर्यमुच्यते।
इमानि ग्रहरत्नानि ग्रहशान्त्यै हि धारयेत् ॥ ११२ ॥

सुधा०—सूर्यादि नवग्रहों के निम्नाङ्कित रत्न हैं—

सूर्य के माणिक्य, चन्द्रमा के मोती, मंगल के मूँगा, बुध के मरकतमणि, गुरु के पुष्पराग (पुखराज), शुक्र के वज्र, शनि के नीलमणि, राहु के गोमेद तथा केतु के वैदूर्य हैं।

माणिक्यं विद्रुमं वापि रवेर्दुष्टत्वशान्तये।
सुवर्णग्रथितं कृत्वाऽनामिकायां हि धारयेत् ॥ ११३ ॥
कनिष्ठिकायां सन्धार्यं मौक्तिकं वेन्दुप्रस्तरम्।
राजतग्रथितं विज्ञैर्विधोर्दौष्ट्यप्रशान्तये ॥ ११४ ॥
प्रवालं ताम्रमथवा सौवर्णे राजतेऽपि वा।
निबध्याऽनामिकायां तु धार्यं भौमप्रशान्तये ॥ ११५ ॥
बौधं रत्नं मरकतं पन्नाख्यं वापि मार्गजम्।
कनिष्ठिकायां सन्धार्यं सुवर्णग्रथितं च सत् ॥ ११६ ॥
पुष्परागो गुरो रत्नं टौपेजं वापि विश्रुतम्।
सुवर्णग्रथितं कृत्वा तर्जन्यां परिधापयेत् ॥ ११७ ॥
शौक्रं वज्रं हीरकं वा स्फटिकं रत्नमीरितम्।
रजतग्रथितं तत्तु मध्याङ्गुल्यां हि धारयेत् ॥ ११८ ॥
शनेर्नीलं विकल्पे तु लौहं किं वा जमूनिया।
राहो रत्नं तु गोमेदं, केतोर्वैदूर्यमेव च ॥ ११९ ॥
लाजावर्त्तं विकल्पेन, सन्धार्यं मध्यमाङ्गुलौ।
नीलं सुवर्णसन्नद्धमन्यद्रजतसंश्रितम् ॥ १२० ॥
शने राहोस्तथा केतोर्मन्देऽह्नि परिधापयेत्।
अन्यानि ग्रहरत्नानि तत्तद्ग्रहदिनागमे।
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य धारयेच्छुभदायकम् ॥ १२१ ॥

सुधा—सूर्य यदि गोचर-विचार से प्रतिकूल रहें तो उनकी दुष्टता (प्रतिकूलता) की शान्ति के लिए माणिक्य या विद्रुम सुवर्ण में मढ़कर अनामिका में धारण करना चाहिए ।

चन्द्रमा यदि गोचरदृष्टि से प्रतिकूल रहें तो मोती या चन्द्रप्रस्तर (Moonstone) चाँदी में मढ़कर कनिष्ठ अङ्गुलि में धारण करें, जिससे उनकी दुष्टता (प्रतिकूलता) शान्त हो जाय ।

मंगल यदि गोचरदृष्टि से प्रतिकूल रहें तो मूँगा सोना या चाँदी में मढ़कर अथवा ताँबा अनामिका में धारण करें, जिससे मंगल की प्रतिकूलता शान्त हो जाती है ।

बुध यदि गोचर-विचार से प्रतिकूल रहे तो मरकतमणि या पन्ना या आजकल प्रचलित मर्गज नामक प्रस्तर सोना में मढ़कर कनिष्ठ अङ्गुलि में पहन लें ।

पुखराज (पीला) गुरु का रत्न है । आजकल विकल्प में टौपेज भी प्रचलित है । उन्हें सोने में मढ़कर तर्जनी (अंगुष्ठ तथा मध्य अंगुलि के मध्यवर्त्ती) में पहनावें ।

शुक्र का रत्न वज्र, हीरा एवं स्फटिक प्रशस्त हैं । इसमें से किसी को भी चाँदी में मढ़कर मध्याङ्गुलि में धारण करें, जिससे शुक्रजन्य दोष की शान्ति हो जाती है ।

शनि का रत्न नीलमणि है, विकल्प में आजकल प्रचलित जमूनिया या लोहा (काला घोड़ा के नाल से अथवा दगनी वाले लोहे से निर्मित अंगुठी) प्रशस्त है । नील सुवर्ण में मढ़कर जमूनिया चाँदी में मढ़कर मध्याङ्गुलि में शनिशान्त्यर्थ धारण करें ।

राहु का रत्न गोमेद, केतु का वैदूर्य, विकल्प में लाजावर्त्त मध्यमाङ्गुलि में राहु-केतु-दोषशान्त्यर्थ धारण करें ।

विशेष—नील, माणिक्य, पुखराज तथा पन्ना सुवर्ण में; अन्य सभी चाँदी में मढ़कर उस-उस अंगुलि में ग्रहों के दिन में रत्नों का पञ्चोपचार पूजन के बाद धारण करना चाहिए । राहु-केतु का रत्न शनिवार में ही धारण करें ।

शिववासविचारस्तत्फलञ्च

शुक्लादितिथयो द्वाभ्यां गुणिताः पञ्चभिर्युताः ।
सप्तभिश्च हृताः शेषैः शिववासमुदीरयेत् ।। १२२ ।।
एकद्वित्रिमिते शेषे कैलाशे गौरिसन्निधौ ।
वृषभे च समारूढः शिवोऽभीष्टफलप्रदः ।। १२३ ।।
चतुःपञ्चमिते शेषे सभायां भोजने क्रमात् ।
क्रीडायां षड्मिते सप्तमिते शम्भुः स्मशानगः ।। १२४ ।।
क्रीडा सभाभोजनेषु स्थितः शम्भुर्न शोभनः ।
स्मशानगस्तु विबुधैर्मृत्युदः स उदीरितः ।
तस्मात् शिवस्थितिं ज्ञात्वा तदनुष्ठानमाचरेत् ।। १२५ ।।

सुधा—शुक्लादि तिथिसंख्या को दो से गुणा कर गुणनफल में पाँच जोड़ दें; योगफल में सात से भाग दें; एक, दो तथा तीन शेष में क्रमशः कैलाश गौरी के निकट तथा वृषभारूढ शिव को समझें। इन तीनों स्थानों में स्थित शिव सर्वाभीष्ट-प्रद होते हैं। अर्थात् पार्थिवशिवलिङ्गपूजन या किसी अन्य शिवानुष्ठान में उपर्युक्त रीति से आगत एक-द्वि-त्रि शेष में ही शिवार्चन या मृत्युञ्जयादि जपारम्भ करें।

उपर्युक्त रीति से क्रिया करने पर चार, पाँच, छः शेष में क्रमशः सभा, भोजन तथा क्रीडारत रहते हैं और सात में श्मशानस्थ होने के कारण सर्वथा अनिष्टकर होते हैं। श्मशानस्थ शिव में शिवार्चनादि आरम्भ करने पर मृत्युप्रद कहे गये हैं। अन्य भी सभा, भोजन, क्रीड़ा-रतावस्था में वे अनिष्टकर कहे गये हैं। अतः शिवाराधनारम्भ के समय उपर्युक्त रीति से एक, दो, तीन शेष में ही कल्याणप्रद शिव होते हैं।

वह्निवासविचारस्तत्फलञ्च

सैकाः शुक्लादितिथयो रव्यादिदिवसान्विताः।
चतुर्भिर्विहृताः शून्ये गुणे वा शेषकेऽनलः॥ १२६॥
भूस्थितो ह्येकयुग्मे तु शेषके दिवि भूतले।
भूस्थितोऽग्निः सदा सौख्यकृद्भवेद्धवनादिके॥ १२७॥
प्राणार्थक्षयकृज्ज्ञेयो दिवि भूमितले स्थितः।

सुधा—शुक्लादि तिथिसंख्या में एक जोड़कर पुनः सूर्यादि दिनसंख्या जोड़ दें, योगफल में चार से भाग दें, शून्य तथा तीन शेष में अग्निदेव भूमिस्थित होते हैं। एक शेष में आकाशस्थ और दो शेष में पातालगत होते हैं। भूमिस्थ अग्निदेव हवनादि में सर्वथा सौख्यकारी होते हैं और आकाश तथा पातालस्थ अग्निदेव में हवनादि क्रिया करने पर क्रमशः वे प्राण तथा अर्थ के विध्वंसक होते हैं।

अतः हवनादि क्रिया करते समय अग्निवास देखकर ही आरम्भ करना चाहिए।

चन्द्रादीनां कालांशकथनम्

सूर्याः सप्तभुवो वह्निभुवश्चन्द्रेन्दवो नवाः॥ १२८॥
तिथयः क्रमशश्चन्द्राद् विज्ञैः काललवाः स्मृताः।
बुधभार्गवयोरेकहीनास्ते वक्रिणो मताः॥ १२९॥

सुधा—१२, १७, १३, ११, ९, १५ ये क्रमशः चन्द्रादि षड्ग्रहों के कालांश हैं। वक्री बुध-शुक्र के कालांश एकोन उपर्युक्त कालांश अर्थात् बुध के १२ तथा शुक्र के ८ हैं।

विशेष—कालांश का तात्पर्य है कि सूर्य से उपर्युक्त अन्तरांशों के दायरे में तत्तद् ग्रहों के रहने से सूर्यकिरणों से विलुप्त किरण होने के कारण ग्रहों की अदृश्यता और आगे होने पर दृश्यता समझनी चाहिए। जैसे चन्द्रमा सूर्य से १२ अंश के भीतर रहने पर अदृश्य, उसके बाद आगे होने पर दृश्य होते हैं।

अथ प्रश्नविचाराध्यायः

तत्र लग्नसूर्यचन्द्रवशेन कार्यसिद्ध्यसिद्धिज्ञानम्

चरे लग्ने चरे सूर्ये चरे शशिनि संस्थिते (१)।
चरे लग्ने चरे चन्द्रे सूर्ये तु स्थिरराशिगे (२)॥ १३०॥
चरे लग्ने स्थिरे सूर्ये द्विस्वभावगते विधौ (३)।
प्रश्नक्षणो यदि भवेत्तदा सिद्धिः सुनिश्चिता।
उक्तत्रिस्थितिभिन्ने तु चरलग्ने न सा स्मृता॥ १३१॥

सुधा—चरलग्न, चरराशिगत सूर्य एवं चरराशिस्थ चन्द्र में यदि प्रश्नकाल हो अर्थात् प्रश्नक्षण में लग्न, सूर्य तथा चन्द्र तीनों चरराशिस्थ हों तो निश्चयतः कार्य-सिद्धि होती है।

इसी तरह चरलग्न, चरराशिस्थ चन्द्र एवं स्थिरराशिगत सूर्य यदि प्रश्नकाल में हों तो भी कार्यसिद्धि होती है।

तीसरी स्थिति चरलग्न, स्थिरराशिगत सूर्य और द्विस्वभावराशिस्थ चन्द्र हों तो भी कार्यसिद्धि कहना चाहिए।

उपर्युक्त तीनों स्थितियों के अतिरिक्त स्थिति में चरलग्नगत प्रश्नकाल होने पर कार्य की असिद्धि कहें।

एवं स्थिरे तनौ सूर्ये चन्द्रे च चरराशिगे (१)।
स्थिरे लग्ने स्थिरे सूर्ये चन्द्रेऽपि स्थिरराशिगे (२)॥ १३२॥
स्थिरे लग्ने स्थिरे सूर्ये द्विस्वभावगते विधौ (३)।
स्थिरे लग्ने चरे सूर्ये चरराशौ स्थिते विधौ (४)॥ १३३॥
स्थिरे लग्ने स्थिरे चन्द्रे द्विस्वभावगते रवौ (५)।
स्थिरे लग्ने रवौ चन्द्रे द्विस्वभावगते सति (६)॥ १३४॥
प्रश्नक्षणः सदा सर्वकार्यसाधक ईरितः।
उक्तस्थितिविभिन्नेषु स्थिरलग्नेन्दुभानुषु।
कार्यसिद्धिर्न वक्तव्याऽनिष्टं च फलमादिशेत्॥ १३५॥

सुधा—(१) स्थिरलग्न, चरराशिगत सूर्य-चन्द्र; (२) स्थिरलग्न, स्थिर-राशिस्थ सूर्य तथा चन्द्र; (३) स्थिरलग्न, स्थिरराशिस्थ सूर्य और द्विस्वभावगत चन्द्र; (४) स्थिरलग्न, चरराशिगत सूर्य तथा चन्द्र; (५) स्थिरलग्न, स्थिरचन्द्र एवं द्विस्वभावगत सूर्य तथा (६) स्थिर लग्न और सूर्य तथा चन्द्र द्विस्वभावगत—इन छः स्थितियों में यदि प्रश्नक्षण हों तो सर्वकार्यसिद्धि कहना चाहिए। अन्यथा

उपर्युक्त षड्विध स्थिति से भिन्न परिस्थिति में यदि प्रश्नकाल हों अर्थात् स्थिरलग्न तथा चर-स्थिर-द्विस्वभावगत सूर्य-चन्द्र में कार्य की असिद्धि ही नहीं प्रत्युत अनिष्ट भी होता है।

द्विदेहगतलग्नेषु चन्द्रेऽर्केऽपि च तद्गते।
किं वा द्विदेहगतनौ द्विदेहेऽर्के चरे विधौ ॥ १३६ ॥
द्विस्वभावगते लग्ने स्थिरेऽर्के चरगे विधौ।
किं वा द्विदेहगतनौ स्थिरेऽर्केऽपि च शीतगौ ॥ १३७ ॥
द्विस्वभावगते लग्ने चरे सूर्ये स्थिरे विधौ।
किं वा तनौ द्विदेहस्थे चरेऽर्के द्विस्वभे विधौ ॥ १३८ ॥
एषु सर्वेषु योगेषु कार्यसिद्धिः सुनिश्चिता।
एभ्यो भिन्नस्थितौ नैव संसिद्धिं लभते नरः ॥ १३९ ॥

सुधा—(१) द्विस्वभावराशिगत लग्नों में चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों यदि द्विस्वभाव-राशिस्थ हों; (२) किंवा द्विस्वभावस्थ लग्न, द्विस्वभावस्थ सूर्य और चरराशिगत चन्द्र हों; (३) अथवा द्विस्वभावराशिस्थ लग्न, स्थिरराशिगत सूर्य और चरराशिगत चन्द्र हों; (४) किंवा द्विस्वभावराशि के लग्न में स्थिरराशिस्थ चन्द्र-सूर्य दोनों हों; (५) या द्विस्वभावराशिगत लग्न में चरराशिस्थ सूर्य और स्थिरराशिस्थ चन्द्र हों; (६) अथवा द्विस्वभावराशिगत लग्न, चरराशिस्थ सूर्य एवं द्विस्वभावराशिस्थ चन्द्र हों—इन सभी उपर्युक्त परिस्थितियों में यदि प्रश्नकर्त्ता प्रश्नों का फलाफल जानना चाहें तो उसकी सर्वथा कार्यसिद्धि सुनिश्चित है। इनसे विभिन्न स्थिति में अर्थात् द्विस्व-भावलग्न तथा चन्द्र-सूर्य के चर-स्थिर-द्विस्वभावगत राशि में कार्यसिद्धि नहीं होती है—ऐसा विद्वानों का कहना है।

पथिकगमनागमनप्रश्नविचारः

प्रश्नलग्नात् सुखे खे वा सौम्यखेटो भवेत्तदा।
गन्तुर्न गमनं तर्हि भवेदिति बुधा जगुः ॥ १४० ॥
पापा यदि गतास्तत्रागन्तुर्नागमनं तदा।
चतुर्थाद्दशमाद्खेटो द्वितीयेऽभ्येति यावता ॥ १४१ ॥
कालेन तावता ज्ञेयं पथिकागमनं बुधैः।
सप्तमस्थो यदा चन्द्रोऽथवा नवमभावपः ॥ १४२ ॥
राश्यर्धात् परतस्तर्हि पथिकः पथि वर्त्तते।
सुखे जीवोऽथवा चन्द्रो भार्गवो वापि संस्थितः ॥ १४३ ॥
शीघ्रमेवागतं विद्यात्पथिकं प्रश्नवित्तदा।
प्रश्नलग्नात् द्वितीये वा तृतीये गुरुभार्गवौ ॥ १४४ ॥
तदापि त्वरितं विद्यात् पथिकं गृहमागतम्।
षष्ठे वा सप्तमे चन्द्रलग्नपौ संयुतौ यदि ॥ १४५ ॥

रन्ध्रनाथेन कुरुतो मृत्युं हि पाथिकस्य वै।
पृष्ठोदये प्रश्नलग्ने सौम्याऽदृष्टे खलेक्षिते।
परदेशी क्लेशयुक्तः पापैर्वा केन्द्रगैरपि ।। १४६ ।।

सुधा—पथिक के गमनागमनसम्बद्ध प्रश्न में प्रश्नलग्न से चतुर्थ या दशम में शुभग्रह हों तो परदेशगन्तुक का गमन अवरुद्ध हो जाय—ऐसा विद्वानों ने कहा है। उन चौथे या दशवें स्थान में यदि पापग्रह हों तो आगन्तुक का आगमन रुक जाता है। चौथे या दशवें से जितने समय में ग्रह पाँचवें या ग्यारहवें स्थान में आवे उतने दिनों में पथिक का आगमन कहना चाहिए। यदि चन्द्रमा सप्तमस्थ हों या नवमेश राशि के उत्तरार्ध में हों तो पथिक रास्ते में है, ऐसा समझना चाहिए। चतुर्थ में गुरु, चन्द्रमा या शुक्र यदि रहें तो प्रश्नवेत्ता शीघ्र ही पथिक को आगत समझें। प्रश्नलग्न से दूसरे या तीसरे में गुरु-शुक्र विद्यमान हों तो भी शीघ्र ही पथिक को आगत समझें। चन्द्रमा तथा लग्नेश षष्ठ या सप्तम में अष्टमेश के साथ हों तो पथिक का मरण कहना चाहिए। पृष्ठोदय (१।२।४।९।१०) यदि प्रश्नलग्न हो, उस पर शुभग्रह का दृष्टयभाव तथा पापग्रह की पूर्णदृष्टि रहे तो पथिक क्लेशयुक्त है, ऐसा समझना चाहिए। पापग्रह केन्द्रगत रहें तो भी उसे क्लेशयुक्त जानना चाहिए।

पथिकादिगमागमयोगौ

प्रश्नकाले स्थिरे लग्ने स्यातां नैव गमागमौ।
चरे तद्व्यत्ययं विद्यात् द्विस्वभावे तु मिश्रता ।। १४७ ।।

सुधा—प्रश्नकाल में यदि स्थिरलग्न हो तो आगन्तुक का गमनागमन अवरुद्ध रहता है। चरलग्न में गमनागमन चालू और द्विस्वभावलग्न में उभय अर्थात् पूर्वार्ध में स्थिरराशिवत् और उत्तरार्ध में चरराशिवत् फल समझना चाहिए।

अथाऽन्यथाऽऽगन्तुकस्यागमनप्रश्नविचारः

नवकोष्ठमिते चक्रे न्यसेदङ्कान् नवावधि।
प्रश्नकर्त्ता निजाङ्गुल्या स्पृशेदेकं निजेच्छया ।। १४८ ।।
वसुयुग्ममिते स्पृष्टे नायात्यागन्तुकस्तथा।
षड्वेदाभ्यां समागन्ता त्रिसप्तभ्यां तु पत्रदः।
शेषैस्त्रिभिः पञ्चनन्दभूमितैः शीघ्रमाव्रजेत् ।। १४९ ।।

सुधा—किसी आगन्तुक के आगमनसम्बद्ध प्रश्न के लिए नवकोष्ठमित चक्र का विन्यास करें। उसमें एक से नौ तक अङ्कों को विन्यस्त कर प्रश्नकर्त्ता के द्वारा इच्छानुसार किसी एक अङ्क का स्पर्श करावें। यदि प्रश्नकर्त्ता २ या ८ अङ्क को छूवें (स्पर्श करें) तो आगन्तुक अभी आने वाला नहीं है—ऐसा समझें। यदि वह ६ या ४ अङ्कों को स्पर्श करें तो उसे आने वाला समझना चाहिए। यदि तीन या सात अङ्क

को छूवें तो आगन्तुक पत्र देकर कुशलादि की जानकारी कराता है। शेष तीन अङ्क ५, ९, १ के स्पर्श करने पर आगन्तुक शीघ्र आवें, ऐसा समझना चाहिए।

सन्तानसम्बद्धप्रश्नविचारः

वामस्त्रिघ्नस्तिथियुतो द्विभक्तः शेषमानयेत्।
सन्ततिः सम्भवेदेकशेषे, शून्ये विसम्भवा ॥ १५० ॥

सुधा—रव्यादि दिनसंख्या को तीन से गुणा कर गुणनफल में शुक्लादि तिथि-संख्या जोड़ दें। योगफल में दो से भाग देने पर एक शेष में सन्तान की संभावना समझें, अन्यथा अर्थात् शून्य शेष में सन्तान की सम्भावना नहीं कहना चाहिए।

जैसा कि शुक्लपक्ष की दशमी तिथि और रविवार को सन्तान सम्बन्धी प्रश्न किसी ने किया है तो उपर्युक्त नियमानुसार १ × ३ = ३; ३ + १० = १३; १३ ÷ २ लब्धि = ६ शेष = १, अतः सन्तान का होना सम्भव है। शून्य शेष में अर्थात् पूरा-पूरा दो से भाग लग जाने पर सन्तान की सम्भावना नहीं सम्भव है।

सन्ततिसम्बद्धप्रश्नविचारः

वहन्ती पिङ्गलाप्रश्नक्षणे नाडी विशेषतः।
पुत्रदा वहमानेडा ज्ञेया कन्याप्रदा बुधैः ॥ १५१ ॥
पञ्चमेशस्तथा प्रश्नलग्नेशो नरराशिगौ।
पुत्रोत्पत्तिकरौ, कन्याप्रदौ स्त्रीराशिगौ हि तौ ॥ १५२ ॥
शनिर्विषमराशिस्थो विषमांशगतोऽपि वा।
पुत्रोत्पत्तिकरस्तद्वत् समभेंऽशे सुताप्रदः ॥ १५३ ॥
विषमेऽर्को गुरुश्चन्द्रः पुत्रोत्पत्तिकरस्तथा।
सुते शुक्रेन्दुभौमानां दृष्टिश्चापि सुतप्रदा ॥ १५४ ॥
भार्गवेन्दू पञ्चमस्थौ कन्याजन्मकरौ तथा।
बलिनौ पञ्चमस्थानं पश्यतस्तर्हि पुत्रदौ ॥ १५५ ॥
बलिनौ प्रश्नलग्नाच्चेल्लाभगावपि पुत्रदौ।
नीचास्तारिगतौ तौ तु ज्ञेयौ सन्ततिबाधकौ ॥ १५६ ॥

सुधा—प्रश्नकाल में यदि पिङ्गला (दक्षिणा) नाड़ी विशेषरूप से चलती रहे तो पुत्र और इड़ा (वामा) नाड़ी विशेष रूप में चलती हो तो कन्या का जन्म कहना चाहिए।

पञ्चमेश तथा प्रश्नलग्नेश दोनों पुरुषराशिस्थ हों तो पुत्र की एवं स्त्रीराशिगत हों तो कन्या की उत्पत्ति कहना चाहिए।

शनि विषमराशि या विषमराशि के नवांशगत हों तो पुत्रोत्पत्तिकारक होते हैं और वे ही समराशि या समराशि के नवांशस्थ होने पर कन्याप्रद होते हैं।

प्रश्नकाल में सूर्य, गुरु, चन्द्र विषमराशिस्थ होने पर पुत्रजन्मप्रद होते हैं। पञ्चमभाव पर शुक्र, चन्द्रमा और मंगल की दृष्टि भी पुत्रोत्पत्तिकारक होती है।

प्रश्नक्षण में शुक्र, चन्द्रमा पञ्चमस्थ हों तो कन्या जन्मकारी होते हैं और बली वे दोनों यदि पञ्चमभाव को देखते हों तो पुत्रप्रद होते हैं।

प्रश्नक्षण में बली वे (शुक्र-चन्द्रमा) प्रश्नलग्न से एकादशभावगत हों तो पुत्रप्रद और वे यदि नीचराशि या सूर्यसान्निध्य से अस्त या षष्ठगत हो तो सन्तानबाधक होते हैं।

सन्ततिसम्बद्धप्रश्ने योगान्तरमाह

पञ्चमेशस्तनौ लग्नपतिः पञ्चमगस्तथा।
बलिना शशिना युक्तस्तदा पुत्रो न संशयः ॥ १५७ ॥
प्रश्नक्षणेऽङ्गपुत्रेशौ भवतो हि निजोच्चगौ।
दृष्टिः परस्परमपि तदा पुत्रो न संशयः ॥ १५८ ॥
प्रश्नक्षणे पञ्चमेशो राहुणा वा कुजेन वा।
युक्तस्तदाऽपत्यहानिरित्युक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ १५९ ॥

सुधा—प्रश्नक्षण में पञ्चमेश लग्न में और प्रश्नलग्नेश पञ्चम में स्थित हों तथा प्रबल चन्द्रमा से युक्त हों तो निःसंदेह पुत्रोत्पत्ति होवे।

प्रश्नकाल में प्रश्नलग्नेश एवं पञ्चमेश दोनों अपने-अपने उच्चस्थ हों और दोनों में पारस्परिक दृष्टि भी रहे तो भी निःसंशय पुत्रजन्म कहना चाहिए।

प्रश्नक्षण में पञ्चमेश राहु या मंगलयुक्त हों तो सन्तान की हानि होती है, जैसा कि प्राचीन विद्वानों का मत है।

मानसिकप्रश्नोत्तरविचारः

मेषलग्ने द्विपच्चिन्ता वृषभे तु चतुष्पदाम्।
मिथुने गर्भजनिता कर्कटे व्यवसायजा ॥ १६० ॥
सिंहे जीवभवा ज्ञेया कन्यायां स्त्रीसमुद्भवा।
तुलायां धनचिन्ता स्यात् वृश्चिके व्याधिसम्भवा ॥ १६१ ॥
धनुर्लग्नेऽपि धनजा मकरे शत्रुसम्भवा।
कुम्भे स्थानभवा ज्ञेया मीने सा दैवकी मता ॥ १६२ ॥

सुधा—प्रश्नक्षण में मेषलग्न रहने से द्विपाद मनुष्य-विषयिक चिन्ता, वृषलग्न में पशु(चतुष्पाद)चिन्ता, मिथुनलग्न में गर्भ-विषयक चिन्ता, कर्कलग्न में व्यवसाय की चिन्ता, सिंहलग्न रहने पर जीवचिन्ता, कन्यालग्न में स्त्रीसम्बद्ध चिन्ता समझना चाहिए। तुलालग्न में धन-विषयिक चिन्ता, वृश्चिकलग्न में रोगसम्बद्ध चिन्ता, धनुलग्न रहने पर भी धनचिन्ता, मकरलग्न में शत्रुजन्य चिन्ता, कुम्भलग्न में घर की चिन्ता और मीनलग्न में दैवी चिन्ता (प्रश्न) समझें।

आकाशे रविचन्द्रबिम्बे परितः परिवेषे फलम्

प्रथमप्रहरे सूर्यचन्द्रयोर्बिम्बमण्डले ।
परितः परिवेषे तु जनपीडा प्रजायते ।। १६३ ।।
परिवेषे मध्ययामे वृष्टिः स्यात्सुखदायिनी ।
तृतीये प्रहरे तत्र शस्यनाशोऽपि निश्चितः ।
चतुर्थे प्रहरे तस्मिन् राज्यध्वंस उदीरितः ।। १६४ ।।

सुधा—सूर्य-चन्द्रमा के बिम्बमण्डल में चतुर्दिक् वृत्ताकार परिवेष यदि प्रथम प्रहर में दीख पड़े तो जनता पीड़ित होती है। दूसरे प्रहर अर्थात् मध्ययाम में वह परिवेष आकाश में दीख पड़े तो सौख्यप्रद वृष्टि होती है। तृतीय प्रहर में यदि वह परिवेष लक्षित हो तो धान्यक्षय होता है। चतुर्थ प्रहर में उसे देखा जाय तो राज या राज्य भङ्ग होता है।

असमये इन्द्रधनुरुल्कापाताद्युत्पातफलम्

यदीन्द्रधनुषो रात्रौ धूम्रकेतोस्तथोद्गमः ।
भूमिकम्पोऽपि नियतं राष्ट्रध्वंसकरः स्मृतः ।। १६५ ।।
दिने तूल्का प्रपतनमथवा तारकोदयः ।
देशक्षयकराणीति लक्षणानि स्फुटानि वै ।। १६६ ।।

सुधा—रात में इन्द्रधनुष या धूम्रकेतु का उद्गम किंवा भूकम्प हों तो राष्ट्र ध्वस्त हो जाता है। इसी तरह दिन में उल्कापात (तारा का टूटना) किंवा तारा का उदय दीख पड़े तो इसे देशक्षयकारी लक्षण समझें।

गृहारम्भे शिलान्यासविचारः

तत्र शिलान्यासे विहितनक्षत्राणि

श्रवणे रोहिणीयुग्मे पुष्याश्विन्युत्तरात्रये ।
रेवत्यां च करे गेहशिलान्यासः प्रशस्यते ।। १६७ ।।

सुधा—घरों के शिलान्यास में रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, अश्विनी, तीनों उत्तरा, रेवती, हस्त तथा श्रवण नक्षत्र प्रशस्त हैं।

गृहारम्भे शिलान्यासविधिः

चतुष्कोणात्मके भूमिपृष्ठे आग्नेयकोणके ।
भूमिं नवग्रहान् नागं सम्पूज्य विधिवत्ततः ।। १६८ ।।
खातं विधाय प्रथमां शिलां तत्र न्यसेत्सुधीः ।
प्रदक्षिणक्रमेणैव स्तम्भानन्यांश्च विन्यसेत् ।। १६९ ।।

सुधा—चतुष्कोणात्मक भूमिपृष्ठ (चौकोर) में आग्नेय (पूर्व-दक्षिण) कोण में पञ्चदेवता विष्णु-पूजानन्तर पृथ्वी, नवग्रह तथा नागदेव की विधिवत् पूजा करके

वही (आग्नेय कोण में ही) खात बनाकर प्रथम शिला का न्यास उसमें करें। उसके बाद प्रदक्षिण क्रम से अन्यान्य स्तम्भों को भी प्रतिष्ठित करें।

इस सम्बन्ध में किसी ने कहा है—

'दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमः।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैव प्रतिष्ठाप्याः'॥

वृष्टिविचारः

पौषे मूलभरण्यन्तं चन्द्रचारेण गर्भति।
आर्द्रादितो विशाखान्तं सूर्यचारेण वर्षति॥ १७०॥

सुधा—पूस मास में मूल नक्षत्र से अश्विनी (दश नक्षत्र) नक्षत्र तक चन्द्रमा के भोग से मेघ गर्भयुक्त होता है। वही मेघ आर्द्रा से स्वाती तक के नक्षत्रों में सूर्य के सञ्चार से बरसता है।

अर्थात् पूस महीने में मूलादि दश नक्षत्रों में चन्द्रमा के रहने पर मेघच्छायादि जब-जब दीख पड़े तब-तब मेघ गर्भधारण करता है। उन गर्भों का प्रसव स्वाती नक्षत्रपर्यन्त सूर्य के आने पर होता है।

इति मिथिलाञ्चलस्थमधुबनीमण्डलान्तर्गतनगवासग्रामवास्तव्येन मधुबनीस्थेन मैथिलपण्डितश्रीदेवचन्द्रझाशर्मणा विरचिते व्यावहारिकज्यौतिषसर्वस्वे प्रकीर्णकस्कन्धः समाप्तः।

**दौर्भाग्यादक्षिदोषान्मे नासौ ग्रन्थो हि विस्तृतः।
सङ्क्षिप्तोऽप्येष नियतं विद्वच्चेतः प्रसादयेत्॥**

ग्रन्थकर्तुः परिचयः

मिथिलाञ्चलवर्त्ति-विश्रुते नगवासाभिधपत्तने हिते ।
जननं मम मैथिलान्वयेऽभवदुद्यद्बुधवृन्दभूषिते ॥ १ ॥
अथ पञ्चमवर्षतः परं शरणं प्राप्य न चारिणो गुरोः ।
निजसद्मगतोऽपि शैशवं सकलं शिक्षणमाप्तवानहम् ॥ २ ॥
तदनुश्रुतकीर्त्तितो नतो गुरुविश्वेवरपादपद्मतः ।
त्रिविधं किल मङ्गलप्रदं निखिलं ज्यौतिषमध्यगीष्यहम् ॥ ३ ॥
पुनरप्यथ तन्निदेशतो गणिताम्भोधितितीर्षया मया ।
अधिकाशि शिवस्य सन्निधौ गुरुवर्यः शिववन्निषेवितः ॥ ४ ॥
गेनालालाभिधसुरगुरुर्यन्मुखाब्जात्तु काश्या-
माद्योपान्तं निखिलगणितज्यौतिषग्रन्थजातम् ।
साहित्यं वै विमलमतिमच्छ्रीमुकुन्दप्रसादात्
श्रावं श्रावं प्रमुदितमना धन्यमात्मानमापम् ॥ ५ ॥
एवं गुरुद्वयकृपावशतो हि काश्या-
माचार्यतामुपगतो विषयद्वयेऽपि ।
अध्यापनं विविधविश्रुतराजकीय-
संस्थासु वै ननु विधाय निवृत्तकृत्यः ॥ ६ ॥
श्रमक्रमवशादेमे द्वयं वर्षत्रयात्मकम् ।
पोष्टाचार्यं च सम्पाद्याध्यापने निरतोऽभवम् ॥ ७ ॥
द्वात्रिंशन्मितवर्षाणि यावदध्यापने रतः ।
ग्रन्थान् कतिपयान् व्याख्याविमर्शैः समपीपदम् ॥ ८ ॥
इदं ज्यौतिषसर्वस्वं व्यवहारविदां मुदे ।
विरचय्याद्य नेत्रान्धतयाऽकिञ्चित् करोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥
सिद्धान्तग्रन्थसन्मर्म विवृतौ यन्मनीषितम् ।
दौर्भाग्यादक्षिदोषान्मे तच्चिराय विलीयताम् ॥ १० ॥
अधि मधुवनि नववासे नगवासे न त्यजन् गृहं नैजम् ।
निवसामि निर्विकारः 'चन्द्रकुटीरे' निजे सपरिवारः ॥ ११ ॥